रसायन-प्रवेशिका

भारतीय पारिभाषिक शब्दों में रसायन-शास्त्र का पहला ग्रन्थ

इस पुस्तक में पारिभाषिक शब्दावलि आंगल-भारतीय महाकोश से ली गई है

प्रो. साधुराम एम्. ए.

उपोद्घात

अंग्रेज़ी राज्य की कृपा से हमारी दासता की जड़ें बहुत गहराई तक चली गई हैं। उच्च शिक्षा का माध्यम आंगल भाषा होने के कारण तथा विज्ञान की शिक्षा के लिये आंगल का प्रयोग अनिवार्य होने के कारण हमारी देशीय भाषाएँ पनपने ही नहीं पातीं। आधुनिक सभ्य मानव की आवश्यकताओं तथा जटिल विचारों को प्रांजलरूप में प्रकट करने की क्षमता हमारे देश की प्राय: सभी प्रांतीय भाषाओं में यथेष्ट मात्रा में नहीं है। इसका कारण यह है कि संसार में विज्ञान की प्रगति बड़ी तीव्रता से बढ़ रही है और उससे होने वाले आविष्कारों द्वारा नई नई वस्तुएँ बन कर इतनी अधिक संख्या में हमारे सामने आ रही हैं कि हमारे पास उन को नाम देने के लिये शब्द ही नहीं हैं। हम झट उन सभी वस्तुओं के विदेशीय नाम स्वीकार कर लेते हैं। ऐसा करना हमारे लिये सांस्कृतिक आत्महत्या के तुल्य है।

इस सांस्कृतिक आत्महत्या को दूर करने के लिये सरस्वती विहार की ओर से आंगल-भारतीय महाकोष बनाया जा रहा है। उसीके आधार पर मैंने इस रसायन शास्त्र की प्रथम पुस्तक की रचना की है। यह अपने विषय की केवलमात्र एक पुस्तक है जिसमें रसायन शास्त्र को आरम्भ से पढ़ाने के लिये एक भी विदेशी शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। इस पुस्तक को पढ़ कर उन लोगों के अन्दर जिनकी यह दृढ़ धारणा बनी हुई है कि विदेशी भाषाओं की शरण लिये बिना हम विज्ञान के किसी क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकते, आत्म-विश्वास उत्पन्न हो जाएगा और वे अपने मत में परिवर्तन करने के लिये बाध्य हो जाएँगे।

इस पुस्तक में सभी पारिभाषिक शब्दों के अर्थ सुनिश्चित हैं अत: उनमें परिवर्तन करने अथवा उनके पर्यायवाची अन्य शब्दों का आदेश करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। यदि कोई संदेह हो तो पत्र लिख कर उसका निवारण कर लें। यदि नए शब्दों की आवश्यकता पड़े तो उन के लिये भी सूची बना कर सरस्वती विहार को भेज दें।

इस पुस्तक के लिखने में डा० श्रीकृष्ण जी बी० एस० सी०, एम० बी० बी० एस० ने मेरी बड़ी सहायता की है। अत: मैं उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ॥

सन्तनगर लाहौर
२२. २. ४६

साधुराम

विषय-सूची

पहला अध्याय

प्रकृति (matter) तथा भौतिक पदार्थों (material objects) का मापन

प्रकृति--जिस सामग्री (material) के पदार्थ बने होते हैं उसको प्रकृति कहते हैं। प्रकृति में वे सभी पदार्थ आ जाते हैं जिनका ज्ञान हमें गन्ध, रस, स्पर्श आदि की इन्द्रियों द्वारा होता है। कई भौतिक पदार्थ हमारे दृष्टिगोचर भी नहीं होते, किंतु उनके हिलने जुलने से उनका ज्ञान स्पर्शेन्द्रिय से हो जाता है, जैसे वायु।

भौतिक पदार्थों का परिमाण (size) होता है, इसलिये वे स्थान (space) घेरते हैं। उनका भार (weight) भी होता है। प्रकृति की तीन अवस्थाएँ (states) होती हैं, सान्द्र (solid), तरल (liquid) और वाति (gas)।

सान्द्र प्रकृति के पदार्थों का आकार (shape) सुनिश्चित (definite) होता है, जिसमें सरलता से परिवर्तन नहीं हो सकता, यथा लकड़ी, लोहा, पत्थर आदि।

तरल और वातियों को प्रवाही (fluids) कहते हैं, क्योंकि बहुत थोड़ा बल (force) लगाने से भी वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवहण (flow) कर जाते हैं।

तरलों का अपना कोई निश्चित आकार नहीं होता किन्तु इनकी परिमा (volume) निश्चित होती है। जिस पात्र में इनको डाला जाए उसीका आकार धारण कर लेते हैं। ऊपर से इनका तल (surface) सम (even) रहता है, जैसे जल, तैल आदि।

वातियों का भी अपना कोई आकार नहीं होता। जिस पात्र में इनको डाला जाए उसी आकार की हो जाती हैं, किन्तु भेद इतना है कि पात्र चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो ये उसे संपूर्ण भर देती हैं। इनकी परिमा सीमित (limited) नहीं होती। सब से सुलभ और सुपरिचित (familiar) वाति हमारे आसपास की वायु है।

प्रवाही छोटे से छोटे छिद्र में भी प्रवेश कर जाते हैं, इसीलिये पत्र पर डाला हुआ पानी रन्ध्रों (pores) में घुस कर पत्र को गीला कर देता है।

एक ही प्रकार की प्रकृति भिन्न भिन्न परिस्थितियों (conditions) में तीनों रूप धारण कर सकती है, जैसे पानी हिम बन कर सान्द्र हो जाता है और भाप बनने से वाति का रूप धारण कर लेता है।

मापन (measuring) — विज्ञान (science) में मापने के लिये दशमिक मान-क्रम (metric system) को प्रयोग में लाते हैं। पैरिस में एक माप-दण्ड (measuring rod) रखा हुआ है जिसकी लम्बाई को एक मान (meter) कहते हैं। यह दण्ड दशमिक मान-क्रम का आधार (basis) है। छोटी लम्बाइयों को मापने के लिये इस मान का दशमिक (decimal) क्रम से विभाजन (division) किया जाता है और बड़ी लम्बाइयों के लिये उसी क्रम से गुणन (multiplication) किया जाता है।

मान का विभाजन

१ मान = १० दशि-मान, दि. मा. (decimeters, dec., decim , dm.)
= १०० शति-मान, शि. मा. (centimeters, c., cent., cm.)
= १००० सहस्त्रि-मान, सि. मा. (millimeters, mm.)

मान का गुणन

१० मान = १ दश-मान, द. मा. (decameter, dkm , dm.)
१०० मान = १ शत-मान, श. मा. (hectometer, hectom., hm.)
१००० मान = १ सहस्त्र-मान, स. मा. (kilometer, kilom., kil., kilo.)

परिमा का मापन—लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई में पदार्थ जितना स्थान घेरता है उतने स्थान को उस पदार्थ की परिमा कहते हैं। परिमा का मापन घन (cubic) दशिमानों (घ. दि. मा.) से किया जाता है। एक घन दशिमान की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई एक एक दशिमान होती है। घन दशिमान को प्रस्थ (स्थ. litre, lit , l.) भी कहते हैं। प्रस्थ को परिमा का एकक (unit, अथवा संक्षेप से परिमैक unit of volume) माना गया है। एक दशिमान में दस शतिमान होते हैं। इसलिये एक प्रस्थ में १००० घन शतिमान, (घ. शि. मा. cubic centimeters, ccm. or cc.) अथवा १००० सहस्त्रि-प्रस्थ हुए। छोटी परिमाओं को मापने के लिये प्राय: घन शतिमानों का ही प्रयोग होता है।

१ प्रस्थ = १० दशि-प्रस्थ, दि. स्थ. (decilitres, dl.)
= १०० शति-प्रस्थ, शि. स्थ. (centilitres, cl.)
= १००० सहस्त्रि-प्रस्थ, सि. स्थ. (millilitres, ml.)

तरलों का माप—तरलों को मापने के लिये अंकित (graduated) काचपात्र प्रयोग में लाए जाते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं—पलित्र (flask), रम्भ (cylinder), नाडक (pipette) और द्रवमि (burette)।

चपटे तले और लम्बे पतले गले वाले पात्र को पलित्र (चित्र १) कहते हैं। अंकित पलित्र १० घन शतिमान से लेकर २ प्रस्थ से भी अधिक धारिता (capacity) के होते हैं। इनके गले पर मापने के लिये चिह्न (mark) लगा होता है।

अंकित रम्भ (चित्र २) एकसा गोल और लम्बा पात्र होता है जिसपर कई अंक लगे होते हैं। तरल की भिन्न भिन्न परिमाओं को मापने के लिये यह प्रयोग में लाया जाता है।

नाडक (चित्र ३) बीच में रम्भाकार और दोनों सिरों से पतला और खुला होता है। इसका निचला सिरा तीखा होता है और इसके उदर पर वलयाकार चिह्न होता है, जहाँतक भर लेने से इसमें तरल की एक नियत मात्रा (quantity) समा जाती है। किसी पात्र में से तरल निकालने के लिये तीखे सिरे को तरल में डाल लेते हैं और ऊपर के सिरे से चूस कर तरल को नाडक में चिह्न से ऊपर तक भर लेते हैं। फिर ऊपर के सिरे को अंगुली से मूँद कर और अंगुली को थोड़ा थोड़ा उठा कर तरल के तल को चिह्न तक ले आते हैं। तब अन्त में अंगुली से भलीभाँति मूँद कर नाडक को उस पात्र

से निकाल लेते हैं और दूसरे पात्र में लेजाकर अंगुली उठाकर सारा तरल निकाल लेते हैं।
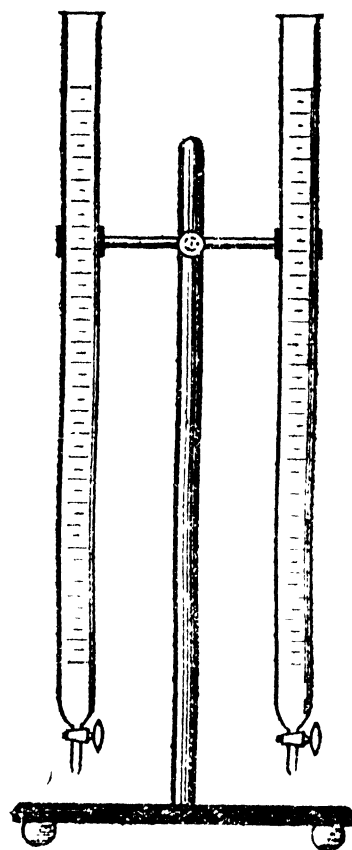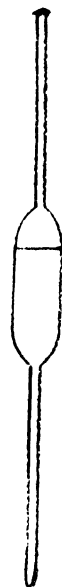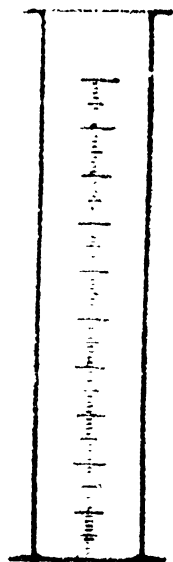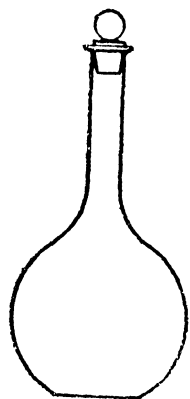
चित्र १ चित्र २ चित्र ३ चित्र ४

तरल की थोड़ी परिमा को माप कर दूसरे पात्र में डालने के लिये द्रवमि (चित्र ४) का प्रयोग होता है। काच की नाल पर भिन्न भिन्न परिमाओं की अंकश्रेणी (scale) खुदी होती है, जिसमें घन शतिमानों के प्रभाग (fractions) दिखाए होते हैं। उस नाल में तरल भर कर शिखि-पिधा (टोंटी, stop cock) मूंद दी जाती है और नीचे दूसरा पात्र रख दिया जाता है। तरल के तल का अंक देख कर टोंटी खोल दी जाती है। तरल धीरे धीरे निचले पात्र में टपकने लगता है। आवश्यकता के अनुसार तरल को निकाल लेने पर टोंटी मूंद दी जाती है। तरल के तल का अंक एक बार फिर देख लिया जाता है। दोनों अंकों का अन्तर निकाल लेने से निकाले हुए तरल की परिमा ज्ञात हो जाती है।

ताप में परिवर्तन होने से काचपात्रों की परिमा में भी परिवर्तन हो जाता है इसलिये इनको निश्चित ताप में अंकित किया जाता है। इनका माप भी उसी ताप में ठीक उतरता है। किंतु साधारणतया ताप-परिवर्तन की उपेक्षा की जाती है।

सान्द्र की परिमा का मापन—सान्द्र को अंकित स्तम्भ में रखे हुए किसी ऐसे तरल में डाल दो जो इससे हलका हो और जिसकी इसपर कोई क्रिया (action) न हो। सान्द्र को डालने से तरल की परिमा बढ़ जाएगी। जितनी इस परिमा में वृद्धि होगी उतनी ही सान्द्र की परिमा होगी।

वातियों का मापन—वाति का माप सीधा भी लिया जा सकता है और तरल की भरी हुई नाल में वाति द्वारा तरल का निरसन करके भी। वाति की परिमा निरस्त तरल की परिमा के तुल्य होगी।

साधारणतया वाति की परिमा का माप पानी अथवा पारे में उलटी की हुई अंकित नाल (चित्र ५) द्वारा लिया जाता है। नाल के मुँदे हुए सिरे से लेकर खुले सिरे तक अंक लगे होते हैं। नाल में जितनी वाति डालते जाओगे उतना तरल बाहर निकलता जाएगा। अंत में तरल के तल के अंक से लेकर ऊपर के अंक तक वाति की परिमा होगी। ऐसे उपकरणों (instruments) का नाम वाति-परिमा-मान (eudiometers) होता है।

यदि हम वाति वाली नाल को उष्ण करें तो वाति की परिमा फैल कर बढ़ जाएगी। इसलिये जिस ताप पर वाति की परिमा ली गई हो उसका उल्लेख करना आवश्यक है॥
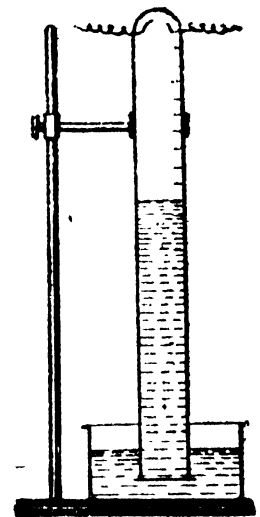
चित्र ५

दूसरा अध्याय

ताप (temperature) और निपीड (pressure)

तापमान (thermometer) और भारमान (barometer)

ताप-परिवर्तन (change of temperature)—ताप से सभी लोग परिचित हैं किन्तु कई बार पदार्थों की उष्णता (hotness) और शीतलता (coolness) जानने में हमारी इन्द्रियाँ धोखा खा जाती हैं। ताप से अभिप्राय पदार्थ की उष्णता की मात्रा (degree) से है। जब पदार्थ को तपाया जाता है तो उसकी अवस्था (state) में कई परिवर्तन हो जाते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप में सबसे अधिक परिवर्तन उसकी परिमा में होता है। ताप के चढ़ाव से पदार्थ प्रायः फैल जाते हैं और उनकी परिमा बढ़ जाती है।

संपरीक्षा (experiment) १—छोटे से पलिघ का मुख छिद्र वाली घृषि त्वचा (rubber cork) से मूँद कर छिद्र में ५० शतिमान लम्बी काच नाल लगा दो। पलिघ में इतना पानी डाल दो कि कुछ पानी नाल में भी चढ़ा रहे। पलिघ को अग्नि पर रख कर अथवा उष्ण पानी में डुबा कर तपाओ। पानी पहले नाल में से कुछ नीचे उतरेगा, किन्तु पीछे अपने पूर्वतल से भी ऊँचा चढ़ जाएगा।

पहले ताप पहुँचने से काच फैल कर पलिघ की परिमा बढ़ गई। बढ़े हुए स्थान को भरने के लिये पानी नाल में से कुछ नीचे उतर आया। फिर जब पानी को उष्णता पहुँची तब वह भी फैल गया। परिमा बढ़ जाने से वह नाल में बहुत ऊपर तक चढ़ गया।

पारद ताप-मान (mercury thermometer)—ऊपर की संपरीक्षा के सिद्धान्त पर ताप मापने के लिये काचनाल का तापमान बना होता है। उसमें पानी के स्थान पर पारे का प्रयोग किया जाता है क्योंकि ताप मापने के लिये वह अधिक उपयोगी है। यह तापमान पतली सी सीधी काचनाल का बनाया जाता है। नाल का छेद बहुत सूक्ष्म होता है और उसके एक सिरे पर कन्द (bulb) बना होता है। कन्द में और नाल के थोड़े से भाग में पारा भर दिया जाता है। फिर रिक्त नाल की सारी वायु निकाल कर नाल का मुख पिघला कर मूँद दिया जाता है। अंकित करने के लिये इस नाल को पहले पिघलती

हुई हिम में रखा जाता है। जब सुकड़ कर पारा एक स्थान पर सर्वथा स्थिर हो जाता है तब उस स्थिति पर चिह्न लगा दिया जाता है। फिर नाल को उबलते हुए पानी से उठती हुई भाप पर रख दिया जाता है। जब पारा फैल कर एक स्थान पर सर्वथा स्थिर हो जाता है तब उस स्थिति पर दूसरा चिह्न लगा दिया जाता है। इन दोनों चिह्नों के अन्तराल (intermediate space) को समान भागों में विभक्त कर दिया जाता है। इन भागों को 'अंश' (degrees) कहते हैं।

इस अन्तराल को विभक्त करने के तीन भिन्न भिन्न क्रम हैं। इनके अनुकूल तापमान भी तीन प्रकार के होते हैं—शतिक (centigrade), अशीतिक (Reaumur) और द्वात्रिंशादि (Fahrenheit)।

शतिक श्रेणी (scale) के अनुसार हिम पिघलने की स्थिति पर शून्य (०) का अंक लगाया जाता है और पानी उबलने की स्थिति पर १०० का अंक। अन्तराल को १०० समान भागों में विभक्त कर दिया जाता है।

अशीतिक श्रेणी के अनुसार हिम पिघलने की स्थिति (०) और पानी उबलने की ८० है। अन्तराल के ८० सम भाग किये गए हैं।

द्वात्रिंशादि श्रेणी के अनुसार हिम पिघलने के स्थान पर ३२ का और पानी उबलने के स्थान पर २१२ का अंक लगाया जाता है। अन्तराल के १८० भाग किये जाते हैं।

इन अंकों के ऊपर एक छोटा सा गोला (°) लगा दिया जाता है जो अंश (degree) का चिह्न है, जैसे १००° श., ३२° अ., २४° द्व.। इन श्रेणियों का परस्पर सम्बन्ध चित्र ६ में दिखाया गया है।

चित्र ६

ताप का एकसे दूसरी श्रेणी में परिवर्तन—यतः अशीतिक श्रेणी के ८० अंश शतिक श्रेणी के १०० अंशों के तुल्य हैं, इसलिये १ अशीतिक अंश $\frac{५}{४}$ शतिक अंश के तुल्य है और १ शतिक अंश $\frac{४}{५}$ अशीतिक अंश के। इसी प्रकार द्वात्रिंशादि के १८० अंश शतिक के १०० अंशों के तुल्य होते हैं। इसलिये १ द्वात्रिंशादि अंश $\frac{५}{९}$ शतिक अंश के तुल्य है और एक शतिक अंश $\frac{९}{५}$ द्व. के। किन्तु जब द्वात्रिंशादि ताप को शतिक में परिणत करना हो तब पहले उसमें से ३२ अंश घटा कर शेष का $\frac{५}{९}$ भाग ले लिया जाता है, जैसे—

५०° द्वात्रिंशादि = (५०–३२) × $\frac{५}{९}$ = १०° श.

भारमान—वायुमण्डल (atmosphere) के नीचे की ओर के निपीड को मापने के उपकरण का नाम भारमान है। अच्छे भारमानों में पारा प्रयोग में लाया जाता है।

संपरीक्षा २—एक सिरे से मुँदी हुई ८२० सहस्रिमान लम्बी भारमान नाल को पारे से भर लो। नाल के मुख को अंगूठे से मूँद कर उसे पारे से भरे हुए पात्र में उलटी कर के डाल दो। अंगूठा हटाने पर नाल में पारा उतर जाएगा। पारे के ऊपर लगभग ६० सि. मा. स्थान रिक्त रह
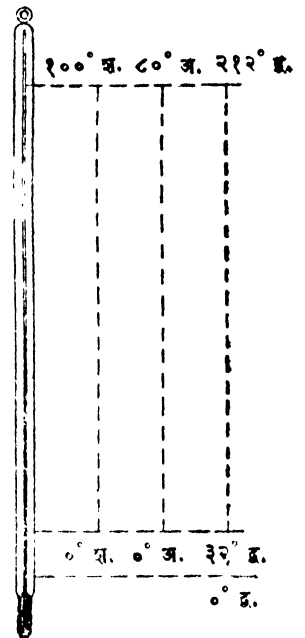
जाएगा (चित्र ७) ।

संपरीक्षा ३—ऊर्ध्व-बाहु नाल (U-tube) को सीधी (perpendicular) खड़ी कर के उसमें पानी डालो । दोनों बाहुओं में पानी का तल एकसा ऊँचा रहेगा । इस नाल के एक सिरे में घृपित्वक्ता द्वारा एक ओर पतली काचनाल लगा दो । पतली नाल से चूस कर उस बाहु की वायु बाहर निकालो । वायु निकलने से पानी बाहु में ऊपर चढ़ जाएगा । अब यदि इसी बाहु में फूँक मार कर अधिक वायु को अन्दर धकेलोगे तो पानी दूसरी बाहु में चढ़ेगा (चित्र ८) ।

चित्र ७ चित्र ८
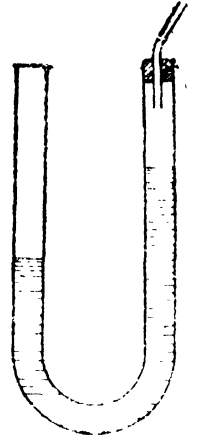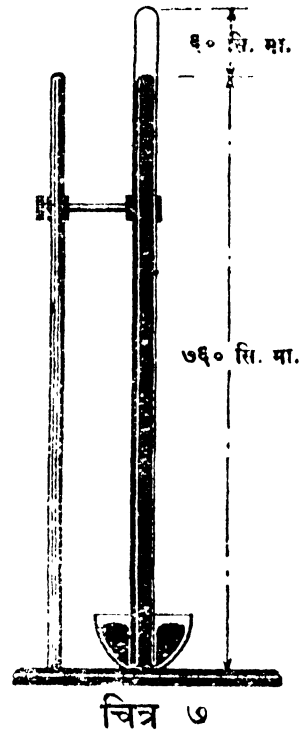
इस संपरीक्षा से सिद्ध हुआ कि वायु पानी के तल पर निपीड डालती है । पहले ऊर्ध्व-बाहु नाल की दोनों बाहुओं में जल-स्कम्भ (column of water) समान थे, क्योंकि दोनों ओर वायु का निपीड समान था । एक ओर की वायु निकाल देने से उधर का निपीड घट गया और दूसरी ओर के वायु निपीड और जल-स्कम्भ के भार से पानी ऊपर चढ़ गया । इसी भाँति जब फूँक मार कर इधर वायु का निपीड बलात् बढ़ाया तब पानी दूसरी बाहु में ऊपर चढ़ गया ।

ऊपर की विधा (process) से यह स्पष्ट हो गया कि बाहर के पारे की अपेक्षा भारमान की नाल में पारा अधिक ऊँचा क्यों है । नाल के अन्दर वायु सर्वथा नहीं है इसलिये नाल वाले पारे पर वायु का निपीड भी नहीं है । बाहर वाले पारे पर सारे वायुमण्डल का निपीड है । वायु के बहुत बड़े स्कम्भ का निपीड पारे के छोटे से स्कम्भ के निपीड के तुल्य है ।

वायुमण्डल के निपीड की गणना भारमान की नाल के अन्दर वाले पारे के स्कम्भ की लम्बाई से की जाती है । सामान्यत: समुद्रतल पर वायुमण्डल का निपीड पारे के ७६० सि. मा. ऊँचे स्कम्भ के निपीड के तुल्य होता है । इस निपीड को प्रमाप (standard) निपीड माना जाता है और इसे १ वायुमण्डल अथवा १ वा. (1 atmosphere or 1 atmo.) लिखते हैं । वायुमण्डल का निपीड दिनोंदिन घटता बढ़ता भी रहता है और भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न होता है । यह भेद समुद्रतल से उस स्थान की ऊँचाई पर निर्भर है । समुद्रतल से जितना ऊँचा कोई स्थान होगा उतना ही वायुमण्डल का निपीड थोड़ा होगा ।

भारमान की ऊँचाई पारदाशय (reservoir of mercury) के तल से नाल के पारे के तल तक लम्बरूप (perpendicularly) में मापी जाती है । नाल चाहे सीधी हो चाहे तिरछी लम्ब की ऊंचाई सदा एकसी रहती है ॥

तीसरा अध्याय

ताप और निपीड के परिवर्तन का वातियों की परिमा पर प्रभाव

वाति की एक विशेषता यह है कि ताप और निपीड में थोड़ा सा परिवर्तन होने से भी इसकी परिमा में सान्द्र और तरल की अपेक्षा बहुत बड़ा अन्तर पड़ जाता है।

चित्र ९

संपरीक्षा ४—पलिघ के मुख में घृपित्वक्षा द्वारा नीचे को मुड़ी हुई नाल कस कर लगा दो (चित्र ९)। इस नाल का सिरा चञ्चुकी (beaker) में रखे हुए रंगीले तरल में डाल दो। अब यदि पलिघ को आग पर तपाओगे तो नाल में से वायु निकल कर तरल में से बुलबुले उठने लगेंगे। इससे ज्ञात हुआ कि उष्णा हो कर वायु फैलती है। फिर यदि पलिघ को ठण्डा करोगे तो वायु सुकड़ जाएगी और रंगीला तरल निकली हुई वायु का स्थान लेने के लिये नाल में चढ़ जाएगा।

ताप-वाति-परिमा-सिद्धान्त (Charles' & Gay-Lussac's Law)—निपीडे स्थिरे सत्यू एकैकं शतिक-तापांशम् अनु वातेः शतिक-शून्यांश-स्थ-परिमायाः २७३-तमो भागो वर्धते ह्रसते वा॥
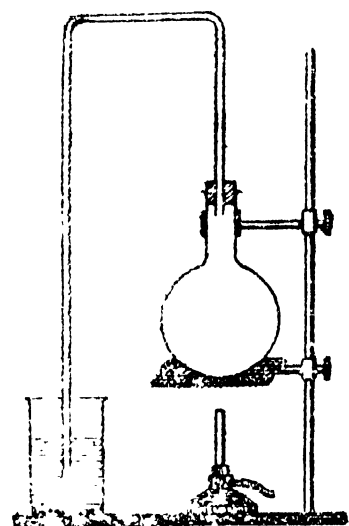
निपीड के स्थिर रहते हुए प्रत्येक शतिक अंश ताप के परिवर्तन से वाति की परिमा में ०° श. वाली परिमा का $\frac{१}{२७३}$ वाँ भाग परिवर्तन होता है।

अतः यदि ०° श. पर वाति की परिमा १ हो तो १° श. पर इस की परिमा $१+\frac{१}{२७३}$ हो जाएगी, २° श. पर $१+\frac{२}{२७३}$ हो जाएगी और त° श. पर $१+\frac{त}{२७३}$ हो जाएगी (त=कोईसा शतिक तापांश)।

यदि वाति की परिमा ०° श. पर २ हो तो त° श. पर $२\left(१+\frac{त}{२७३}\right)$ होगी।

यदि हम ०° श. पर वाति की परिमा के लिये प$_०$ प्रतीक (symbol) रख लें तो त° श. पर उस की नई परिमा $प_०\left(१+\frac{त}{२७३}\right)$ होगी। यदि हम त° श. पर की परिमा का प्रतीक $प_त$ रख लें तो निम्नलिखित संबन्ध प्राप्त होता है :—

$$प_त = प_०\left(१+\frac{त}{२७३}\right)$$

उदाहरण (example) १—यदि ०° श. पर वाति की परिमा ५१ प्रस्थ हो तो ९१° श. पर इसकी परिमा निकालो।

यहाँ $प_० = ५१$ प्रस्थ और नया ताप त = ९१° श. है। इसलिये $प_त = ५१\left(१+\frac{९१}{२७३}\right) =$ ६८ प्रस्थ।

यदि हम ताप को ०° श. से घटा दें तब प्रत्येक शतिक तापांश के घटने से वाति की परिमा ०° श. वाली परिमा का $\frac{१}{२७३}$ वाँ भाग घटती जाएगी।

उदाहरण २—यदि ०°श. पर वाति की परिमा ५१ प्रस्थ हो तो –९१° श. पर इसकी परिमा निकालो।

यहाँ $प_त = ५१ \left(१ - \frac{९१}{२७३} \right) = ३४$ प्रस्थ ।

यदि त° श. पर वाति की परिमा ज्ञात हो तो ०° श. पर उस की परिमा जानने के लिये उपर्युक्त समीकार (equation) को इस रूप में लिखेंगे :—

$$प_० = \frac{प_त}{\left(१ + \frac{त}{२७३}\right)}$$

उदाहरण ३—यदि १३° श. पर वाति की परिमा ४४ घ.शि.मा. हो तो ०° श. पर क्या होगी ?

यहाँ $प_त = ४४,\ त = १३$

अतः $प_० = \frac{४४}{\left(१ + \frac{१३}{२७३}\right)} = \frac{४४}{१ + \frac{१}{२१}} = \frac{४४}{१} \times \frac{२१}{२२} = ४२$ घ.शि.मा.

यदि त° श. पर वाति की परिमा ज्ञात हो तो अन्य तापांश $त°_१$ श. पर की नई परिमा निकालने की रीति :—

दोनों परिमाओं के लिये क्रम से $प_त$ और $प_{त_१}$ प्रतीक रख लो । ०° श. की परिमा से इन परिमाओं का संबन्ध निम्नलिखित समीकारों के अनुकूल है :—

$$प_त = प_० \left(१ + \frac{त}{२७३} \right) \text{ और } प_{त_१} = प_० \left(१ + \frac{त_१}{२७३} \right)$$

दूसरे समीकार को पहले समीकार पर विभक्त करने से नई परिमा ज्ञात हो जाएगी ।

$$प_{त_१} = प_त \left\{ \frac{१ + \frac{त_१}{२७३}}{१ + \frac{त}{२७३}} \right\} = प_त \left\{ \frac{२७३ + त_१}{२७३ + त} \right\}$$

उदाहरण ४—यदि २१° श. पर वाति की परिमा ५६ घ.शि.मा. हो तो ४२° श. पर क्या होगी ?

यहाँ $प_{त_१} = ५६ \left\{ \frac{२७३ + ४२}{२७३ + २१} \right\} = \frac{५६ \times ३१५}{२९४} = ६०$ घ.शि.मा.

निपीड परिवर्तन का प्रभाव

संपरीक्षा ५—ऊपर से मुँदी और नीचे से खुली पतली काचनाल को घृषि-निपीड-नाल (rubber pressure tube) द्वारा खुली काचनाल के साथ जोड़ दो (चित्र १०) । मुँदी और खुली नालों के कुछ भागों को और घृषिनाल को पारे से भर दो । मुँदी काचनाल में पारे के ऊपर कुछ वायु रहने दो ।

अब खुली नाल को ऐसे रखो कि दोनों नालों के पारे का स्कम्भ एक सा ऊँचा रहे । मुँदी नाल पर इस स्थिति पर चिह्न लगा दो । जब खुली नाल को ऊपर उठाओगे तब खुली नाल में पारे के स्कम्भ की ऊँचाई अधिक हो जाने से वायु पर निपीड बढ़ जाएगा, और वायु की परिमा घट जाएगी ।

चित्र १०

यदि खुली नाल को अपनी पहली स्थिति से नीचे कर दोगे तो वायु की परिमा बढ़ जाएगी क्योंकि अब खुली नाल में पारे की ऊँचाई मुँदी नाल के पारे की ऊँचाई से नीची है, और वायु पर
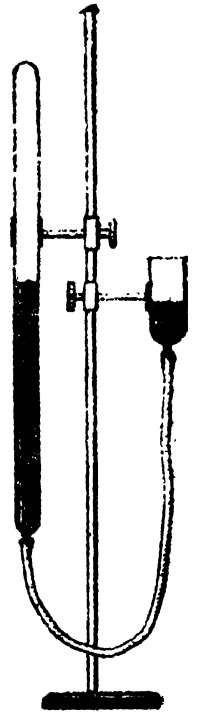
निपीड घट गया है। इस घटे हुए निपीड को 'प्रह्लसित (reduced) निपीड' कहते हैं।

निपीड-वातिपरिमा-सिद्धान्त (Boyle's or Marioette's Law)—तापे स्थिरे सति वातौ यावान् निपीडो वर्धते तावत्यू अस्य परिमा ह्लसते, यावांशू च निपीडो ह्लसते तावत्यू अस्य परिमा वर्धते ॥

ताप के स्थिर रहते हुए वायु पर जितना निपीड बढ़ेगा उतनी ही उसकी परिमा घटेगी और जितना निपीड घटेगा उतनी ही उसकी परिमा बढ़ेगी। अर्थात् वाति पर निपीड यदि दुगुना कर दिया जाए तो उसकी परिमा आधी रह जाएगी और यदि आधा कर दिया जाए तो दुगुनी हो जाएगी।

अतः यदि वाति की परिमा 'प' हो और उस पर निपीड 'नि' हो तो जब निपीड क × नि हो जाएगा तो परिमा $\frac{\text{प}}{\text{क}}$ हो जाएगी।

यदि पहली परिमा 'प' और निपीड 'नि' का गुणन करें तो गुणनफल अथवा घात (product) प × नि होगा। इसी प्रकार नई परिमा $\frac{\text{प}}{\text{क}}$ का नए निपीड क × नि से गुणन करने से भी गुणनफल प × नि ही निकला। इससे यह परिणाम निकला कि यदि ताप में परिवर्तन न हो तो वाति की परिमा और उसपर के निपीड के घात की अर्हा (value) स्थिर (constant) रहती है। अतः यदि परिमा प_1 हो और निपीड नि_1 हो तो भी $\text{प} \times \text{नि} = \text{प}_1 \times \text{नि}_1$।

तापांश चाहे कोई सा हो किन्तु जब निपीड में परिवर्तन हो रहे हों तब ताप स्थिर रहना चाहिये।

ताप और निपीड दोनोंमें परिवर्तन होने की अवस्था में वाति की नई परिमा निकालने की रीति :—

ताप और निपीड में परिवर्तन चाहे एकसाथ हों चाहे आगेपीछे किन्तु नई परिमा एक ही होगी।

यदि ताप में परिवर्तन त° श. से त_1° श. पहले हो जाए तो नई परिमा की अर्हा निम्नलिखित होगी :—

$$\text{प}_{\text{त}_1} = \text{प}_\text{त} \left\{ \frac{\text{२७३} + \text{त}}{\text{२७३} + \text{त}_1} \right\} \ldots\ldots\ldots\ldots(\text{१})$$

यहां ताप में परिवर्तन होता रहा किंतु निपीड 'प' स्थिर रखा गया।

अब यदि ताप को $\text{प}_{\text{त}_1}$ पर स्थिर रखते हुए निपीड को 'प' से 'प_1' कर दें तो निपीड-वातिपरिमा-सिद्धान्त के अनुसार—

$$\text{प}_{\text{त}_1} \times \text{नि} = \text{नई परिमा} \times \text{नि}_1$$

अब समीकार (१) से $\text{प}_{\text{त}_1}$ की अर्हा का आदेश करने से—

$$\text{नई परिमा} = \text{प}_\text{त} \left\{ \frac{\text{२७३} + \text{त}_1}{\text{२७३} + \text{त}} \right\} \times \frac{\text{नि}}{\text{नि}_1}$$

उदाहरण ५—२६° श. पर वाति की परिमा ४६ घ.शि.मा. और निपीड पारे का ७२० सि.मा. है, तो १३° श. ताप और ६६० सि.मा. निपीड पर उसकी परिमा क्या होगी ?

$$\text{नई परिमा} = \text{४६} \left\{ \frac{\text{२७३} + \text{१३}}{\text{२७३} + \text{२६}} \right\} \times \frac{\text{७२०}}{\text{६६०}}$$

$$= \text{४६} \times \frac{\text{२८६}}{\text{२९९}} \times \frac{\text{७२०}}{\text{६६०}} = \text{४८ घ.शि.मा.}$$

प्रकेवल ताप (absolute temperature)—यत: प्रत्येक शतिक तापांश के घटाव से वाति की परिमा ०° श. पर की परिमा का १/२७३वाँ भाग घटती जाती है, इसलिये –२७३° श. पर उसकी परिमा सिद्धान्तरूप से (theoretically) कुछभी न रह जाएगी। अत: –२७३° श. ताप को 'प्रकेवल शून्य' (absolute zero) कहते हैं। शतिक तापांश को प्रकेवल श्रेणी के तत्संवादी (corresponding) ताप में परिवर्तन करने के लिये उसमें २७३ बढ़ाने पड़ते हैं। तुलना के लिये देखो चित्र ११।
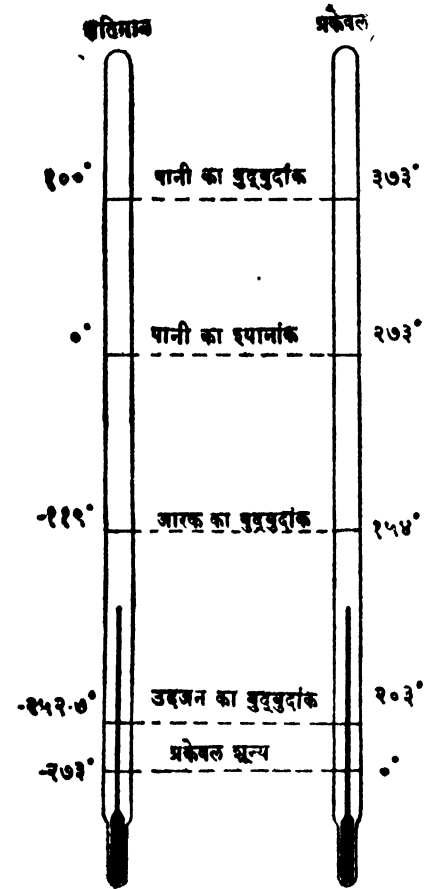
चित्र ११

०° श. और पारे के ७६० सि.मा. को ताप और निपीड की 'ऋजु परिस्थितियाँ' (normal conditions) माना गया है। इन परिस्थितियों को संक्षेप से ऋ.ता.नि. (N.T.P.) लिखा जाएगा।

यत: शतिक तापांश में २७३ बढ़ाने से प्रकेवल श्रेणी का तापांश निकल आता है इसलिये यह परिणाम निकलता है कि वाति-विशेष की परिमा उसके प्रकेवल श्रेणी के ताप के अनूपानुभागिनी (directly proportional) होती है॥

चौथा अध्याय

भार (weight) और पुञ्ज (mass)

अभ्याकृष्टि (gravitation)—हाथ में उठाए हुए पत्थर को भूमि पर गिरने से रोकने के लिये बल की आवश्यकता होती है। पत्थर जितना बड़ा होगा उतने अधिक बल की आवश्यकता होगी। जैसे लोहे और चुम्बक का आपस में आकर्षण है वैसे दो भौतिक पदार्थों में भी परस्पर आकर्षण होता है। भूमि और पत्थर का परस्पर आकर्षण ही पत्थर को भूमि पर गिराता है।

दो भौतिक पदार्थों के परस्पर आकर्षण को 'अभ्याकृष्टि' कहते हैं। भूमि के आकर्षण को 'भ्वाकृष्टि' (gravity) कहते हैं। पदार्थ को भूमि से उठाते समय हमें भ्वाकृष्टि का प्रतिकार (counteract) करना पड़ता है। पदार्थ और भूमि के परस्पर आकर्षण को ही पदार्थ का 'भार' कहते हैं।

पुञ्ज—पदार्थे प्रकृति-राशिस् तत्-पुञ्ज उच्यते॥

पदार्थ की प्रकृति-राशि (quantity of matter) को ही उस पदार्थ का 'पुञ्ज' कहते हैं। भूमि-तल के एक ही प्रदेश पर समान पुञ्जों का भार भी समान होता है, अर्थात् पुञ्ज और भार परस्पर अनुभागी होते हैं (mass is proportional to weight)—

पुञ्ज-भाराव् अनुभागिनौ॥

इसलिये प्रकृति-राशियों की तुलना करने के लिये उन के भार की तुलना करनी चाहिये। पदार्थ

की प्रकृति-राशि अथवा पुञ्ज का माप प्रमाप-पुञ्जों (standard masses) से तुलना करने से होता है। इन प्रमाप-पुञ्जों को 'बाट' (weights) कहते हैं और मापन क्रिया को 'तोलना' कहते हैं।

रसायनिक तुला (chemical balance)—समान मोटाई के दण्ड को मध्य से चैतिज स्थिति में लटका कर दण्ड के दोनों सिरों पर से समान भार के पलड़े लटका देने से तुला बन जाती है जिस में पदार्थ तोले जाते हैं। यदि पलड़ों का भार एकसा न होगा तो दण्ड चैतिज स्थिति में नहीं रहेगा, भारी सिरे की ओर झुक जाएगा।

चित्र १२

रसायनिक तुला (चित्र १२) अधिक सुकुमार होती है। दण्ड (beam) 'क' चैतिज अवस्था में है। उसके मध्य में वज्रायस छुरधारा (steel knife edge) 'ख' लगी हुई है जो पाल्यश्म तल (agate plane) 'ग' पर अवलम्बित है। निचली हत्थी (handle) को घुमाने से पाल्यश्म-तल नीचे ऊपर हो जाता है। दण्ड के दोनों सिरों पर भी छुरधाराएँ लगी हुई हैं जिनपर से कुण्डियों 'ङ' द्वारा पलड़े (pans) लटकते हैं। दण्ड के बीचों बीच नीचे को लटकती हुई लम्बी और पतली सूई (pointer) लगी होती है जो माप-श्रेणी (scale) 'च' के सामने झूलती है। जब हत्थी को घुमाने से पाल्यश्म तल उठता है तब दण्ड के मध्य की छुरधारा उसपर टिक जाती है और तुला काम करने लगती है। हत्थी को उल्टा घुमाने से पाल्यश्म तल नीचे हो जाता है और दण्ड टिक जाता है, डोलता नहीं।
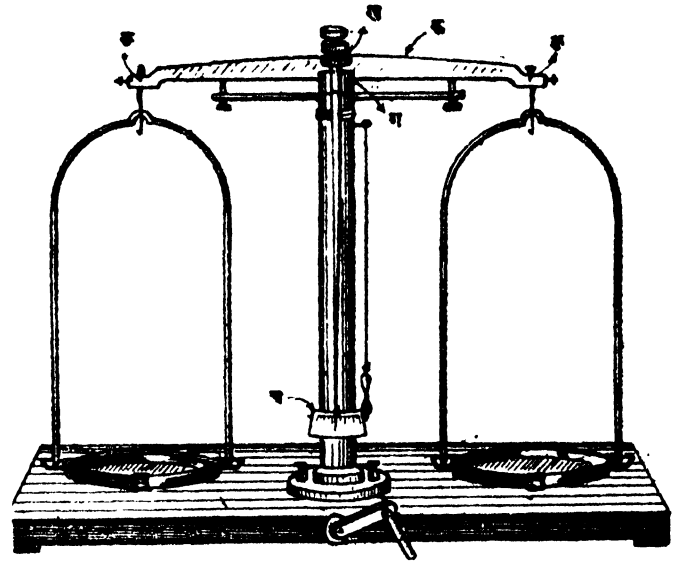
पहले पदार्थ को बाएँ पलड़े में और फिर बाटों को दाएँ पलड़े में रखते हैं। श्रेणी पर से सूई का अंक देख कर हत्थी घुमा कर पाल्यश्म तल को ऊँचा किया जाता है। जब तक सूई अपने पूर्व अंक पर न आ जाए तब तक पलड़े में बाट डालते अथवा उससे निकालते जाते हैं। दण्ड के हिलते हुए पदार्थ पलड़े में नहीं रखे जाते।

कई पदार्थों को पात्रों में डाल कर तोला जाता है। पहले रिक्त पात्र का भार देख लिया जाता है। फिर सकल भार (gross weight) में से पात्र का भार घटा देने से पदार्थ का भार निकल आता है। वातियों को काच के बड़े बड़े गोलों (globes) में डाल कर तोलते हैं। वाति की बड़ी परिमा का भार भी बहुत हलका होता है इसलिये बहुत सुकुमार तुला का प्रयोग किया जाता है।

भार और पुञ्ज के माप—रसायन शास्त्र में तोलने के लिये दशमिक मानक्रम का प्रयोग होता है। तोलने का एकक धान्य (gram) है, जो ४° श. पर एक घन शतिमान शुद्ध जल का भार है।

धान्य का विभाजन

१ धान्य, धा. = १० दशि-धान्य, दि.धा. (decigram, dg.)
= १०० शति-धान्य, शि.धा. (centigram, cgm., cg.)
= १००० सहस्रि-धान्य, सि.धा. (milligram, mgrm., mgr., mgm., mg.)

धान्य का गुणन

१० धान्य = दश-धान्य, द.धा. (decagram, dkg)

१०० धान्य = शत-धान्य, श.धा. (hectogram, hg)

१००० धान्य = सहस्र-धान्य, स.धा. (kilogram, kilog.. kgm., kg.)

भार के एकक को पुञ्ज का भी एकक माना गया है। इसलिये चाहे हम धान्य का भार कहें चाहे उसका पुञ्ज कहें बात एक ही है।

घनता (density) और आपेक्षिक भार (specific gravity)—पदार्थ के परिमैक के अन्तर्गत पुञ्ज को उसकी 'घनता' कहते हैं। सान्द्रों और तरलों की परिमा का एकक घन शतिमान है।

पदार्थ की परिमा और प्रमाप पदार्थ (standard substance) की उतनी ही परिमा के भारों के अनुपात (ratio) को उस पदार्थ की 'सापेक्ष घनता' (relative density) अथवा 'आपेक्षिक भार' (specific gravity) कहते हैं। सान्द्रों और तरलों के लिये शुद्ध पानी को और वातियों के लिये वायु अथवा उदजन को प्रमाप पदार्थ माना गया है।

पदार्थ की नियत परिमा के भार को शुद्ध पानी की उतनी ही परिमा के भार पर विभक्त करने से उस पदार्थ का आपेक्षिक भार ज्ञात हो जाता है। किसी पदार्थ का आपेक्षिक भार १० कहने से अभिप्राय यह है कि उस पदार्थ की नियत परिमा ४° श. पर शुद्ध पानी की परिमा से दसगुणा भारी है।

यत: ४° श. पर १ धान्य शुद्ध पानी का माप १ घ.शि.मा. होता है इसलिये ४° श. पर शुद्ध पानी की घन शतिमानों में परिमा और धान्यों में भार की अर्हा अंकों में एकसी होती है, अर्थात् एक ही अंक पानी की घन शतिमानों में परिमा और धान्यों में भार का द्योतक है। अतएव पदार्थ की घन शतिमान परिमा में जितने धान्य होंगे वही इसका आपेक्षिक भार होगा।

किसी पदार्थ का आपेक्षिक भार ज्ञात होने पर हम उसके भार को परिमा में और परिमा को भार में परिणत कर सकते हैं।

उदाहरण—सीस का आपेक्षिक भार ११.३ है तो ३३९ धान्य सीस की परिमा बताओ।

यत: १ घ.शि.मा. पानी का भार १ धान्य होता है इसलिये १ घ.शि.मा. सीस का भार ११.३ धान्य होगा। अत: ३३९ धान्य सीस की परिमा $= \frac{३३९}{११.३} =$ ३० घ.शि.मा.

यत: उष्ण होने पर पदार्थ फैलते हैं इसलिये एक ही पदार्थ की घनता अल्प ताप की अपेक्षा अधिक ताप में थोड़ी होगी, अर्थात् ताप के चढ़ाव से घनता घटती है—ताप-वृद्धौ घनता-ह्रास: ॥

प्राय: ताप की साधारण न्यूनाधिकता से सान्द्र पदार्थों की घनता में इतना थोड़ा भेद पड़ता है कि उसकी उपेक्षा ही की जाती है ॥

पाँचवाँ अध्याय

रसायन में प्रयुक्त होने वाली भौतिक विधाएँ (physical processes)

पावन (filtration)—मिले हुए सान्द्र और तरल को रन्ध्री (porous) पदार्थों द्वारा पृथक् करने की विधा (process) को 'पावन' कहते हैं। रन्ध्री पदार्थों के रन्ध्रों में से तरल तो नाँघ जाते हैं, किन्तु सान्द्रों के अविलेय (insoluble) और मोटे लव (particles) नही नाँघ सकते। गदले पानी में से सान्द्र और तरल को पावन विधा से अलग किया जा सकता है।

संपरीक्षा ६—पाव पत्र (filter paper) की कोर (cone) बना कर निवाप (funnel) में रख दो (चित्र १३)। निवाप के नीचे चञ्चुकी (beaker) रख दो। काच शलाका (glass rod) पर से गदला पानी कोर में डालते जाओ। मिट्टी आदि सान्द्र पदार्थ तो कोर में रह जाएँगे और स्वच्छ पानी चञ्चुकी में इकट्ठा हो जाएगा। पाव (filter) में से छाने हुए तरल को 'पावित' (filtrate) कहते हैं।
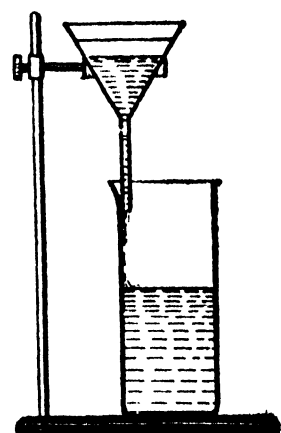
चित्र १३

निकएठन (decantation)—कई वार गदले तरल को टिका कर रख देने से सान्द्र के भारी लव पात्र के तले पर बैठ जाते हैं और स्वच्छ तरल ऊपर रह जाता है। तब तरल को काच शलाका द्वारा निथार लिया जाता है। पानी में मिली रेत को इसी विधा से अलग किया जाता है। इस विधा को 'निकएठन' अथवा निथारना कहते हैं।

उद्बाष्पण (evaporation) और संघनन (condensation)—तरल को वाति अथवा बाष्प (vapour) रूप में परिणत करने की विधा को 'उद्बाष्पण' कहते हैं। बाष्प को तरल में परिणत करने की विधा को 'संघनन' कहते हैं। उद्बाष्पण धीरे धीरे भी हो सकता है और इतनी क्षिप्रता से भी कि तरल में से बाष्प के बुलबुले उठने लगते हैं। उस दशा में तरल उबलने लगता है।

संपरीक्षा ७—पावित जल से भरे चीन-मृत्सा शराव (porcelain dish) को तन्तु-जाली (wire gauze) पर रख कर पिनाल ज्वाला (Bunsen flame) पर रख दो (चित्र १४)। कुछ समय के पीछे तरल वाष्प बन कर उड़ जाएगा और सान्द्र पदार्थ शराव में रह जाएगा। उद्बाष्पण द्वारा सारे का सारा तरल सुखा दिया गया है।
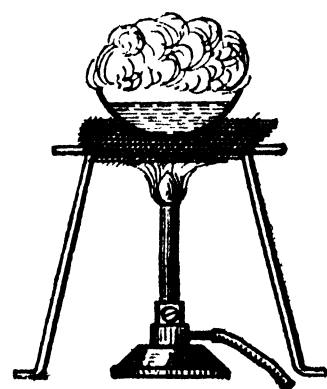
चित्र १४

आसवन (distillation)—इस विधा में पहले तरल के वाष्प बना कर फिर संघनन द्वारा बाष्पों को पुनः तरलरूप में लाया जाता है। इस विधा का नाम 'आसवन' है।

संपरीक्षा ८—तरल को पलिघ में डाल कर उसका मुखत्वक्षा से मूँद दो। त्वक्षा में एक ताप-

मान और एक मुड़ी हुई काचनाल पिरो दो। मुड़ी हुई नाल को अन्तरोद्-संघनक (Liebig's condenser) के अन्दर की नाल 'क' से जोड़ दो। नाल के बाहर काच का कोश (case) 'ख' होता है जिसमें दो छोटी नालें 'ग' और 'घ' लगी होती हैं। 'ग' में से ठण्डे पानी की धारा कोश में जाती रहती है और 'घ' से बाहर निकलती रहती है (चित्र १५)।
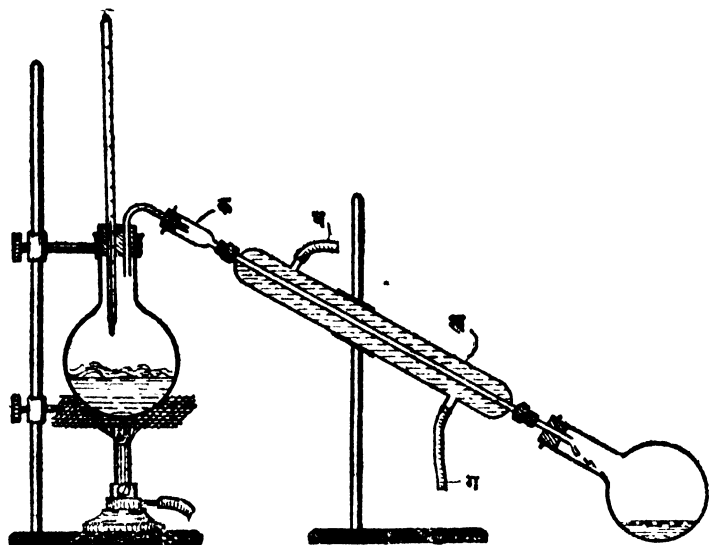
चित्र १५

पलिघ को पिनाल दाहक (Bunsen burner) पर इतना तपाओ कि तरल उबलने लगे। अन्तरोद्-संघनक की नाल 'क' के दूसरे सिरे को एक स्वच्छ पलिघ में डाल दो। तरल के वाष्प बन कर संघनक की नाल 'क' में जाएँगे जहाँ कोश की जलधारा की ठण्ड से पुन: तरल बनकर दूसरे पलिघ में इकट्ठे होते जाएँगे। इस तरल को 'आसुत' (distillate) कहते हैं।

तापमान का कन्द तरल से बाहर रखा जाता है। ज्यों ज्यों तरल तपता जाएगा पारा ऊपर चढ़ता जाएगा और जब तरल उबलने लगेगा तब पारा एक स्थान पर ठहर जाएगा। जब तक तरल उबलता रहेगा पारा वहीं स्थिर रहेगा। इससे ज्ञात हुआ कि उबलते हुए तरल के बाष्पों का ताप स्थिर रहता है। अब यदि तापमान के कन्द को तरल में डुबा दें तो पारा थोड़ा और ऊपर चढ़ जाएगा। इससे पता लगा कि बाष्प की अपेक्षा तरल का ताप अधिक है किन्तु यदि आसुत जल का दूसरी वार आसवन किया जाए तो जल और बाष्पों का ताप समान होगा। साधारण जल में अशुद्धताएँ (impurities) मिली होती हैं जो आसवन करने से पीछे रह जाती हैं। आसुत जल में कोई अशुद्धता नहीं होती। इसका पुन: आसवन करने से अवशेष (residue) नहीं बचता। अशुद्ध तरल को उबालने के लिये शुद्ध तरल की अपेक्षा अधिक ताप की आवश्यकता होती है। इसलिये उबलते हुए अशुद्ध तरल का ताप उसके बाष्प के ताप से अधिक होता है।

जिस तापांश (degree of temperature) पर तरल उबलने लगता है उसको तरल का बुद्बुदांक (boiling point) कहते हैं। वायुमण्डल के निपीड में परिवर्तन होने से बुद्बुदांक में भी थोड़ा अन्तर पड़ जाता है। पारे के ७६० सि.मा. निपीड में पानी का बुद्बुदांक १००° श. होता है। बुद्बुदांक के सम्यक् निरीक्षण से भिन्न भिन्न तरलों की पहचान हो सकती है।

कई वार उत्पत (volatile) तरल को थोड़े उत्पत तरल से अलग करने के लिये भी आसवन विधा का प्रयोग कर लेते हैं। बार बार आसवन करने से पानी और सुषव (alcohol) अलग किये जा सकते हैं।

प्रलयन (dissolution)—तरल में घुल कर सान्द्र पदार्थ के तरल बन जाने की विधा को 'प्रलयन' कहते हैं। सान्द्र और तरल के घुल कर बने हुए मिश्र (mixture) को 'विलयन' (solution) कहते हैं। मूल (original) तरल को 'विलायक' (solvent) और मूल सान्द्र को 'विलेय'

(soluble) कहते हैं। जो सान्द्र तरल में नहीं घुलते उनको 'अविलेय' (insoluble) कहा जाता है। विलेय को विलायक से पावन विधा द्वारा अलग नहीं किया सकता, किन्तु उद्वाष्पण द्वारा किया जा सकता है।

संपरीक्षा ९—साधारण लवण को पानी में डाल कर हिलाओ। लवण घुल कर अदृश्य हो जाएगा। यह नया तरल लवण और पानी का विलयन है। इसे चखने से लवण का स्वाद आएगा। अब इसे चीन-मृत्सा शराव में डाल कर आग पर तपाओ। सारे पानी के बाष्प बन कर उड़ जाने पर शराव में लवण शेष रह जाएगा।

अनुविद्ध (saturated) विलयन—किसी विलेय सान्द्र को तरल में डाल २ कर हिलाते रहने से कुछ समय पीछे तरल में उसकी मात्रा इतनी बढ़ जाएगी कि और अधिक सान्द्र उसमें नहीं घुलेगा। इस विधा को 'अनुवेधन' (saturation) कहते हैं और विलयन 'अनुविद्ध' कहलाता है।

अब यदि अनुविद्ध विलयन को आग पर तपाओगे तो उसमें सान्द्र की और अधिक मात्रा घुल जाएगी। किन्तु यदि उसमें अधिकाधिक सान्द्र डालते ही जाओगे तो उष्ण विलयन भी अनुविद्ध हो जाएगा। तब और अधिक सान्द्र उसमें नहीं घुल सकेगा।

संपरीक्षा १०—पिसे हुए पाक्य (nitre) और पानी को काचनाल में डाल कर हिलाओ। पाक्य घुल जाएगा। थोड़ा थोड़ा कर के पाक्य और मिलाते जाओ। वह भी घुलता जाएगा। कुछ समय पीछे पाक्य घुलने से रुक जाएगा और नीचे बैठने लगेगा। पानी पाक्य से अनुविद्ध हो गया है।

अब नीचे बैठे पाक्य समेत विलयन को आग पर तपाओ। वह भी घुल जाएगा। और अधिक पाक्य डालते जाने से कुछ समय पीछे उष्ण विलयन भी अनुविद्ध हो जाएगा। अब यदि उष्ण विलयन वाली नाल के ऊपर ठण्डे पानी की धारा डालोगे तो कुछ पाक्य विलयन से अलग हो कर क्षोद (powder) रूप में नीचे बैठने लगेगा। इससे सिद्ध हुआ कि ठण्डे तरल की अपेक्षा उष्ण तरल में सान्द्र की अधिक मात्रा घुलती है।

संपरीक्षा ११—पलिघ में पानी डाल कर तापमान से ताप देखो। फिर उसमें बहुत सा तिक्तातु नीरेय (ammonium chloride) डाल कर हिलाओ। पानी का तापांश घट जाएगा और तापमान का पारा नीचे चला जाएगा। इससे सिद्ध हुआ कि घुलते समय सान्द्र ऊष्मा का प्रचूषण (absorption) करते हैं। इसी कारण से शीत विलायक की अपेक्षा उष्ण विलायक में सान्द्र शीघ्रता से घुल जाते हैं।

यह बात सत्य है कि जब कोई सान्द्र पदार्थ तरल अथवा वाति रूप ग्रहण करता है और तरल पदार्थ वाति रूप में परिणत होता है तब ऊष्मा का प्रचूषण होता है इसके विपरीत जब कोई वाति तरल अथवा सान्द्र रूप में आती है और कोई तरल सान्द्र बनता है तो ऊष्मा का बहिष्कार होता है।

वातियाँ भी तरलों में घुल जाती हैं, किन्तु प्रलयन क्रिया के साथ साथ ऊष्मा का उद्भव होता है। तरल को तपाने से उसमें मिली हुई वाति अलग हो कर निकल जाती है।

स्फटन (crystallisation)—उष्ण अनुविद्ध विलयन को ठण्डा करने से सान्द्र पदार्थ की अधिक मात्रा नीचे बैठ जाती है। यदि नीचे बैठते हुए यह पदार्थ सुनिश्चित कोणों और चपटे पार्श्वों वाली डलियों अथवा शलाकाओं का रूप धारण कर ले तो उन डलियों अथवा शलाकाओं को

'स्फट' (crystal) कहते हैं और इस विधा को 'स्फटन'।

संपरीक्षा १० में यदि पाक्य के उष्ण अनुविद्ध विलयन को धीरे धीरे ठण्डा होने के लिये एक ओर रख दें तो पाक्य के बड़े बड़े स्फट बन जाएँगे।

किसी सान्द्र के अननुविद्ध (unsaturated) विलयन से स्फट प्राप्त करने के लिये विलायक तरल का कुछ भाग उबाल कर अथवा वायु में खुला रख कर मन्थर (slow) उद्वाष्पण द्वारा निकाल देना आवश्यक है। विलयन में से विलायक तरल के धीरे धीरे उद्वाष्पण से सान्द्र के स्फट बड़े बड़े बनते हैं। स्फटन क्रिया क्षिप्रता से होने पर छोटे २ स्फट बनते हैं।

स्फटों का आकार सुनिश्चित और ऋजु-रैखिक (geometrical) होता है। साधारण लवण के स्फट घनाकार (cubical form) होते हैं। प्राय: स्फटों के रूप से भी पदार्थ पहचाने जा सकते हैं।

स्फटात्मक (crystalline) और अस्फटात्मक (non crystalline or amorphous) पदार्थों के टूटने में भी बड़ा अन्तर है। स्फटात्मक पदार्थ दिशा विशेष में बड़ी सुगमता से टूट जाता है। उसके टुकड़ों के पार्श्व (face) चपटे होते हैं। शिला-लवण (rock salt) के टुकड़े घनाकार होंगे। काच अस्फटात्मक पदार्थ है इसलिये सभी दिशाओं में सुगमता से टूट जाता है। इसके टुकड़ों के पार्श्व गोलाई वाले (curved) भी हो सकते हैं।

स्फटन क्रिया में ऊष्मा का बहिष्कार होने के कारण तरल का तापांश चढ़ जाता है।

संपरीक्षा १२—क्षारातु गन्ध-शुल्बीय (sodium thio-sulphate) को पलिच में डाल कर अग्नि पर रख कर पिघलाओ और पिघले हुए तरल को उबालो। अब यदि पलिच का मुख कर्पास (cotton-wool) के डाट से मूँद कर उसे आग पर से उतार कर एक ओर ऐसे रख दो कि वह हिले जुले नहीं, तो बिना स्फटन के ही तरल ठण्डा हो जाएगा। अब यदि उस ठण्डे तरल में एक स्फट डाल दोगे तो स्फटन आरंभ हो जाएगा और तरल का तापांश चढ़ जाएगा।

यथार्थे प्रलयने सति प्रलीनम् अहीन-गुण-भारं प्रत्यादातुं शक्यते ॥

जब किसी वस्तु का यथार्थ प्रलयन होता है तब गुण और भार में विना किसी परिवर्तन के हम उस पदार्थ को विलयन में से पुन: निकाल सकते हैं।

संपरीक्षा १३—अच्छी प्रकार से सुखाया हुआ साधारण लवण ४ धान्य चीन-मृत्सा शराव में डाल कर ऊपर से ढक दो। छोटी सी काच शलाका भी ढकने के ऊपर रख दो। अब सभी वस्तुओं को इकट्ठा तोल लो। फिर चञ्चुकी में २० घ.शि मा. पानी डाल कर उसे भी तोल लो। अब बड़ी सावधानी से उस पानी को विना नीचे गिराए लवण वाले शराव में डाल कर काच शलाका से हिलाओ जिससे सारा लवण घुल जाए। तत्पश्चात् शराव, लवण-विलयन, शलाका, ढकने और चञ्चुकी को तोल लो। इन सबका भार पहले दोनों भारों के जोड़ के तुल्य होगा। अब चञ्चुकी को अलग करके शराव, विलयन, ढकने, और शलाका को सिकता तापन पर रख कर सारे पानी को उड़ा दो और फिर इनको तोलो। इन वस्तुओं का भार इनके पहले भार के तुल्य होगा। इससे सिद्ध हुआ कि पदार्थ की अवस्था में परिवर्तन होने से न तो प्रकृति की वृद्धि होती है और न ह्रास।

अवस्था परिवर्ते नैव वृद्धिर् न चापि ह्रास: प्रकृते: ॥

हिम के पिघलने से जो पानी बनता है उसका भार हिम के भार के तुल्य होता है।

विलेयता (solubility)—हम ऊपर देख चुके हैं कि पानी की एक ही परिमा में भिन्न भिन्न तापांशों पर पाक्य की भिन्न भिन्न मात्राएँ घुलती हैं। अन्य विलेय पदार्थों के विषय में भी यह बात सत्य है।

ताप-विशेषे विलेयस्य यावन्ति धान्यानि विलायकस्य धान्य-शतम् अनुविध्यन्ति तावन्त्य् एव विलेयस्य तत्-तापे विलेयता ॥

ताप विशेष पर विलेय पदार्थ की जितने धान्य मात्रा विलायक तरल के १०० धान्यों को अनुविद्ध कर देती है वही उस पदार्थ की उस ताप पर 'विलेयता' कहलाती है।

संपरीक्षा १४—बड़े पात्र में पानी डाल कर उसे पिनाल ज्वाला पर ऐसे तपाओ कि किसी भी अंश पर ताप स्थिर रह सके। तापांश देखने के लिये उसमें तापमान भी लगा दो। फिर पलिघ में पानी डाल कर उस पात्र में इस प्रकार से टिका कर रख दो कि पात्र का पानी पलिघ में न जाए। फिर ज्वाला पर पात्र को तपाओ। जब ताप १७° श. पर आ जाए तब पलिघ के अन्दर थोड़ी थोड़ी मात्रा में दहातु नीरीय (potassium chlorate) डाल कर काच शलाका से हिलाते जाओ जिससे वह भली भाँति घुलता जाए। कुछ समय पीछे पानी अनुविद्ध हो जाएगा। अब एक छोटे से चीन-मृत्सा शराव को तोलो। फिर शराव में थोड़ा सा अनुविद्ध विलयन डाल कर तोलो। तब शराव को बड़ी सावधानी से सिकता-तापन (sand bath) पर रख कर विलयन के पानी को सुखा दो। जब शराव में केवल दहातु नीरीय शेष रह जाए तो शराव को फिर तोलो।

१७°श. पर संपरीक्षा का फल

शराव का भार	= १६.१०६ धा.
शराव और अनुविद्ध विलयन का भार	= ३५.२४१ धा.
शराव और दहातु नीरीय का भार	= २०.१११ धा.
दहातु नीरीय का भार	= १.००५ धा.
पानी का भार	= १५.१३ धा.

इससे ज्ञात हुआ कि १७° श. ताप पर १५.१३ धा. पानी में अधिक से अधिक १.००५ धा. दहातु नीरीय विलीन हो सकता है। तो १०० धा. पानी में कितना होगा :—

$$\frac{१.००५ \times १००}{१५.१३} = ६.६ \text{ धा.}$$

अतः १७° श. पर दहातु नीरीय की विलेयता ६.६ है।

संपरीक्षा १५—ऊपर की संपरीक्षा में तापांश बढ़ा कर ४४°श. पर ले जाओ और उसी प्रकार संपरीक्षा का फल देखो—

शराव का भार	= १६.१०६ धा.
शराव और अनुविद्ध विलयन का भार	= २४.७०६ धा.
शराव और दहातु नीरीय का भार	= १६.८८६ धा.
दहातु नीरीय का भार	= .७८ धा.
पानी का भार	= ४.८२ धा.

इस से ज्ञात हुआ कि ४४°श. ताप पर ४.८२ धान्य जल में अधिक से अधिक .७८ धान्य दहातु नीरीय घुल सकता है। तो १०० धान्य जल में कितना घुलेगा :—

$$\frac{.७८ \times १००}{४.८२} = १६.२ \text{ धा.}$$

अत: ४४° श. पर दहातु नीरीय की विलेयता १६.२ है।

किसी भी पदार्थ की भिन्न भिन्न तापांशों पर विलेयता का बिन्दु-रेख चित्र (graph) बनाया जा सकता है। विलेयता को ऊर्ध्व अक्ष (upright axis) पर अंकित किया जाता है और तापांशों को क्षैतिज रेखा (horizontal line) पर (चित्र १६)।

द्रवण (fusion) और सान्द्रीभाव (solidification)—ऊष्मा से सान्द्र को पिघला कर तरल बनाने की विधा को 'द्रवण' कहते हैं। इसके विपरीत तरल की ऊष्मा का अपहरण करके उसको सान्द्र बनाने की विधा को 'सान्द्रीभाव' कहते हैं।

सान्द्र पदार्थ यदि शुद्ध होगा तो जब तक वह पिघलता रहेगा तब तक उसका ताप स्थिर रहेगा। इस स्थिर तापांश को उस सान्द्र का 'द्रावांक' (melting point) कहते हैं।
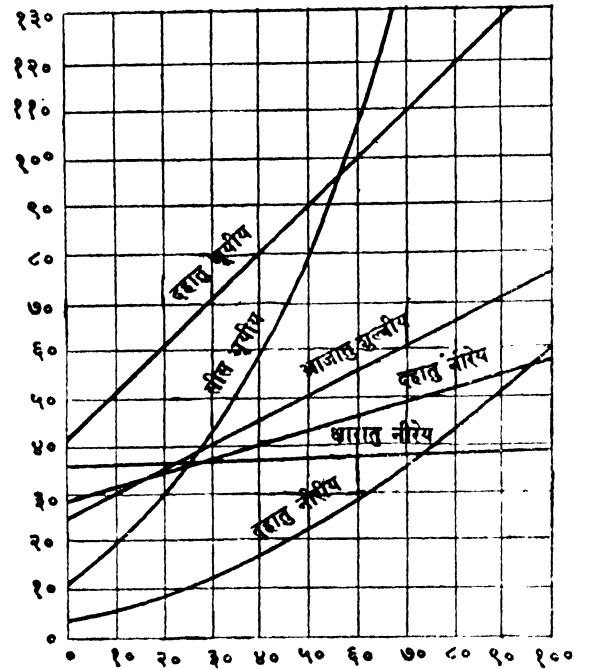
चित्र १६

पिघले हुए पदार्थ सान्द्र बनते समय स्फटात्मक रूप धारण कर लेते हैं। शीन (snow) को वीक्ष (lens) में से देखने से ज्ञात होगा कि वह स्फटों का ही पुञ्ज है।

संपरीक्षा १६—आसुत पानी को चञ्चुकी में डाल कर उसे बड़े पात्र में हिम (ice) और लवण के श्यान-मिश्र (freezing mixture) में रख दो। चञ्चुकी में तापमान डाल कर पानी को लगातार हिलाते रहो। हिम बनते तक तापमान का पारा ०°श. पर आ जाएगा और जब तक हिम बनती रहेगी वह इसी अंश पर स्थिर रहेगा। अब चञ्चुकी को श्यान-मिश्र में से निकाल कर बाहर रख दो। हिम धीरे धीरे पिघलने लगेगी और जब तक सारी हिम न पिघल जाएगी तब तक पारा ०° श. पर ही स्थिर रहेगा।

अत: ज्ञात हुआ कि जल का श्यानांक (freezing point) अथवा द्रावांक ०° श. है। यह शुद्ध जल का विशेष भौतिक गुण (characteristic physical property) है। प्रत्येक पदार्थ का अपना निश्चित द्रावांक होता है और प्राय: उसी अंक से पदार्थों की पहचान भी हो सकती है।

उत्सादन (sublimation)—यह एक उत्सर्ग (general rule, सामान्य नियम) है कि तपाने से सान्द्र तरल बन जाते हैं और उससे भी अधिक तपाने से बाष्प में परिणत हो जाते हैं। किन्तु जम्बुकी (iodine), कपूर (camphor) आदि कई सान्द्र पदार्थ इस उत्सर्ग के अपवाद (exception) भी हैं, क्योंकि तपाने से वे बिना तरल बने ही सीधे बाष्प बन जाते हैं। उस विधा

को, जिससे सान्द्र पदार्थ बिना तरल बने ही सीधे बाष्प बन कर फिर संघनन द्वारा सान्द्र बन जाएँ, 'उत्सादन' कहते हैं। उत्सादन से बहुधा पदार्थों के स्फट बन जाते हैं।

संपरीक्षा १७—परीक्षा नाल (test tube) में जम्बुकी डाल कर उसे धीमी आँच पर तपाओ। उसके नीललोहित (violet) रंग के बाष्प बन जाएँगे, किन्तु असित (dark) स्फट नहीं पिघलेंगे। नाल के ठण्डे भाग में पहुँच कर ये बाष्प संघनित होकर पत्तों जैसे असित स्फटों में परिणत हो जाते हैं।

उत्सादन द्वारा उत्पत सान्द्र को अनुत्पत सान्द्र से पृथक् किया जा सकता है।

तरलों में प्रसृति (diffusion)—भारी तरल हलके तरल में से एक साथ सारे का सारा ऊपर नहीं उठ सकता, किन्तु धीरे धीरे ऊपर के तरल में मिल जाता है। इसे 'प्रसृति' कहते हैं।

संपरीक्षा १८—ताम्र शुल्बीय (copper sulphate) के बड़े बड़े स्फटों को काच रम्भ में डाल कर ऊपर से पानी डाल दो। ताम्र शुल्बीय धीरे धीरे घुलने लगेगा और रम्भ के तले के निकट भारी नीला विलयन बन जाएगा। रम्भ को बार बार देखने से ज्ञात होगा कि नीला रंग क्रम से ऊपर को फैल रहा है। ताम्र शुल्बीय के लव प्रसृति द्वारा धीरे धीरे ऊपर को चढ़ रहे हैं।

वातियों की प्रसृति—तरलों की भाँति वातियाँ भी प्रसृति द्वारा आपस में मिल जाती हैं।

संपरीक्षा १९—ऊर्ध्व-बाहु नाल में पारा डाल कर उसका एक सिरा घृषि-त्वचा में पिरो दो। फिर घृषि-त्वचा को रन्ध्री समूहा कलश (porous battery jar) में कस कर लगा दो (चित्र १७)। एक बड़ी चञ्चुकी को उलटा कर के अंगार-वाति (coal gas) से भर लो, और जैसा कि चित्र में दिखाया गया है उसे रन्ध्री कलश के ऊपर ले आओ। नाल की बाहु 'क' में पारा झटपट नीचे गिर जाएगा। अंगार-वाति कलश में प्रवेश कर गई है। चञ्चुकी को हटा लेने से पारा अपने पहले तल से भी ऊपर चढ़ जाएगा। कलश में से कुछ वायु निकल गई है। अन्त में पारा उतर कर अपने पूर्व तल पर आ जाएगा।

इस संपरीक्षा में प्रसृति दोनों ओर से हुई है। रन्ध्री कलश में से वायु ने चञ्चुकी में प्रसृति द्वारा प्रवेश किया और अंगार वाति ने, जो कि वायु से हलकी होती है, तीव्रता से रन्ध्री कलश में। प्रसृति द्वारा भिन्न भिन्न घनता की वातियों को पृथक् किया जा सकता है। इसमें रन्ध्री कलश पाव का काम देता है।

क
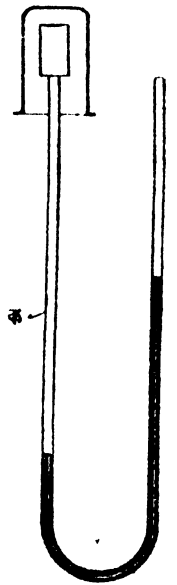
प्रसृति-सिद्धान्त (Graham's law of diffusion)—वातेः प्रसृति-गतिस् तद्-घनता-वर्गमूलं प्रतीपानुभागिनी ॥

चित्र १७

वातियों की प्रसृति की गति (rate) उनकी घनता के वर्गमूल (square root) के प्रतीपानुभागिनी (inversely proportional) होती है।

उदजन (hydrogen) सबसे हलकी वाति है, इसकी घनता १ है। अतः इसकी प्रसृति की गति $\frac{१}{\sqrt{१}} = १$ है।

वायु उदजन से १४.४ गुणा भारी है। अतः इसकी प्रसृति की गति $\frac{१}{\sqrt{१४.४}} = .२६$ है।

इसलिये जब किसी पात्र में १ प्रस्थ उदजन प्रसृति कर रही हो तो उसमें से केवल .२६ प्रस्थ वायु बाहर निकलेगी।

प्रकृति की अवस्था (the state of matter)—पदार्थ की अवस्था उसकी परिस्थितियों (conditions) पर निर्भर है। परिस्थितियों के परिवर्तन से पदार्थ की अवस्था में भी परिवर्तन हो सकता है। साधारणतया पानी तरल पदार्थ है, किन्तु तपाने से वह वाति अवस्था में परिणत हो जाता है। पारा भी तरल है, किन्तु पृथ्वी के ध्रुव प्रदेशों (arctic regions) पर वह सीस (lead) के समान सान्द्र हो जाएगा। लोहा आदि कई सान्द्र पदार्थ सूर्य के अंदर वाति अवस्था में पाए जाते हैं।

निपीड बढ़ाने से, ताप घटाने से अथवा दोनों विधाओं से सभी वातियाँ तरलों में परिणत की जा सकती हैं। वायु पहले तरल और फिर सान्द्र रूप धारण कर सकती है।

वाति के ताप को जब तक एक विशेष अंश तक न घटाया जाए तब तक निपीड को चाहे कितना ही क्यों न बढ़ाते जाओ, वाति तरल अवस्था को नहीं प्राप्त होगी। इस विशेष तापांश को 'संकट-ताप' (critical temperature) कहते हैं। प्रत्येक वाति का संकट-ताप भिन्न होता है।

जब कोई पदार्थ अपने संकट-ताप से न्यून ताप के अन्दर वाति अवस्था में होता है तो उसे 'बाष्प' (vapour) कहते हैं। बाष्प का यह लक्षण (definition) उन सभी पदार्थों के वातीय (gaseous) रूप पर घटता है जो साधारणतया सान्द्र अथवा तरल अवस्था में होते हैं।

पानी के भौतिक गुण—पावित और आसुत पानी शुद्ध होता है। उसमें गन्ध (smell) और स्वाद (taste) सर्वथा नहीं होते। ०° श. पर वह जम कर हिम बन जाता है और पारे के ७६० सि. मा. के निपीड में १००° श. पर उबलने लगता है।

पदार्थों को पहचानने के सब से सरल साधन उनके भौतिक गुण हैं। इन गुणों में से प्रायः निम्न-लिखित बातों पर अधिक ध्यान दिया जाता है :—

१. रूप २. अवस्था ३. गन्ध ४. स्पर्श ५. विलेयता ६. उसपर ऊष्मा की क्रिया ७. द्रावांक और बुद्बुदांक ८. गीले शेवल पर उसकी क्रिया।।

छठा अध्याय

भौतिक और रसायनिक परिवर्तन—प्रकृति की अनाश्यता (indestructibility)

भौतिक परिवर्तन—प्रकृति में नाना प्रकार के परिवर्तन हो सकते हैं। कई उनमें से भौतिक और कई रसायनिक होते हैं।

भौतिक परिवर्तन उसे कहते हैं जिससे पदार्थ के गुणों में परिवर्तन होता है, किन्तु उसके निबन्ध (composition) में कोई भेद नहीं पड़ता।

उदाहरण १—उष्ण करने से पानी भाप बन जाता है और बहुत ठण्डा करने से हिम। ये पानी के भौतिक परिवर्तन हैं क्योंकि पानी, भाप और हिम के व्यूहाणुओं (molecules) का निबन्ध एक ही है।

उदाहरण २—लोहे के टुकड़े को चुम्बक (magnet) के साथ रगड़ने से वह चुम्बकित (magnetised) हो जाता है। उसके गुण में यह परिवर्तन हो जाता है कि वह लोहे के अन्य छोटे छोटे टुकड़ों को अपनी ओर खेंचने लगता है। उसके निबन्ध में कोई भेद नहीं पड़ता और न ही उसका कोई नया पदार्थ बनता है। इसलिये चुम्बकित होना उसमें भौतिक परिवर्तन है।

उदाहरण ३—महातु तन्तु (platinum wire) के टुकड़े को आग पर तपाओ। पहले वह तप कर रक्त हो जाएगा। फिर श्वेत हो कर उसमें से प्रकाश की किरणें निकलने लगेंगी। जब उसे आग पर से हटा लोगे तब ठण्डा होकर पूर्ववत् प्रकाश-हीन हो जाएगा। उसके भार आदि में कोई परिवर्तन नहीं होगा। इसलिये तपाने से उसमें केवल भौतिक परिवर्तन ही होता है।

रसायनिक परिवर्तन (chemical change)—पदार्थों के निबन्ध में जो परिवर्तन होता है उसे 'रसायनिक परिवर्तन' कहते हैं।

पदार्थानां निबन्धे परिवर्तनं रासायनिकं परिवर्तनम् उच्यते ॥

पदार्थों के निबन्धों का अध्ययन और उनमें होने वाले परिवर्तनों का अन्वेषण ही रसायन शास्त्र का विषय है।

उदाहरण १—चिरकाल तक खुली वायु में पड़ा रहने से लोहे के टुकड़े को मण्डूर (rust) लग जाता है। यह रसायनिक परिवर्तन है।

उदाहरण २—यदि भ्राजातु (magnesium) के टुकड़े को आग की ज्वाला में रखा जाए तो वह इतने अधिक प्रकाश से जलने लगेगा कि आँखें चुँधिया जाएँगी। जल कर उसका भ्राजातु जारेय (magnesium oxide) बन जाएगा जो रंग में श्वेत और टूटने में भिदुर (brittle) होगा। यह भी रसायनिक परिवर्तन है।

संपरीक्षा २०—भ्राजातु की पट्टिका (ribbon) को चीन-मृत्सा मूषा (crucible) में रख कर ऊपर से ढकना देकर सारेको तोल लो। मूषा को नाड-मृत् त्रिकोण (pipe-clay triangle) पर रख कर नीचे पिनाल ज्वाला जलाओ (चित्र १८)। ढकने को घड़ी घड़ी थोड़ा सा उठाते रहो जिससे वायु अन्दर जा सके। जब भ्राजातु जल चुके तो सारेको फिर तोलो। भार पहले से अधिक होगा।

भ्राजातु का भार बढ़ गया है इसलिये अवश्य ही इसमें प्रकृति की वृद्धि हुई है। अत: उसके निबन्ध में परिवर्तन हो गया है। वायु में से वाति-पदार्थ निकल कर भ्राजातु के साथ मिल गया है और दोनों का रसायनिक संयोजन (chemical combination) हो गया है।

अत: सिद्ध हुआ कि निबन्ध का परिवर्तन ही रसायनिक परिवर्तन है।
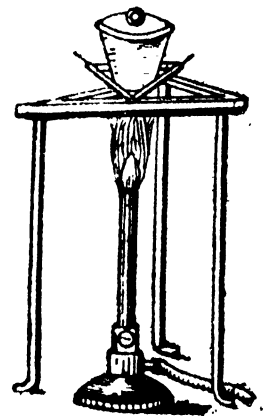
चित्र १८

हमारे जीवन में चारों ओर नाना प्रकार के रसायनिक परिवर्तन होते रहते हैं। सिक्थवर्ती (candle) और अंगार (coal) आदि का जलना, रोटी, दूध, फल, आदि खाद्य पदार्थों का शरीर के भीतर जा कर मांस, मज्जा, अस्थि, आदि में परिणत होना—ये सब रसायनिक परिवर्तन हैं।

एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हुए भी भौतिक और रसायनिक परिवर्तनों का परस्पर घना संबन्ध है, क्योंकि बहुधा रसायनिक परिवर्तन के साथ साथ कोई न कोई भौतिक परिवर्तन भी हो ही

जाता है; यथा परिमा में घटाव बढ़ाव, प्रकाश और ऊष्मा का उद्भव आदि।

साधारण रूप से भौतिक परिवर्तनों से संबन्ध रखने वाले शास्त्र को 'भौतिकी' (physics) और रसायनिक परिवर्तन जिसका विषय है उसे 'रसायन' (chemistry) शास्त्र कहते हैं।

नये पदार्थ का बन जाना रसायनिक परिवर्तन की पक्की पहचान है। यह सिद्ध करने के लिये कि कहाँ रसायनिक परिवर्तन हुआ है हमें दिखलाना होगा कि वहाँ नया पदार्थ बन गया है।

कई भौतिक परिवर्तन होते समय ऊष्मा और प्रकाश दोनों का बहिष्कार होता है, जैसे पानी में परिणत होते समय भाप में से ऊष्मा बाहर निकलती है।

यदि उदनीरिक अम्ल (hydrochloric acid) में राजाश्म (marble) का टुकड़ा डाला जाए तो वह घुल जाता है और उससे नए पदार्थ बन जाते हैं। उसमें से एक प्रकार की अदृश्य वाति निकल कर उड़ जाती है और विलयन में सान्द्र शेष रह जाता है। यह सान्द्र विलेय होता है और राजाश्म से, जो कि अविलेय है, बहुत भिन्न होता है।

कई पदार्थों को तपाने से उनका दो अथवा अधिक प्रकार की प्रकृति के पदार्थों में विबन्धन (decomposition) हो जाता है। राजाश्म को जलाने से उसका विबन्धन होकर एक प्रकार की अदृश्य वाति और जीवचूर्णक (quicklime) बन जाते हैं। जीवचूर्णक का भार मूल राजाश्म से घट जाता है।

प्रकृति का न नाश होता है और न सर्जन—हम ऊपर देख चुके हैं कि भ्राजातु को वायु में जलाने से उसका भार बढ़ गया था। उसमें जो प्रकृति की वृद्धि हुई वह वायु में से आई। उसमें नई प्रकृति का सर्जन नहीं हुआ। भ्राजातु का भार जितना बढ़ा उतना ही वायु का भार घट गया।

वैज्ञानिक लोग पहले समझते थे कि दहन अथवा जलने से पदार्थों का नाश हो जाता है। जब सिक्थवर्ती धीरे धीरे सारी जल जाती है तब जिस प्रकृति की वह बनी होती है देखने में उसकी सत्ता लोप हो जाती है। वास्तव में उस प्रकृति का नाश नहीं होता किन्तु वह अदृश्य वाति-पदार्थ बन कर उड़ जाती है।

संपरीक्षा २१—एक चौथाई प्रस्थ धारिता का गोल तले वाला पलिघ लेकर उसे भली भाँति सुखा लो। उसमें भास्वर (phosphorus) की कुछ सूखी डलियाँ डाल कर उसका मुख काच की टोंटी वाली घृषि-त्वक्षा से कस कर मूँद दो। फिर सारे साधित्र (apparatus) को तोल लो। अब पलिघ को बड़ी सावधानी से पिनाल ज्वाला पर तपाओ। भास्वर पलिघ के भीतर की वायु में जलने लगेगा। फिर पलिघ को ठण्डा कर के तोलो। भार में कोई परिवर्तन नहीं होगा। अब टोंटी खोल दो। बाहर की वायु वेग से अन्दर प्रवेश करेगी और पलिघ का भार बढ़ जाएगा।

इस संपरीक्षा से ज्ञात हुआ कि जलते हुए भास्वर ने पलिघ की वायु में से कुछ प्रकृति का भाग ले लिया था जो वाति रूप में ही उसके साथ मिल गया था। टोंटी खोलने पर उसके स्थान की पूर्त्ति करने के लिये बाहर से वायु अन्दर चली गई।

टोंटी खोलने से पलिघ का जितना भार बढ़ा वह भार उस प्रकृति के भार के तुल्य है जिसे भास्वर ने वायु में से लेकर अपने साथ मिला लिया था। भास्वर के जलने से उसमें नई प्रकृति का संयोग होकर श्वेत क्षोद बन गया जिसे 'भास्वर जारेय' (oxide of phosphorus) कहते हैं।

यह पानी में सरलता से घुल जाता है और नीले शेवल (litmus) को रक्त बना देता है।

इस संपरीक्षा से यह भी ज्ञात हो गया कि वायु का भी भार होता है॥

सातवाँ अध्याय

जारेयों और पानी का विबन्धन

उदजन और जारक

वायु में धातुओं का जारण—महातु के समान कुछ धातुओं को खुली वायु में आग पर तपाने से उनमें कोई रसायनिक परिवर्तन नहीं होता किंतु भ्राजातु जैसी धातुओं के जारेय बन जाते हैं। इस विधा को 'जारण' कहते हैं। ताम्बे के तन्तु अथवा स्तार (sheet) को पिनाल ज्वाला पर तपाने से उसके ऊपर काला सा पदार्थ बन जाएगा जिसे 'ताम्र जारेय' (copper oxide) कहते हैं। इसको खुरचने से नीचे से चमकता हुआ ताम्बा निकल आएगा। किन्तु यदि ताम्बे को वायु-शून्य काचनाल में रखकर तपाया जाए तो उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इससे ज्ञात हुआ कि जारण में वायु की भी कुछ क्रिया होती है।

जारेय बनने से प्राय: भार में वृद्धि हो जाती है, क्योंकि वायु में से प्रकृति का कुछ भाग धातु के साथ मिल जाता है। लोहे का जारेय काला, कुप्यातु (zinc) का श्वेत और सीस का पीला होता है। वायु में तपाने से चाँदी का जारण नहीं होता।

कुप्यातु और कुछ मन्द (dilute) अम्ल—कुप्यातु को उदनीरिक अम्ल में डालने से बड़ी तीव्र क्रिया होने लगती है और कुप्यातु घुल जाता है। अम्ल के गुण नष्ट हो जाते हैं और वह धीरे धीरे नए पदार्थों में परिणत हो जाता है। केवेंडिश (Cavendish) नाम के वैज्ञानिक ने संपरीक्षा करके देखा था कि उसमें से एक प्रकार की रंग-हीन अभिज्वालय (inflammable) वाति निकलती है। परीक्षा नाल में कुप्यातु को मन्द शुल्बारिक अम्ल अथवा उदनीरिक अम्ल में डालने से भी हम देख सकते हैं कि वही वाति उत्पन्न होती है और नाल के पास जलती हुई दियासलाई ले जाने से वह जलने लगती है। वायु में जलने पर उस वाति से पानी बनने लगता है, इसलिये उस वाति का नाम उद्-जन (hydro-gen) अर्थात् पानी बनाने वाली वाति रखा गया है।

पानी अथवा भाप पर धातुओं की क्रिया—अनुकूल परिस्थितियों में पानी जब कई धातुओं से संस्पर्श (contact) करता है तब उसमें से उदजन सारी की सारी अथवा कुछ मात्रा में निकल जाती है। निकली हुई उदजन का स्थान धातु पूरा करती है। कई धातुओं में यह परिवर्तन साधारण ताप पर हो जाता है। यदि छिछले (shallow) पात्र में पानी डालकर उसमें क्षारातु (sodium) का टुकड़ा छोड़ दें तो तुरंत क्रिया आरम्भ हो जाती है। इससे इतनी उष्मा उत्पन्न होती है कि क्षारातु पिघल कर पानी पर तैरने लगता है और सी सी करता हुआ लुप्त हो जाता है। अवशिष्ट तरल में डालने से हरिद्रा पत्र (turmeric paper) भूरा और रक्त शेवल नीला हो जाता है। जब उद्वाष्पण से तरल सूख जाता है तब श्वेत रंग का सान्द्र बन जाता है जिसको 'क्षारातु उदजारेय' (sodium hydroxide) अथवा 'दह विक्षार' (caustic soda) कहते हैं।

ठण्डे पानी के संस्पर्श से कई धातुओं में कोई प्रतिक्रिया (reaction) नहीं होती, किन्तु कई एक धातु भाप में से जारक को ले लेते हैं । लोहे और भाप के संस्पर्श से उद्‌जन और काल अयोजारेय (black oxide of iron) वन जाते हैं । भ्राजातु और भाप के संयोग से उद्‌जन और भ्राजातु जारेय वन जाते हैं। कुप्यातु भी भाप का विबन्धन कर देता है।

संपरीक्षा २२—कठिन काचनाल (hard glass tube) में भ्राजातु डाल कर उसे उबलते हुए पानी के पलिघ के साथ जोड़ दो। इस प्रकार भ्राजातु भाप के वाह (current) में उष्ण होगा और क्षिप्रता से भ्राजातु जारेय बनने लगेगा । प्रदान नाल (delivery tube) के सिरे को पानी में डुबा कर उद्‌जन इकट्ठी की जा सकती है (चित्र १९) ।

चित्र १९
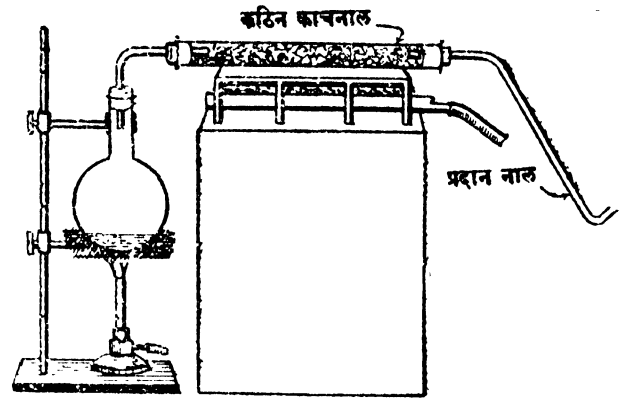
उद्‌जन का निर्माण और उसके गुण—उद्‌जन बनाने की सब से सरल विधि यह है कि कुप्यातु को मन्द शुल्बारिक अम्ल (dilute sulphuric acid) में डाल दिया जाए। अम्ल पर कुप्यातु की क्रिया से उद्‌जन बनने लगेगी।

संपरीक्षा २३—चौड़ी द्विमुखी कूपी (Woulf's bottle) में ३० धान्य कुप्यातु और पर्याप्त पानी डाल कर धृषि-त्वचा द्वारा उसके मुखों में शृगाल-निवाप (thistle funnel) और वाति प्रदान नाल लगा दो। शृगाल-निवाप का निचला सिरा पानी में डूबा रहे । प्रदान-नाल का दूसरा सिरा मारुत द्रोणी (pneumatic trough) में रखे हुए मधुच्छत्र निधाय (beehive shelf) के नीचे ले-जाकर द्रोणी में निधाय के ऊपर तक पानी भर दो (चित्र २०)। फिर शृगाल-निवाप द्वारा शुल्बारिक अम्ल डाल दो। उद्‌जन बनने लगेगी। प्रदान नाल के मुख पर ले जा कर रम्भ को वाति से भर लो और साधारण रीति से उसकी परीक्षा कर लो। यदि वह बिना शब्द किये जलने लगे तो शुद्ध है।
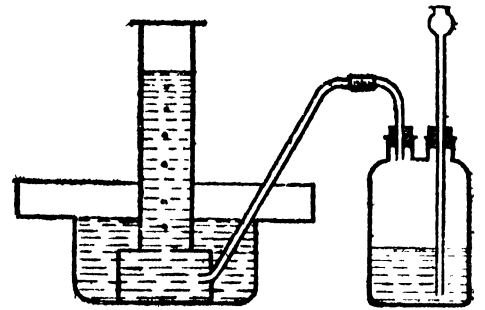
चित्र २०

ध्यान से देखने से ज्ञात होगा कि इस वाति का कोई रंग नहीं है। यदि वाति अशुद्ध हो तो उसमें से धीमी सी (faint) गन्ध आती है, किन्तु शुद्ध वाति निर्गन्ध होती है । यह स्वयं वायु में जल सकती है किन्तु दहन की पोषक (supporter of combustion) नहीं है, अर्थात् इसके अन्दर कोई अन्य पदार्थ नहीं जल सकता। जलती हुई दियासलाई दिखाने से वायु और उद्‌जन के मिश्र का उत्स्फोटन (explosion) हो जाता है, इसलिये सावधान रहना चाहिये।

संपरीक्षा २४—औंधे कलश में उद्‌जन भर कर उसमें जलती हुई सिक्थवर्ती ले जाओ। कलश के मुख पर वाति जलने लगेगी, किंतु वर्ती बुझ जाएगी। शुद्ध उद्‌जन की ज्वाला नीली होती है किन्तु अशुद्ध (impure) की पीली।

उद्‌जन वायु से हलकी होती है और वास्तव में संसार के सभी पदार्थों से हलकी है।

संपरीक्षा २५—औंधे कलश में उद्‌जन भर कर उसके नीचे वायु से भरा कलश सीधा रख कर

कलश ऊपर (उलटा) और ऊपर का नीचे (सीधा) कर दो। कुछ समय के पीछे यदि ऊपर का कलश हटा कर उसके मुख के पास दियासलाई ले जाओगे तो वाति जलने लगेगी, किन्तु निचले कलश के पास दियासलाई ले जाने से कुछ नहीं होगा। हलकी होने के कारण प्रसृति द्वारा उद्जन ऊपर के कलश में चली गई है और निचले कलश में वायु ने उसका स्थान ले लिया है।

संपरीक्षा २६—उद्जन साधित्र की प्रदान नाल के साथ घृषि का बना वागोल (balloon) लगा दो। वह उद्जन से भर कर फूल जाएगा। उसका मुख बाँध कर उसे वायु में छोड़ दो। वह बड़ी द्रुत गति से आकाश में ऊपर चढ़ने लगेगा। इससे सिद्ध हुआ कि उद्जन वायु से हलकी है।

जारेयों पर उद्जन की क्रिया—जब उद्जन को तपाए हुए ताम्र जारेय (copper oxide) में से ले जाया जाएगा तब उद्जन उसमें से जारक के साथ मिल कर पानी बना देगी और ताम्बा धातुरूप में शेष रह जाएगा। उद्जन द्वारा जारेयों में से जारक अपहरण करने की विधा को 'प्रह्रसन' (reduction) कहते हैं और जिस संयोग में से जारक अपहृत हुई हो उसे 'प्रह्रसित' (reduced) । यहाँ प्रह्रसित होकर ताम्र जारेय का ताम्बा रह गया।

धातु और अम्ल—शुल्बारिक अम्ल (sulphuric acid), उदनीरिक अम्ल (hydrochloric acid) और भूयिक अम्ल (nitric acid) ही प्रयोगशाला (laboratory) में सबसे अधिक काम आने वाले अम्ल हैं। संकेन्द्रित (concentrated) और मन्द दोनों ही अवस्थाओं में इनका प्रयोग होता है। पानी मिला देने से संकेन्द्रित अम्ल मन्द हो जाता है। मन्द अवस्था में ये तीनों अम्ल नीले शेवल को रक्त कर देते हैं।

शुल्बारिक अम्ल गाढ़ा और चिकना तरल होता है जो पत्र अथवा लकड़ी को जला देता है। इसको पानी में डालने से जो मिश्र बनता है वह उष्ण हो जाता है। यदि मन्द शुल्बारिक अम्ल में पत्र भिगो कर आग पर सुखाएँ तो पानी उड़ जाने के पीछे पत्र जल जाएगा। यदि अम्ल को तीव्र आँच पर तपाते जाएँ तो इसमें से भारी श्वेत रंग का धूम उठेगा जिसकी गन्ध से साँस घुटने लगेगा।

उदनीरिक अम्ल प्रायः रंग-हीन होता है और उसमें से तीखी गन्ध का धूम उठता है, जो गीली वायु में धुँधला हो जाता है।

भूयिक अम्ल कुछ समय तक पड़ा रहने से पीला हो जाता है। यदि यह तीव्र हो तो इससे अंगुलियों और कपड़ों पर पीले धब्बे पड़ जाते हैं। तपाने से इसमें से भूरा धूम उठता है जिसकी गन्ध विशेष प्रकार की होती है।

संपरीक्षा २७—परीक्षा नाल में अयश्चूर्ण (iron filings) डाल कर ऊपर से मन्द शुल्बारिक अम्ल डाल दो। उद्जन बन कर निकलने लगेगी। नाल के मुख के पास जलती हुई दियासलाई ले जाने से उद्जन जलने लगेगी। विलयन में से स्फटन द्वारा हरे रंग का अयस् शुल्बीय (iron sulphate) निकल सकता है।

संपरीक्षा २८—परीक्षा नाल में ताम्बे के छोटे छोटे टुकड़े डाल कर ऊपर से मन्द भूयिक अम्ल डाल दो। उसमें से भूरे रंग की वाति निकलने लगेगी। उद्जन नहीं निकलेगी। विलयन में से स्फटन द्वारा नीले रंग का सान्द्र ताम्र भूयीय (copper nitrate) निकल सकता है।

उद्नीरिक अथवा मन्द शुल्बारिक अम्ल में से प्राय: उद्जन उत्पन्न होती है । भूयिक अम्ल से प्राय: उद्जन नहीं बनती । केवल भ्राजातु ही एक ऐसी धातु है जो मन्द भूयिक अम्ल की क्रिया से उद्जन बनाती है । जब धातु की क्रिया संकेद्रित शुल्बारिक अम्ल पर होती है तब प्राय: जलती हुई गन्धक के समान गन्ध उठती है जिससे साँस घुटता है । कई बार धातुओं और अम्लों के मेल से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती । शुद्ध ताम्बे की मन्द शुल्बारिक अम्ल पर कोई क्रिया नहीं होती । विलयनों में से प्राप्त होने वाले सान्द्र संयोगों (compounds) को 'लवण' (salts) कहते हैं । शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त लवणों को 'शुल्बीय' (sulphates), भूयिक अम्ल के लवणों को 'भूयीय' (nitrates) और उद्नीरिक अम्ल के लवणों को 'नीरेय' (chlorides) कहते हैं ।

जारक का निर्माण और उसके गुण—रक्त पारद जारेय (red oxide of mercury) को आग पर तपाने से 'जारक' (oxygen) नाम की वाति अलग होकर निकल जाती है और पारा अलग रह जाता है ।

संपरीक्षा २९—कठिन काचनाल (hard glass tube) में रक्त पारद जारेय डाल कर तपाओ । पहले यह काला हो जाएगा फिर इसका विबन्धन होकर इसमें से जारक निकल जाएगी और चमकता हुआ पारा शेष रह जाएगा । नाल में दहकती हुई लकड़ी डालने से लकड़ी में से ज्वालाएँ उठने लगेंगी ।

पाक्य (nitre) को तपाने से जारक निकलती है, किन्तु प्रयोगशाला के लिये जारक प्राप्त करने की सुगम विधि यह है कि दहातु नीरीय (potassium chlorate) को लोहक द्विजारेय अथवा काल लोहक जारेय (manganese dioxide or black manganese oxide) से मिला कर तपाया जाए । तपाने से दहातु नीरीय का विबन्धन होकर दहातु नीरेय (potassium chloride) और जारक बनेंगे, किन्तु लोहक द्विजारेय मिलाने से विबन्धन थोड़े ताप पर ही हो जाएगा ।

संपरीक्षा ३०—दहातु नीरीय के क्षोद को इससे चौथाई भाग लोहक द्विजारेय में मिला कर काच की कठिन परीक्षा नाल में डाल कर तपाओ । परीक्षा नाल में प्रदान नाल लगा कर उसका दूसरा सिरा पानी से भरे हुए उलटे रम्भ में, जो मारुत द्रोणी में रखा हो, डाल दो (चित्र २१) । इस प्रकार रम्भ में से पानी निकलता जाएगा और उसके स्थान में प्रदान नाल में से जारक भरती जाएगी । ऐसे छ: सात रम्भ भर कर रख लो और उन्हें काच बिम्बों (glass discs) से ढक दो । निम्नलिखित संपरीक्षाओं द्वारा जारक के गुणों की परीक्षा करो:—
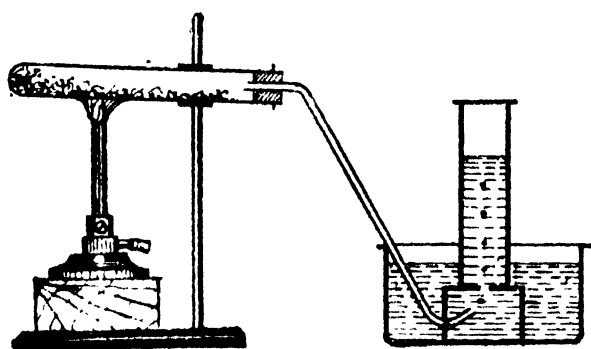
चित्र २१

संपरीक्षा ३१—दहकती हुई लकड़ी का टुकड़ा जारक से भरे हुए कलश में डालो । लकड़ी से ज्वालाएँ उठने लगेंगी, किन्तु जारक को आग नहीं लगेगी । जब कलश के अन्दर कुछ समय तक

हिलाओ। उस विलयन से शेवल रक्त हो जाएगा और चूने का पानी (lime water) दूधिया रंग का हो जाएगा।

संपरीक्षा ३२—उद्दहन स्रुव (deflagrating spoon) में दहकता हुआ अंगार रख कर जारक के कलश में डालो। अंगार में से बहुत चमकती हुई ज्वाला उठेगी। कुछ समय पीछे इसमें भी आसुत पानी डालकर विलयन की पूर्ववत् परीक्षा करो। कलश में केवल प्रांगार (carbon) की द्विजारेय ही बन सकती है। इसलिये शेवल का रक्त होना और चूने के पानी का रंग दूधिया बन जाना इस जारेय की ही क्रिया का फल है। प्रांगार द्विजारेय (carbon dioxide) की कोई विशिष्ट गन्ध नहीं होती।

संपरीक्षा ३३—जलती हुई सिक्थवर्ती जारक से भरे कलश में ले जाओ। वायु की अपेक्षा जारक में बत्ती की ज्वाला का प्रकाश अधिक बढ़ जाएगा। फिर कलश में पानी डाल कर पूर्ववत् परीक्षा करो। इसके भी वही गुण होंगे।

संपरीक्षा ३४—गन्धक की डली उद्दहन स्रुव में रख कर जलाओ। जब स्रुव को जारक के कलश में डालोगे तो गन्धक की ज्वाला, जो मन्द होती है, तीव्र हो कर बड़ी चमक के साथ जलने लगेगी और उसमें से श्वेत धूम उठेगा। फिर कलश में पानी डाल कर हिलाओ। उस विलयन से नीला शेवल रक्त हो जाएगा। जो वाति उत्पन्न होगी उसकी गन्ध से साँस घुटेगा।

संपरीक्षा ३५—उद्दहन कलश (jar) में जारक भर कर रख लो। फिर भास्वर की डली को पाव-पत्र में झट पट सुखा कर उद्दहन स्रुव में डाल कर तपाओ। जब वह जलने लगे तो उसे कलश में डालो। वह इतनी चमक से जलने लगेगी कि आँखें चुँधिया जाएँगी और उसमें से घना और श्वेत रंग का धूम उठेगा। फिर उसमें पानी डाल कर हिलाओ। धूम पानी में घुल जाएगा और उस विलयन में नीला शेवल डालने से रक्त हो जाएगा।

संपरीक्षा ३६—उद्दहन स्रुव में क्षारातु, भ्राजातु अथवा दहातु का टुकड़ा डालकर जलाओ और जारक के कलश में ले जाओ। वह अधिक चमक से जलने लगेगा और उसमें से धूम उठेगा। स्रुव में श्वेत रंग का जारेय बन जाएगा। जारेय को पानी में घोल कर विलयन बनाओ। इस विलयन में पहले से मन्द शुल्बारिक अम्ल से रक्त किया हुआ शेवल डालने से वह पुनः नीले रंग का हो जाएगा।

संपरीक्षा ३७—लोहे के पतले तन्तु का कुन्तल (spiral) लेकर उसे पिघली हुई गन्धक में डुबा लो और उद्दहन स्रुव के साथ बाँध कर आग लगा दो। जारक से भरे उद्दहन कलश में स्रुव को ले जाने से कुन्तल बड़ी चमक से जलने लगेगा और उसमें से पिघले हुए जारेय के बिन्दु टपकने लगेंगे। वह जारेय पानी में नहीं घुलता और न ही शेवल पर उसकी कोई क्रिया होती है।

पहली पांच संपरीक्षाओं (३१-३५) में अधातु (non-metal) तत्त्वों (elements) को जारक में जलाया था और पिछली दो (३६, ३७) में धातुओं को। अधातु तत्त्वों के जारेय पानी में घुल कर अम्ल के समान शेवल को रक्त कर देते हैं, किन्तु धातु तत्त्वों के जारेय दो प्रकार के होते हैं—एक विलेय और दूसरे अविलेय। विलेय जारेयों के विलयन अम्ल के समान नहीं होते और वे पहले से रक्त किये हुए शेवल का रंग पुनः नीला कर देते हैं। ऐसे विलेय जारेयों को 'क्षारक' (alkali) कहते हैं। धातुओं के अविलेय जारेयों की शेवल पर कोई क्रिया नहीं होती।

आठवाँ अध्याय

पानी का निबन्ध

तत्त्व, संयोग और मिश्र

पानी का विद्युदंशन (electrolysis) और परिमा के अनुसार इसका निबन्ध—हम देख चुके हैं कि जारक के साथ मिल कर उद्जन पानी बनाती है। जब उद्जन वायु में जलती है अथवा जब यह तपे हुए जारेयों पर से होकर जाती है तब इसके साथ जारक का संयोग हो कर पानी बन जाता है। अब हम पानी में से दोनों वातियों को अलग करके उन्हें स्वतन्त्र (free) अवस्था में प्राप्त करने की रीति (method) का अध्ययन करेंगे। विद्युद्-वाह (electric current) द्वारा हम पानी में से उद्जन और जारक को अलग कर सकते हैं। इस प्रकार से प्राप्त की हुई उद्जन की परिमा जारक की परिमा से दुगुनी होती है।

चित्र २२

इस प्रकार प्रकृति के असंयुक्त रूपों में पदार्थ का विबन्धन करने की विधा को 'विश्लेषण' (analysis) कहते और यदि यह विबन्धन विद्युद्वाह द्वारा किया जाए तो उसे 'विद्युदंशन' कहते हैं।

संपरीक्षा ३८—चित्र २२ में दिये हुए साधित्र के दोनों पार्श्वों (sides) की नालों में ऊपर के सिरों पर टोंटियाँ (stop-cocks) लगी हुई हैं और निचले सिरे घृषि-त्वचाओं से मुँदे हुए हैं। घृषि-त्वचाओं में से महातु के तन्तु पिरो कर उन्हें नालों के भीतर ले जाकर उनसे महातु पट्ट (platinum plates) जोड़े हुए हैं। बीच वाली नाल नीचे से दोनों नालों के साथ मिली हुई है और उसके ऊपर के सिरे पर निवाप होता है। इस साधित्र का नाम 'द्युमात्रामान' (voltameter) है। महातु पट्ट विद्युद्द्वारों (electrodes) का काम देते हैं।
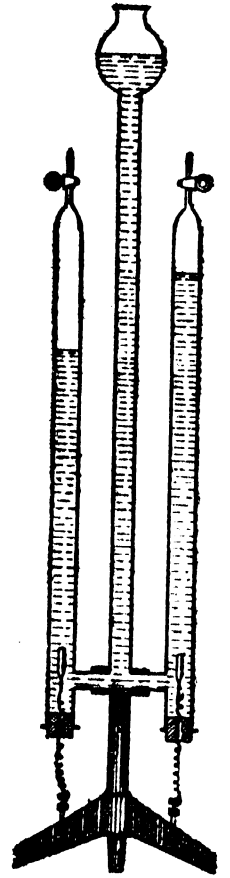
मन्द शुल्बारिक अम्ल को निवाप में से डाल कर पार्श्वों की दोनों नालों को ऊपर टोंटियों तक भर दो जिससे उनमें वायु सर्वथा न रहे। फिर टोंटियों को मूँद दो। अब महातु तन्तुओं को विद्युत्समूहा (electric battery) के ध्रुवों (poles) के साथ जोड़ दो। विद्युत् का वाह समूहा के एक ध्रुव से चल कर महातु तन्तु द्वारा एक विद्युद्द्वार—उद्द्वार (anode)—में प्रवेश करके वहां से तरल में से होता हुआ दूसरे विद्युद्-द्वार—निद्वार (cathode)—से निकल कर समूहा के दूसरे ध्रुव में चला जाएगा। इससे दोनों विद्युद्द्वारों के पास से तरल में से वातियाँ निकल कर अलग होने लगेंगी और नालों में चढ़ कर टोंटियों के पास इकट्ठी होती जाएँगी। जब वातियाँ पर्याप्त मात्रा में इकट्ठी हो जाएँ तो तन्तुओं को समूहा से अलग कर दो। देखने से प्रतीत होगा कि निद्वार वाली वाति की परिमा उद्द्वार वाली वाति की परिमा से दुगुनी है। परीक्षा करने से ज्ञात हो जाएगा कि अधिक परिमा की वाति उद्जन और अल्प परिमा की जारक है।

पानी का संश्लेषण (synthesis)—पदार्थों के आपसमें सीधे मिल जाने से जटिलतर (more complex) पदार्थ बन जाते हैं। इस विधा को 'संश्लेषण' कहते हैं। प्रश्न उठता है कि ऊपर की संपरीक्षा में दोनों वातियाँ पानी से प्राप्त हुईं, अम्ल से प्राप्त हुईं, अथवा दोनोंसे प्राप्त हुईं? यदि दोनों वातियों को अग्नि की ज्वाला अथवा विद्युत्स्फुलिंगों (electric sparks) से तपा कर मिला दिया जाए तो निरा पानी बनेगा। उसमें अम्ल का लेशमात्र भी नहीं होगा। इससे सिद्ध हुआ कि पानी उद्जन और जारक नाम की दो अदृश्य वातियों के संयोजन से बनता है जिसमें दो परिमाएँ उद्जन की और एक परिमा जारक की होती है।

संपरीक्षा ३६—वाति-परिमा-मान साधित्र में इन दोनों वातियों को मिला कर पानी बनाया जा सकता है। यह साधित्र लगभग ६० शि.मा. लम्बी और २ शि.मा. चौड़ी अंकित नाल का बना होता है। नाल का एक सिरा मुँदा होता है जिसमें से काच को पिघला कर दो महातु तन्तु नाल के अन्दर डाले होते हैं। नाल के भीतर तन्तुओं के सिरे एक दूसरेसे २ वा ३ सि.मा. के अन्तर पर होते हैं (देखो चित्र ५)।

नाल को ऊपर तक पारे से भर दो। फिर उसे बड़ी सावधानी से पारे से भरे हुए पात्र में उलटा कर दो। ध्यान रहे कि पारा नाल में से बाहर न गिरे और न ही बाहर से वायु नाल के अन्दर जाए। अब उद्जन-प्रदाननाल द्वारा एक चौथाई नाल को उद्जन से भर दो। फिर नाल को पारे के पात्र में नीचे दबा कर अन्दर और बाहर के पारे का तल समान करके अंक देख लो। फिर उसी भाँति नाल में उतनी ही मात्रा जारक की डाल दो और पूर्ववत् दबा कर अंक देख लो। इस अंक से पहला अंक घटा देने से जारक की परिमा ज्ञात हो जाएगी। महातु तन्तुओं के बाहर के सिरे प्ररोचन कुण्डल (induction coil) से जोड़ कर विद्युत्स्फुलिंग का एक तन्तु में से दूसरेमें संचारण करो। नाल के अन्दर झट से हलका सा उत्स्फोटन होगा और विद्युत् से उत्पन्न हुई ऊष्मा के कारण वातियों के फैलने से पहले तो पारा कुछ नीचे दबेगा किंतु फिर झट से उछल कर पहले से भी ऊँचा उठ जाएगा। नाल के अन्दर पानी बन जाएगा। यतः पानी बनने से वातियों की परिमा बहुत घट गई इसलिये पारा ऊपर उठ गया। पानी के बनाने में वातियों की जितनी परिमा व्यय हुई उसमें दो भाग उद्जन के और एक भाग जारक का था।

तत्त्व (elements)—पदार्थ दो प्रकार के होते हैं, एक संयुक्त (combined) और दूसरे असंयुक्त (uncombined or simple)। संयुक्त पदार्थ भिन्न भिन्न प्रकार की प्रकृति से मिल कर बने होते हैं और असंयुक्त केवल एक ही प्रकार की प्रकृति से बने होते हैं। असंयुक्त पदार्थों को 'तत्त्व' कहते हैं। तत्त्वों का असदृश पदार्थों में विभाजन नहीं किया जा सकता।

अभी तक बानवे तत्त्वों का पता लगा है (देखो सारणी, पृष्ठ ३०-३२)। इन्हींके मेलजोल से संसार के सभी पदार्थ बने हुए हैं। तत्त्वों की आकृति और गुणों में बड़ा अन्तर होता है। अनेकों यत्न करने पर भी अभी तक रसायनज्ञ एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में परिणत करने में सफल नहीं हुए। उद्जन आदि तत्त्व वातिरूप में होते हैं, पारा और दुराघ्री (bromine) तरल हैं, और शेष अधिकतर सान्द्र हैं, यथा गन्धक, लोहा। कई तत्त्व संसार में अधिकता से पाए जाते हैं और कई दुर्लभ हैं, यथा किरणातु।

तत्त्व-सारणी (table), प्रतीक (symbol) और परमाणु-भार (atomic weight)

संख्या	नाम	आंगल नाम और प्रतीक		प्रतीक	परमाणु-भार
१	अंजन	stibium	Sb	अं	१२१·७६
२	अयस्	iron	Fe	अ	५५·८४
३	आपीतला	neodymium	Nd	आ	१४४·२७
४	इद्भृशला	terbium	Tb	इ	१५६·२
५	उदजन	hydrogen	H	उ	१·००
६	एजातु	actinium	Ac	ए	?
७	काशातु	columbium } neobium }	Cb } Nb }	क	९३·३
८	किंविरला	europium	Eu	किं	१५२·०
९	किरणातु	uranium	U	कि	२३८·१४
१०	कुप्यातु	zinc	Zn	कु	६५·३८
११	केल्वातु	cobalt	Co	के	५८·९४
१२	कोष्टयाति	xenon	Xe	को	१३१·३
१३	क्षारातु	sodium	Na	क्ष	२२·९९७
१४	क्षुद्रातु	virginium	Vi	क्षु	?
१५	गावातु	hafnium	Hf	ग	१७८·६
१६	गुर्वातु	osmium	Os	गु	१९१·५
१७	गोमेदातु	zirconium	Zr	गो	९१·२२
१८	घनातु	iridium	Ir	घ	१९३·१
१९	चण्डातु	tungsten	W	च	१८४·०
२०	चुम्बला	dysprosium	Dy	चु	१६२·४६
२१	चूर्णातु	calcium	Ca	चू	४०·०८
२२	चेष्टातु	masurium	Ma	चे	?
२३	जंबुकी	iodine	I	जं	१२६·९२
२४	जारक	oxygen	O	ज	१६·००
२५	टांकणा	boron	B	ट	१०·८२
२६	तरस्विनी	fluorine	F	त	१९·००
२७	ताम्र	copper	Cu	ता	६३·५७
२८	तेजातु	radium	Ra	ते	२२५·९७
२९	तैजसाति	radon	Rn	तै	२२२·००

संख्या	नाम	आंगल नाम और प्रतीक		प्रतीक	परमाणु-भार
३०	तोयातु	polonium	Po	तो	?
३१	त्रपु	stannum	Sn	त्र	११८.७०
३२	दहातु	potassium	K	द	३९.१०
३३	दीपातु	rubidium	Rb	दी	८५.४४
३४	दुराग्नी	bromine	Br	दु	७९.९१६
३५	द्युतातु	cesium	Cs	द्यु	१३२.८१
३६	द्रवातु	gallium	Ga	द्र	६९.७२
३७	धूसरला	samarium	Sa	धू	१५०.४३
३८	नत्वरातु	ruthenium	Ru	न	१०१.७
३९	नाम्लातु	rhodium	Rh	ना	१०२.९१
४०	निचूषातु	palladium	Pd	नि	१०६.७
४१	निर्वर्णाला	leutecium	Lu	निर्	१७५.०
४२	नीरजी	chlorine	Cl	नी	३५.४५७
४३	नेपाली	arsenic	As	ने	७४.९१
४४	नैलातु	indium	In	नै	११४.७६
४५	पांडुला	holmium	Ho	पां	१६३.५
४६	पारद	hydrargyrum	Hg	प	२००.६१
४७	पिविरला	illinium florentium	Il	पि	१४६ ?
४८	पुष्कला	cerium	Ce	पु	१४०.१३
४९	प्रांगार	carbon	C	प्र	१२.००
५०	प्रैजातु	protoactinium	Pa	प्रै	?
५१	बाष्पातु	rhenium	Re	बा	१८६.३१
५२	भास्वर	phosphorus	P	भ	३१.०२
५३	भिदातु	bismuth	Bi	भि	२०९.००
५४	भूयाति	nitrogen	N	भू	१४.००८
५५	भृशला	yttrium	Y	भृ	८८.९२
५६	भ्राजातु	magnesium	Mg	भ्र	२४.३२
५७	मंदाति	argon	A	मं	३९.९४४
५८	महातु	platinum	Pt	म	१९५.२३
५९	मृज्यातु	cadmium	Cd	मृ	११२.४१
६०	मेचाग्नि	selenium	Se	मे	७८.९६
६१	यानाति	helium	He	य	४.००२

संख्या	नाम	आंगल नाम और प्रतीक		प्रतीक	परमाणु-भार
६२	'योनिला	gadolinium	Gd	यो	१५७·३
६३	रक्तला	erbium	Er	रक्	१६५·२०
६४	रजत	argentum	Ag	र	१०७·८८०
६५	रंजातु	titanium	Ti	रं	४७·९०
६६	रूपक	nickel	Ni	रू	५८·६९
६७	रोचातु	vanadium	V	रो	५०·९५
६८	लघ्वातु	lithium	Li	ल	६·९४०
६९	लावणी	alabamine	Ab	ला	?
७०	लीनाति	krypton	Kr	ली	८३·७
७१	लोहक	manganese	Mn	लो	५४·९३
७२	वंगक	tellurium	Te	वं	१२७·६१
७३	वर्णातु	chromium	Cr	व	५२·०१
७४	विडूर	beryllium	Be	वि	९·०२
७५	व्याहृरिला	thulium	Tm	व्य	१६९·४
७६	शिथिराति	neon	Ne	शि	२०·१८३
७७	शुल्वारि	sulphur	S	शु	३२·०६
७८	शोणातु	strontium	Sr	शो	८७·६३
७९	श्यामला	praseodymium	Pr	श्य	१४०·९२
८०	श्वेतला	ytterbium	Yb	श्व	१७३·०४
८१	संवर्णातु	molybdenum	Mo	सं	९६·०
८२	सहातु	tantalum	Ta	स	१८१·४
८३	सिकातु	germanium	Ge	सि	७२·६०
८४	सिक्त्यातु	thallium	Tl	सिक्	२०४·३९
८५	सीस	plumbum	Pb	सी	२०७·२२
८६	सुजारला	lanthanum	La	सु	१३८·९२
८७	सैकता	silicon	Si	सै	२८·०६
८८	स्तोकातु	scandium	Sc	स्त	४५·१०
८९	स्फट्यातु	aluminium	Al	स्फ	२६·९७
९०	स्वर्ण	aurum	Au	स्व	१९७·२
९१	ह्यातु	barium	Ba	ह	१३७·३६
९२	ह्रसातु	thorium	Th	ह्र	२३२·१२

जिन तत्त्वों में धात्विक चमक (metallic lustre) होती है और जो ऊष्मा और विद्युत् के सुसंवाहक (good conductors) हैं, उन्हें 'धातु' (metals) कहते हैं, यथा लोहा, चाँदी आदि। जो इन गुणों से हीन हैं उन्हें 'अ-धातु' (non-metals) कहते हैं, किन्तु धातु और अधातु तत्त्वों की विवेचना इतनी सरल नहीं। नेपाली और अंजन ऐसे तत्त्व हैं जिनके गुण धातु और अधातु दोनोंसे मिलते जुलते हैं। इनको 'धात्वाभ' (metalloids) कहते हैं।

जटिल पदार्थ (complex substances)—संयोग और मिश्र—

जिन पदार्थों में एकसे अधिक तत्त्व मिले होते हैं उन्हें 'जटिल पदार्थ' कहते हैं। वे दो प्रकार के होते हैं—'संयोग' और 'मिश्र'। जब दो अथवा अधिक तत्त्व बिना अपने विशिष्ट गुणों के खोए आपसमें मिल जाएँ तब वे 'मिश्र' कहलाते हैं। इस अवस्था में उनमें कोई रसायनिक परिवर्तन नहीं होता। किन्तु जब एकसे अधिक तत्त्व मिल कर सर्वथा भिन्न गुणों वाला नया पदार्थ बना दें तब उस पदार्थ को 'संयोग' कहते हैं। उनमें प्रकाश और ऊष्मा आदि के उद्भव द्वारा रसायनिक परिवर्तन हो जाता है और उनके गुणों में भी अन्तर आ जाता है। संपरीक्षा ३९ में जब वाति-परिमा-मान की नाल में उदजन और जारक का प्रवेश हुआ तब उनके गुणों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वातियों का मिश्र भी अदृश्य ही रहा। इन वातियों के समान उसमें भी रंग, स्वाद और गन्ध नहीं थे और उसकी घनता दोनों वातियों की घनताओं के बीच में थी। मिश्र में से वातियों को प्रसृति, प्रलयन आदि भौतिक विधाओं से पृथक् किया जा सकता था। किन्तु जब रसायनिक क्रिया से उन दोनोंका पानी बन गया तब उसके गुणों में सर्वथा परिवर्तन हो गया। पानी दृश्य है, तरल है और उसकी परिमा भी दोनों वातियों की इकट्ठी परिमा से थोड़ी है। दोनों वातियों से वह भारी है।

संपरीक्षा ४०—थोड़ा सा अयश्चूर्ण और कुछ गन्धक लेकर उन्हें ऊखल में सूक्ष्म पीस लो। उनका आधूसर (greyish) क्षोद बन जाएगा। गोह-वीक्ष (pocket lens) में से देखने से उसमें लोहे और गन्धक के लव अलग अलग दिखाई देंगे। उसमें चुम्बक डाल कर फिराने से अयश्चूर्ण के लव चुम्बक के साथ चिपट जाएँगे और पिसी हुई गन्धक शेष रह जाएगी। इस क्षोद को 'मिश्र' कहेंगे।

संपरीक्षा ४१—प्रहसित लोहे और गन्धक के क्षोद को मिला कर परीक्षा नाल में डालो और उसे पिनाल ज्वाला पर तपाओ। नाल में वह झट जल उठेगा और रसायनिक क्रिया द्वारा उसका नया संयोग अयस् शुल्बेय (iron sulphide) बन जाएगा। इसमें से चुम्बक द्वारा लोहे के लव अलग नहीं होंगे।

संपरीक्षा ४२—पाक्य, प्रांगार और गन्धक को मिला कर कूटने से अग्नि-चूर्ण (gun-powder) बनता है। यह भी मिश्र है। इसमें से तीनों पदार्थों को भौतिक विधाओं से अलग किया जा सकता है। पानी में घोल कर इसमें से पावन विधा द्वारा पाक्य को अलग कर लो। शेष मिश्र में प्रांगार द्विशुल्बेय (carbon disulphide) डाल कर हिलाओ। गन्धक घुल जाएगी। इसे भी अलग कर लो।

मिश्र में से स्फटन द्वारा विलेय पदार्थों को अलग करने की रीति—कई बार मिश्र में मिले हुए दो विलेय पदार्थों का एकसाथ स्फटन हो जाता है, और कई बार उनमें से एक ही का स्फटन होता है, दूसरेका

नहीं होता। इसका कारण यह है कि दूसरे पदार्थ की मात्रा उसमें इतनी अधिक नहीं होती कि विलायक को अनुविद्ध कर सके।

संपरीक्षा ४३—फटकड़ी का एक भाग और नीले थोथे के दो भाग ले कर इकट्ठे मिला कर पीस लो। उस क्षोद को उष्ण पानी में डाल डाल कर पानी को अनुविद्ध कर दो। कुछ दिनों तक रख छोड़ने से दोनों पदार्थों के अलग अलग सुन्दर स्फट बन जाएँगे। उन स्फटों में यदि एकदूसरे पदार्थ का अंश मिला रह गया हो तो पुनः स्फटन द्वारा अलग किया जा सकता है॥

नवाँ अध्याय

वायुमण्डल—दहन (combustion) और श्वसन (respiration)

वायु—वायु दिखाई नहीं देती, किन्तु जब चलती है तब स्पर्शेन्द्रिय से इसका ज्ञान हो जाता है। पंखा झलने से वायु का वाह हमारे शरीर के साथ टकराता है और गत्ते के टुकड़े को वेग से इधरउधर हिलाने से कोई पदार्थ इसकी गति को रोकता प्रतीत होता है। यही वायु है। पृथिवी चारों ओर से वायुमण्डल से घिरी हुई है।

वायु का निबन्ध—प्राचीन काल में वायु को पाँच तत्त्वों में से एक तत्त्व मानते थे। आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि वायु न तो तत्त्व है और न ही संयोग, किन्तु बहुत सी वातियों का मिश्र है जिनमें से जारक और भूयाति सबसे मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त वायु में कुछ प्रांगार द्विजारेय, जल-बाष्प और अत्यल्प मात्रा में तिक्ताति (ammonia), भूयाति के जारेय (oxides of nitrogen) और धूलि के लव भी होते हैं।

परीक्षा करने से ज्ञात हुआ है कि वायु में परिमा के अनुसार जारक और भूयाति २१ और ७९ के अनुपात (ratio) में होती हैं और भार की दृष्टि से २३ और ७७ के अनुपात में। भूयाति दो शब्दों भूयः (=अधिक) और वाति के संयोग से बना है और इस नाम का कारण यही है कि वायु में यह वाति अत्यधिक मात्रा में पाई जाती है। रसायनिक क्रिया द्वारा वायु की नियत परिमा में से जारक का अपहरण कर के इन दोनों वातियों की परिमा का अनुपात ज्ञात हो जाता है।

परिमा के अनुसार वायु का निबन्ध—

संपरीक्षा ४४—भास्वर की छोटी सी डली को पाव पत्र में सुखा कर द्रोणी में रखे हुए स्थाम (stand) पर रख दो। खुले मुख के घण्टा कलश (bell jar) के ऊपरी भाग को पाँच समान परिमाओं में विभक्त करके वहाँ चिह्न लगा दो। फिर इसको द्रोणी में ऐसे रख दो कि स्थाम कलश के भीतर आ जाए (चित्र २३)। अब उसमें सबसे निचले चिह्न तक पानी भर दो। फिर घृषि-त्वक्षा में पिरोई हुई काच शलाका का एक सिरा तपा कर कलश में डालो और त्वक्षा से कलश का मुख कस कर मूँद दो। फिर शलाका को त्वक्षा में नीचे खिसका कर तपा हुआ सिरा भास्वर के ऊपर ले जाओ। भास्वर में से धूम उठने लगेगा जो पानी में घुल जाएगा और कलश में पानी ऊपर चढ़ जाएगा। इस विलयन की प्रतिक्रिया
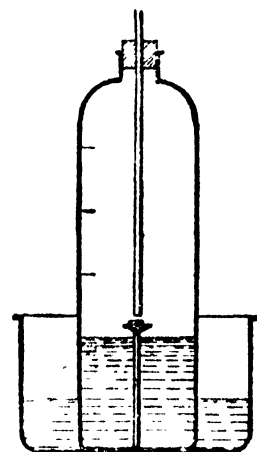
चित्र २३

(reaction) अम्लिक (acidic) होगी । जब कलश ठण्डा हो जाए तब द्रोणी में इतना पानी डालो कि कलश के अन्दर और बाहर पानी का तल एक हो जाए । इससे पता लगेगा कि वायु का $\frac{1}{5}$वाँ भाग व्यय हुआ है, इसलिये वह भाग अवश्यमेव जारक है । कलश में बची हुई वाति भूयाति है । उसमें जलती हुई वर्ती बुझ जाएगी । कुछ अन-जला भास्वर भी बच रहेगा ।

लोहे में मण्डूर लगने से वायु का कितना भाग उसमें मिल जाता है ?—

संपरीक्षा ४५—काच रम्भ में अयश्चूर्ण और थोड़ा सा पानी डाल कर हिलाओ जिससे अयश्चूर्ण रम्भ के पार्श्वों में लग जाए । तब उसे पानी के पात्र में उलटा कर के उष्ण स्थान पर रख दो । कुछ घण्टों पीछे अयश्चूर्ण में मण्डूर लगना आरंभ हो जाएगा और पानी रम्भ में चढ़ने लगेगा । समय समय पर पानी के चढ़ाव को देखते रहो । दो एक दिन में पानी ऊपर चढ़ने से रुक जाएगा । तब रम्भ के मुख को काच बिम्ब से भली भाँति मूँद कर पात्र में से निकाल लो और जलती हुई सिक्थवर्ती डाल कर रम्भ के अन्दर की वाति की परीक्षा करो । वर्ती बुझ जाएगी । रम्भ के अन्दर चढ़े पानी की परिमा और रम्भ की धारिता मापने से पता चलेगा कि वायु का पाँचवाँ भाग ($\frac{1}{5}$) घट गया है, अर्थात् मण्डूर बनने में लोहे के साथ मिल गया है । इससे ज्ञात हुआ कि मण्डूर लगने की क्रिया भास्वर के जलने की क्रिया के समान है । दोनों क्रियाओं से वायु में से जारक का अपहरण हुआ है ।

जब धातुओं में मण्डूर लगता है और भास्वर आदि के समान पदार्थ जलते हैं तब वायु में एक ही प्रकार के परिवर्तन होते हैं । वायु का पाँचवाँ भाग ($\frac{1}{5}$) धातु अथवा पदार्थ के साथ मिल जाता है और उससे बने हुए नए पदार्थ का भार बढ़ जाता है । उसमें और भी कई परिवर्तन हो जाते हैं । भ्राजातु के समान चमकती हुई धातु, जिसका सूक्ष्म तन्तु खिंच सकता है और पतली पट्टिका बन सकती है, जारक के मेल से चमकहीन, श्वेत मिट्टी सा पदार्थ बन जाती है । वह इतनी भिदुर हो जाती है कि चुटकी में लेकर मसलने से भुर कर उसका क्षोद बन जाता है ।

भार के अनुसार वायु का निबन्ध—वायु को तपते हुए ताम्बे पर से ले जाने से वायु में से जारक निकल कर ताम्बे के साथ मिल जाती है और ताम्बे का जारेय बन जाता है । भूयाति को अलग इकट्ठा किया जा सकता है । दोनों को तोल लेने से भार के अनुसार वायु का निबन्ध ज्ञात हो जाता है ।

संपरीक्षा ४६—जो पदार्थ वायु के अन्दर अल्प-मात्रा में होते हैं उनका अपहरण करने वाले प्रतिकर्त्ताओं (reagents) को ऊर्ध्व-बाहु नालों में भर लो । इन नालों में से बारी बारी वायु को ले जाओ । प्रांगार द्विजारेय (carbon dioxide) और भूयिक अम्ल का अपहरण दह-विक्षार से होता है, तिक्तातु (ammonium) और जल-बाष्पों का संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल से, और रही सही आर्द्रता का अन्य शोषण-कर्त्ताओं (drying agents) से । ताम्बे को तोल कर दहन नाल (combustion tube) में डालो । तब उसे तपा कर रक्त कर लो और उसपर से शुद्ध की हुई वायु को ले जाओ । जारक ताम्बे के साथ मिल जाएगी । एक गोल (globe) को वायु से शून्य करके तोल लो और उसमें भूयाति इकट्ठी कर लो । अब ताम्र जारेय और गोल को एक बार फिर तोल लो । दोनों का भार जितना बढ़ेगा उतना ही क्रम से जारक और भूयाति का भार होगा । इन दोनोंके भार का अनुपात २३ और ७७ होगा ।

इस प्रकार से प्राप्त की हुई भूयाति में मन्दाति (argon) आदि अन्य तत्त्वों की भी थोड़ी सी मात्रा मिली होती है।

वायु मिश्र है—नीचे दी हुई युक्तियों से सिद्ध होता है कि वायु मिश्र है, रसायनिक संयोग नहीं :—

(१) वायु के गुण जारक और भूयाति के गुणों के बीच में हैं। भूयाति में कोई पदार्थ जल ही नहीं सकता और जारक में तीव्रता से जलने लगता है। वायु में मध्यम गति से जलता है।

(२) यदि जारक और भूयाति को उसी अनुभाग (२१ : ७९) में मिला दिया जाए जिसमें वे वायु के अन्दर होती हैं, तो न ऊष्मा का उद्भव होगा और न ही परिमा का परिवर्तन, अर्थात् कोई रसायनिक क्रिया नहीं होगी। उस मिश्र में वायु के सभी गुण पाए जाएँगे।

(३) वायु के अन्दर से सभी पदार्थ प्रसृति, प्रलयन आदि भौतिक विधाओं से बड़ी सरलता से अलग हो जाते हैं :—

(क) यदि वायु को रन्ध्री नाल में से ले जाया जाए तो भूयाति प्रसृति द्वारा शीघ्रता से निकल जाती है क्योंकि वह जारक से हलकी होती है। यदि वायु संयोग होती तो दोनों वातियाँ इस भाँति अलग न हो सकतीं।

(ख) भूयाति की अपेक्षा जारक अधिक विलेय है। इसलिये यदि वायु को पानी में मिला कर हिलाया जाए तो उसमें जारक शीघ्रता से घुल जाएगी। अब यदि उस विलयन को तपा कर उसमें से वायु निकाल कर परीक्षा की जाए तो उसमें जारक अधिक होगी। यदि वायु संयोग होती तो पानी में विलीन हो कर इसके निबन्ध में भेद न पड़ता।

(ग) यदि तरल वायु को उद्बाष्पन द्वारा उड़ाया जाए तो भूयाति अधिक उत्पत होने के कारण पहले उड़ जाएगी। यदि वायु संयोग होती तो उसी रूप में सारी की सारी उड़ जाती।

वायु में जल-बाष्प—भूयाति और जारक को छोड़ कर वायु के संघटकों (constituents) में से जल-बाष्प और प्रांगार द्विजारेय मुख्य हैं।

यदि हिम की डली को चञ्चुकी में रखा जाए तो चञ्चुकी के बाहर सारे तल पर पानी के बिन्दु जम जाएँगे। वायु के जल-बाष्प चञ्चुकी के ठण्डे तल के संस्पर्श से संघनित हो कर जल-बिन्दुओं में परिणत हो गए हैं। ओस, कुहरा और धुन्ध भी वायु में जल-बाष्प होने के कारण ही बनते हैं।

वायु में प्रांगार द्विजारेय—छिछले शराव में चूने का पानी डाल कर वायु में खुला रख देने से उसके ऊपर श्वेत छाई सी आ जाएगी। वायु में से प्रांगार द्विजारेय का प्रचूषण (absorption) होकर अविलेय चूर्णातु प्रांगारीय (calcium carbonate) का पतला सा स्तर (layer) छाई के समान पानी पर छा गया है।

वायु में जल-बाष्प और प्रांगार द्विजारेय की मात्रा—

संपरीक्षा ४७—एक नाल में चूर्णातु नीरेय (calcium chloride) और दूसरी में चूर्णातु उदजारेय (calcium hydroxide) अथवा क्षारातु उदजारेय (sodium hydroxide) भर कर उन्हें तोल लो। फिर उनमें से वायु की मापी हुई परिमा को ले जाओ। पहली नाल में चूर्णातु नीरेय वायु में से जल-बाष्पों का प्रचूषण कर लेगा और दूसरीमें चूर्णातु उदजारेय अथवा क्षारातु

उद्‌जारेय प्रांगार द्विजारेय का अपहरण कर लेगा। अब इन दोनों नालों को फिर से तोलो। जितना भार बढ़ेगा उतनी ही मात्रा क्रम से जल-बाष्पों और प्रांगार द्विजारेय की होगी।

वायु के निबन्ध में परिवर्तन करने वाली विधाएँ—दो प्रकार की विधाएँ वायु के निबन्ध में परिवर्तन करती हैं। एक उसमें प्रांगार द्विजारेय की मात्रा बढ़ा देती है और दूसरी उसकी मात्रा घटा देती है।

वायु में प्रांगार द्विजारेय की मात्रा बढ़ाने वाली विधाएँ—ज्वालामुखी पर्वतों और भूमि की दरारों में से प्रांगार द्विजारेय की अत्यधिक मात्रा वायु के अन्दर मिलती रहती है। किन्तु इनके अतिरिक्त संसार में अनेकों ऐसी विधाएँ हैं जिनसे यह वाति उत्पन्न होकर वायु में मिलती रहती है:—

१. श्वास (respiration)—प्राणियों के साँस लेने से वायु के भीतर की जारक रुधिर के साथ मिलकर सारे शरीर में संचार करती है और शारीरिक ऊतियों (tissues) के प्रांगार से मिल कर रसायनिक प्रतिक्रिया द्वारा ऊष्मा को उत्पन्न करती और पेशी शक्ति (muscular power) को बनाती है। जारण से उत्पन्न हुए पदार्थ फेफड़ों में जाकर श्वास द्वारा प्रांगार द्विजारेय के रूप में निकल कर वायु में मिलते रहते हैं।

२. दहन (combustion)—साधारण इन्धन में प्रांगार बहुत अधिक मात्रा में होता है। जलाने से जारक में मिलकर उसका प्रांगार द्विजारेय बन जाता है।

३. प्रांगारिक पदार्थों (organic matter) का गलना सड़ना—जब वायु में पड़े हुए प्रांगारिक पदार्थ गलने सड़ने लगते हैं तब उनमें से प्रांगार वायु की जारक से मिलकर प्रांगार द्विजारेय को उत्पन्न कर देता है।

वायु में प्रांगार द्विजारेय की मात्रा घटाने वाली विधाएँ—

पौदों की क्रिया—जब पौदे सूर्य की धूप के अन्दर बढ़ते हैं तब वायु में से प्रांगार द्विजारेय को लेकर उसमें से प्रांगार को ग्रहण कर लेते हैं और जारक का कुछ भाग वायु में लौटा देते हैं।

संपरीक्षा ४८—हरे हरे पत्ते तोड़ कर उन्हें उसी समय प्रांगार द्विजारेय-युक्त पानी से भरी हुई चञ्चुकी में डाल दो। फिर उन्हें निवाप से ढक कर धूप में रख दो। निवाप की नाल का सिरा पानी से भरी हुई परीक्षा नाल के साथ घृषि-त्वचा द्वारा जोड़ दो (चित्र २४)। धूप की क्रिया से वाति निवाप में से निकल कर ऊपर चढ़ेगी और परीक्षा नाल में उसके बुलबुले दिखाई देंगे। परीक्षा करने से ज्ञात होगा कि यह वाति जारक है।
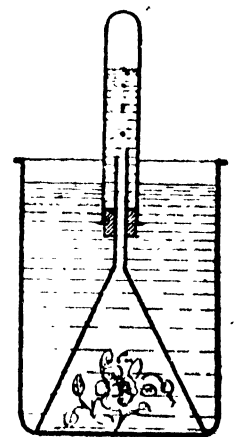
चित्र २४

वायु के एक प्रस्थ का भार जानने की रीति—एक काच गोल की परिमा माप लो और उसमें से सारी की सारी वायु निकाल कर उसे तोल लो। फिर उसमें वायु भर कर तोल लो। इस प्रकार वायु की उतनी परिमा का भार ठीक ठीक ज्ञात हो जाएगा। आर्द्र वायु का ठीक भार जाँचने की रीति निम्नलिखित है:—

संपरीक्षा ४९—२५० घ.शि.मा. धारिता के गोल तले वाले पलिघ के मुख के साथ एक ऐसी नाल जोड़ दो जो शिखिपीड (pinchcock) से मुँद सके। पलिघ में पानी डाल कर उसे आग पर रख कर उबालो। शिखिपीड खुला रहने दो। जब पानी कुछ समय तक उबलता रहे तब शिखिपीड

से नाल को मूँद कर पलिघ को झटपट आग से उतार लो। ठण्डा हो जाने पर उसे तोल लो। उसके पश्चात् शिखिपोड खोल दो। वायु अन्दर चली जाएगी। पलिघ को फिर तोलो। भार में जितनी वृद्धि होगी उसे वायु का भार समझना चाहिये। पलिघ में जितना पानी बचा है उसकी परिमा निकाल लो और जितने पानी से पलिघ भर जाता है उसकी परिमा भी निकाल लो। दोनों का जितना अन्तर होगा वह उस वायु की परिमा होगी जिसका भार ज्ञात किया है। परिमा और भार के अनुभाग से एक प्रस्थ का भार निकाल लो।

एक प्रस्थ वायु का भार लगभग १·२ धान्य होता है। इसी रीति से उन वातियों की घनता भी मापी जा सकती है जो पानी में विलेय नहीं॥

दसवाँ अध्याय

पानी का निबन्ध (पिछले से अनुबद्ध)

समसंयुज (equivalents)—रसायनिक संयोग के नियम

भाप का परिमामितीय (volumetric) निबन्ध—यदि उदजन और जारक के संयोग से बने हुए पानी को हम वातीय (gaseous) अवस्था में रखें तो यह दर्शाया जा सकता है कि उदजन की दो परिमाएँ और जारक की एक परिमा मिल कर भाप की केवल दो परिमाएँ बनाती हैं।

संपरीक्षा ५०— चित्र २५ में दिया हुआ साधित्र दृढ ऊर्ध्व-बाहु नाल का बना हुआ है जिसकी एक बाहु मुँदी हुई और अंकित है। मुँदे हुए सिरे के पास से दो महातु तन्तु काच को पिघला कर नाल के अन्दर डाले हुए हैं, जहाँ उनके सिरे एक दूसरेके अति समीप हैं, यह बाहु चारों ओर से काच के चौड़े निचोल (jacket) से वेष्टित है। खुली बाहु के निचले भाग में टोंटी लगी हुई है।

चित्र २५

मुँदी हुई बाहु को पारे से भर कर निरसन (displacement) द्वारा उसमें दो परिमा शुष्क उदजन और एक परिमा शुष्क जारक का मिश्र प्रविष्ट कर दो। पिनाल ज्वाला पर रखे हुए पलिघ में से उबलते हुए मण्डल सुषव (amyl alcohol) के बाष्प संपरीक्षा के अन्त तक काच नाल द्वारा निचोल में प्रविष्ट करते जाओ। कुछ समय पीछे जब मिश्रित वातियों का ताप स्थिर हो जाए तब दोनों बाहुओं में पारे का तल एकसा करके वातियों के मिश्र की परिमा का अंक देख लो। फिर निपीड को घटाने के लिये टोंटी खोल कर कुछ पारा निकाल लो और खुली बाहु का मुख धृषि-त्वचा से मूँद दो। महातु तन्तुओं के बाहर के सिरों को प्ररोचन कुण्डल से मिला कर विद्युत्स्फुलिंग उत्पन्न करो। निचोल में ताप प्रखर होने के कारण
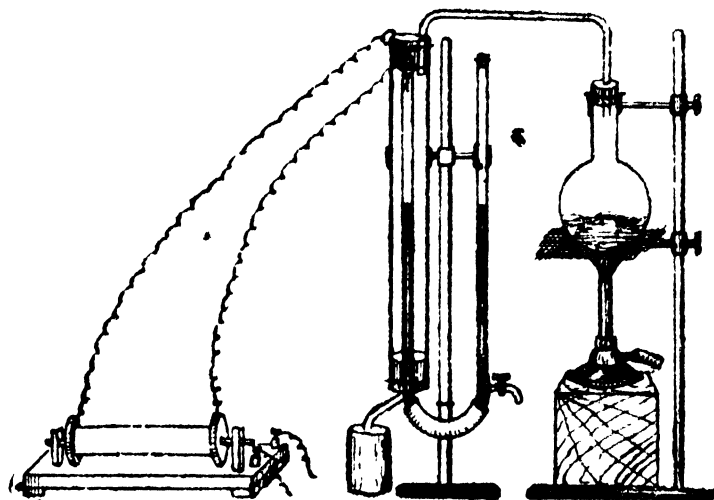
उद्जन और जारक का संयोग बाष्परूप में बनेगा। अब और पारा डाल कर दोनों बाहुओं में पारे का तल एकसा करके भाप की परिमा का अंक देखो। उद्जन और जारक के मिश्र की मूल परिमा का ठीक दो तिहाई ($\frac{2}{3}$) होगा। इससे सिद्ध हुआ कि एक ही ताप पर उद्जन की दो परिमाएँ और जारक की एक परिमा मिल कर भाप की दो परिमाएँ बनाती हैं।

पानी का भारिमितीय (gravimetric) निबन्ध—ऐतिहासिक दृष्टि से बर्ज़ेलियस् (Berzelius) और दुमा (Dumas) की संपरीक्षाओं का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि पहले पहल इन्होंने ही पानी की उद्जन और जारक के भारों का अनुपात ज्ञात किया था।

संपरीक्षा ५१— चित्र २६ में दिये साधित्र की काच नाल 'ख' में ताम्र जारेय और अन्य नालों 'ग, घ' में चूर्णातु नीरेय भरो। 'ख' और 'ग' को अन्तर्वस्तुओं (contents) सहित सावधानी से तोल लो और साधित्र को जैसे चित्र में दिखाया है वैसे जोड़ दो। तब नाल 'क' में से शुद्ध और शुष्क उद्जन का वाह धीरे धीरे ले जाओ और नाल 'ख' में रखे ताम्र जारेय को सावधानी से तपाओ। उद्जन ताम्र जारेय में से जारक के साथ मिल कर पानी बनाएगी और उस पानी को नाल 'ग' में रखा हुआ चूर्णातु नीरेय चूसता जाएगा। नाल 'घ' का चूर्णातु नीरेय बाहर की वायु की आर्द्रता को नाल 'ग' में जाने से रोकेगा। जब पानी पर्याप्त मात्रा में बन जाए तब शीत होने पर 'ख' और 'ग' नालों को फिर से तोलो। 'ख' के भार में जितनी न्यूनता होगी वह ठीक उस जारक के भार के तुल्य होगी जो ताम्र जारेय में से निकल कर पानी बनाने के काम आई, और नाल 'ग' के भार की वृद्धि पानी के भार के तुल्य होगी। पानी के भार में से जारक का भार घटाने से उद्जन का भार ज्ञात हो जाएगा।
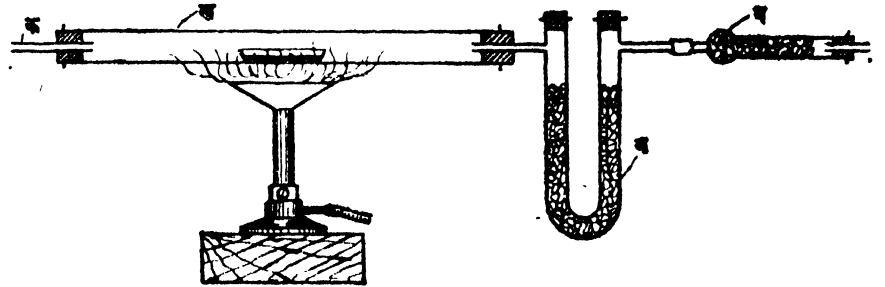
चित्र २६

दुमा की संपरीक्षा का फल

बने हुए पानी का भार	९४५·४३९ धा.
ताम्र जारेय से निकली जारक का भार	८४०·१६१ धा.
पानी में उद्जन का भार	१०५·२७८ धा.
इस संपरीक्षा से उद्जन और जारक का अनुपात	१०५·२७८ : ८४०·१६१
अथवा	१ : ७·९८ निकला।

ऊपर की संपरीक्षा में इस अनुपात से बना हुआ तरल पानी ही है क्योंकि इसके सभी गुण पानी के समान हैं। दहातु का छोटा सा टुकड़ा इसमें फेंकने से जलने लगेगा। अधिक परिष्कृत (elaborate) और सूक्ष्म (accurate) साधित्रों द्वारा रसायनज्ञों ने सिद्ध कर दिया है कि शुद्ध पानी का निबन्ध निश्चित और अपरिवर्त्य है और वह भार के अनुसार उद्जन और जारक के लगभग १ : ८ के अनुपात से बनता है।

समसंयुज अथवा संयोजक भार (equivalent or combining wheights)—उदजन और जारक के जो भार संयुक्त होकर जुड़े रह सकते हैं उन्हें 'समसंयुज अथवा संयोजक भार' कहते हैं, अर्थात् भार के अनुसार उदजन का १·०० भाग जारक के ८·०० भागों का समसंयुज है। इस अनुपात को स्थूलरूप से प्राय: १ और ८ लिखा जाता है।

पानी का निबन्ध ज्ञात करने की ऊपर लिखी रीति से ताम्र जारेय का निबन्ध भी सरलता से ज्ञात हो जाता है। ताम्र जारेय का भार तोल लो। फिर ऊपर लिखी संपरीक्षा के अनुसार जब उसका शुद्ध ताम्बा रह जाए तब उसे तोल लो। दोनों भारों का अन्तर जारक के भार के तुल्य होगा।

संपरीक्षा का फल

ताम्र जारेय का भार	२·३६ धा.
अवशिष्ट धातु का भार	१·८८ धा.
अपहृत जारक का भार	०·४८ धा.

इससे ज्ञात हुआ कि ताम्र जारेय बनाने के लिये भार के अनुसार जारक और ताम्बा लगभग ८० : ३१·५ के अनुपात से संयुक्त होते हैं, अर्थात् ताम्बे के लगभग ३१·५ भाग जारक के ८ भागों के समसंयुज हैं। अत: उदजन का १·०० भाग और ताम्बे के ३१·५ (सूक्ष्मरूप से ३१·८) भाग समसंयुज हैं।

उदजनस्यैक-भारेण संयुज्यमानस् तद्-भार-स्थान आदिष्टो वा तत्त्व-भार: समसंयुज-भार इत्य् उच्यते ॥

अर्थात् तत्त्व का जो भार उदजन के एक भार से संयुक्त हो सके अथवा उसका स्थान ले सके वह उस तत्त्व का 'समसंयुज भार' कहलाता है।

प्राय: किसी तत्त्व की एक ही मात्रा के साथ संयुक्त होने अथवा उसका स्थान लेने के लिये दूसरे तत्त्वों की भिन्न भिन्नमात्राओं की आवश्यकता होती है। परीक्षा कर के देखा गया है कि उदजन की एक धान्य मात्रा के साथ संयुक्त होने अथवा उसका स्थान लेने के लिये दूसरे तत्त्वों की मात्रा एक धान्य से अधिक होती है। इससे ज्ञात हुआ कि दूसरे तत्त्वों की अपेक्षा उदजन का समसंयुज अल्पतर है। इसलिये समसंयुजों की तुलना करने के लिये उदजन को प्रमाप माना है। उदजन का समसंयुज १ है। उदजन के १ धान्य के साथ जारक के ८ धान्य संयुक्त होते हैं, इसलिये जारक का समसंयुज ८ है। कई धातुओं की अम्लों पर क्रिया होने से उदजन उत्पन्न होने लगती है, यथा कुप्यातु, भ्राजातु और स्फटयातु की उदनीरिक अम्ल पर। उनका समसंयुज सीधा ही निकल आता है।

संपरीक्षा ५२—एक छोटी सी कूपी में तोला हुआ कुप्यातु का टुकड़ा डाल कर उसमें इतना पानी डालो कि टुकड़ा डूबा रहे। एक नाल में उदनीरिक अम्ल डाल कर उसे उस कूपी में तिरछी खड़ी कर दो जिससे उसका मुख पानी से बाहर रहे। कूपी का मुख काचनाल-युक्त घृषि-त्वक्षा से मूँद दो। दो प्रस्थ धारिता की बड़ी कूपी में ऊपर तक पानी भर कर उसके मुख में घृषि-त्वक्षा द्वारा दो मुड़ी हुई काचनालें लगा दो। छोटी नाल को घृषिनाल द्वारा छोटी कूपी के साथ मिला दो और बड़ी नाल के साथ घृषिनाल द्वारा मुड़ी हुई और लम्बी काचनाल जोड़ दो। घृषिनाल को मूँदने और खोलने के लिये स्वज

(clip) लगा दो (चित्र २७)। स्वज को खोलो और नाल में से पानी चूस कर स्वज को फिर मूँद दो। फिर नाल को प्रस्थ भर के रम्भ में डाल कर स्वज खोल दो। छोटी कूपी को टेढ़ा करके अम्ल को पानी में गिरा दो। उद्जन उत्पन्न होने लगेगी और वह बड़ी कूपी में जा कर अपने समान पानी की परिमा को रम्भ में धकेल देगी। जब उद्जन उत्पन्न होने से रुक जाए तो बड़ी कूपी को इतना ऊपर उठाओ कि उसमें और रम्भ में पानी का तल समान हो जाए। कूपी को उठाते हुए स्वज मुँदा रहना चाहिये। अब रम्भ वाले पानी की परिमा माप लो। भारमान से निपीड और तापमान से पानी का ताप देख लो।
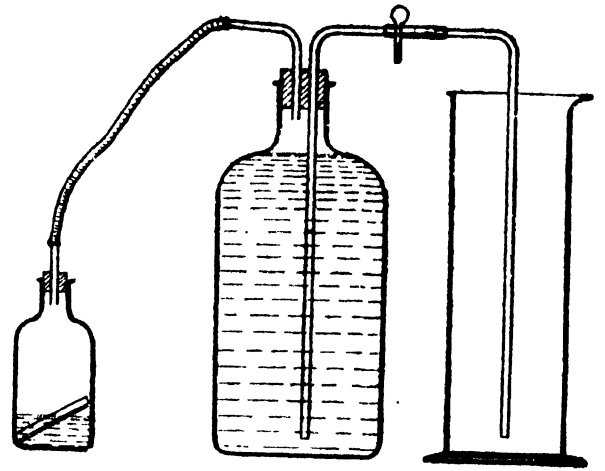
चित्र २७

संपरीक्षा का फल

कुप्यातु का भार = १·८५ धा.

रम्भ में पानी की परिमा = ६८२ घ.शि.मा.

पानी का ताप = १६° श.; निपीड = ७५० सि.मा.

१६° श. और ७५० सि.मा. निपीड पर उद्जन की परिमा = ६८२ घ.शि.मा.

ऋ.ता.नि. पर उद्जन की परिमा $= \frac{६८२ \times २७३ \times ७५०}{२८९ \times ७६०}$ = ६३५ घ.शि.मा. = ·६३५ प्रस्थ

ऋ.ता.नि. पर एक प्रस्थ उद्जन का भार = लगभग ·०९०० धा.

अतः ·६३५ प्रस्थ का भार = ·०९०० × ·६३५ = ·०५७१ धा.

यतः ·०५७१ धा. उद्जन बनाने के लिए १·८५ धा. कुप्यातु लगा

अतः १ धा. उद्जन के लिये $\frac{१·८५}{·०५७१}$ धा. कुप्यातु = ३२·४ धा. लगा।

अतः कुप्यातु का समसंयुज ३२·४ है (संपरीक्षाओं द्वारा सूक्ष्मरूप से ३२·७ निकलता है)। इसी प्रकार भ्राजातु का लगभग १२·१ और स्फत्यातु का लगभग ८·६ है। इससे ज्ञात हुआ कि एक ही भार की भिन्न भिन्न धातुएँ उद्जन के समान भार का स्थान नहीं ले सकतीं। कुप्यातु का समसंयुज भ्राजातु के समसंयुज से २$\frac{३}{४}$ गुणा है।

जारेयों के निबन्ध द्वारा समसंयुज भार ज्ञात करना—संपरीक्षा ५१ से ताम्र जारेय का ताम्बा बना कर ताम्बे का समसंयुज भार ज्ञात किया था। किन्तु इसके विपरीत कई तत्त्वों की नियत मात्रा का जारेय बना कर समसंयुज भार निकाला जा सकता है। इसमें यही देखना पड़ता है कि ८·० भाग जारक के साथ संयुक्त होने के लिये उस तत्त्व के कितने भार की आवश्यकता है। निम्नलिखित विधि से भ्राजातु का समसंयुज भार निकल सकता है :—

संपरीक्षा ५३—स्वच्छ चीन-मृत्सा मूषा को ढकने सहित सावधानी से तोल लो। उसमें अत्यन्त शुद्ध (जारेय-रहित) भ्राजातु डाल कर उसे फिर तोल लो। भ्राजातु का भार इन दोनों भारों के अन्तर के तुल्य होगा। अब मूषा को सावधानी से पिनाल ज्वाला पर तपाओ। समय समय पर ढकने को थोड़ा

सा उठाते रहो जिससे वायु अन्दर जा सके किंतु जारेय बाहर न निकले। जब भ्राजातु सारा जल जाए तो मूषा को उतार कर शोषित्र (desiccator) में रख दो । ठण्डी हो जाने पर तोल लो। तदनन्तर तपाने, ठण्डा करने और तोलने की विधाओं को तब तक बार बार करते जाओ जब तक भार स्थिर न हो जाए। भार की वृद्धि जारक के भार के तुल्य होगी।

संपरीक्षा का फल

मूषा, ढकने और भ्राजातु का भार	=	२०.५६ धा.
मूषा और ढकने का भार	=	२०.०२ धा.
भ्राजातु का भार	=	.५४ धा.
मूषा, ढकने और जारेय का भार	=	२०.९२ धा.
मूषा, ढकने और भ्राजातु का भार	=	२०.५६ धा.
ग्रहण की हुई जारक का भार	=	.३६ धा.
.३६ धा. जारक के साथ संयुक्त भ्राजातु का भार	=	.५४ धा.

८.० धा. जारक के साथ संयुक्त भ्राजातु का भार $= \frac{.५४ \times ८.०}{.३६} =$ १२ धा.

अत: भ्राजातु का समसंयुज भार १२ (सूक्ष्मरूप से १२.१) है।

एक धातु को दूसरी धातु द्वारा निरस्त कर के समसंयुज भार जानने की रीति—बड़ी सावधानी से ०.१ से ०.१५ धान्य भ्राजातु को तोल कर चीन-मृत्सा शराव में डाल दो। उसके ऊपर रजत भूयीय का तीव्र (strong) विलयन डाल दो। जितनी चाँदी बनती जाए उसे झटपट छोटी सी काच शलाका से उतार कर अलग करते जाओ। यदि क्रिया मन्थर पड़ जाए और भ्राजातु अभी बचा रहे तो समझ लो कि संभवत: रजत भूयीय में से सारी चाँदी निरस्त हो चुकी है। इसलिये उसमें रजत भूयीय और डाल दो। जब भ्राजातु सारा समाप्त हो जाए तो निस्सादित (precipitated) चाँदी को भली भाँति नीचे बैठ जाने दो और ऊपर से सारे के सारे तरल को निथार लो। अब चाँदी को पाँच छ: बार पानी डाल कर धो डालो और काच शलाका को भी धो कर उसपर से चाँदी उतार लो। अन्त में चाँदी को दो बार थोड़े थोड़े सुषव में धो कर सिकता तापन पर सुखा लो। फिर ठण्डी कर के उसे तोल लो। इस चाँदी का भार भ्राजातु के उतने भार के समसंयुज होगा जितना संपरीक्षा करते हुए प्रयोग में आया। गणना करने से ज्ञात होगा कि लगभग ०.११ धा. भ्राजातु ने १.० धा. चाँदी का निरसन किया है।

संपरीक्षा ५४—ऊपर की संपरीक्षा में भ्राजातु के स्थान पर ०.३ से ०.५ धा. कुप्यातु डाल कर फल देखो। ज्ञात होगा कि लगभग ०.३ धा. कुप्यातु १ धा. चाँदी का निरसन करता है।

दोनों संपरीक्षाओं का फल

०.११ धा. भ्राजातु ने १ धा. चाँदी का निरसन किया
०.३ धा. कुप्यातु ने १ धा. चाँदी का निरसन किया
अथवा १.० धा. भ्राजातु ने ९ धा. चाँदी का निरसन किया
२.७ धा. कुप्यातु ने ९ धा. चाँदी का निरसन किया।

अतः चाँदी को निरसन करने की क्षमता से ज्ञात हुआ कि कुप्यातु का समसंयुज भ्राजातु के समसंयुज से २$\frac{3}{4}$ गुणा है। यही पहले संपरीक्षा ५२ में दिखाया जा चुका है।

संपरीक्षा ५५—ठीक तोल कर कुप्यातु का १·५ धा. टुकड़ा चञ्चुकी में डालो। ऊपर से ताम्र शुल्बीय डाल दो। ताम्र के रोपण से कुप्यातु काला हो जाएगा। तरल को धीमी आँच पर तब तक तपाओ जब तक सारा कुप्यातु विलीन न हो जाए। सम भार के दो पाव पत्रों को अलग अलग भंजित (fold) कर के दोनों को एक ही निवाप में रख दो। कुप्यातु और ताम्र शुल्बीय के नीले विलयन को निथार कर पाव पत्रों पर डालते जाओ। फिर ताम्बे पर आसुत पानी डाल कर धोवो और उस पानी को भी पाव पत्रों पर डाल दो। अन्त में ताम्बे को भी पाव पत्रों पर डालकर पानी से तब तब तक धोते जाओ जब तक धोवन (washings) में ताम्बे का लेश मात्र न रहे। फिर ताम्बे को एक दो बार सुषव से धोकर उसे पाव पत्रों सहित बाष्प कन्दु (steam oven) में रख कर सुखा लो। अब उनमें से रिक्त पाव पत्र को तुला के एक पलड़े में और ताम्बे सहित दूसरे पाव पत्र को दूसरे पलड़े में रखकर ताम्बे का भार तोल लो।

संपरीक्षा का फल

१·२४ धा. कुप्यातु से १·२० धा. ताम्र निस्सादित हुआ अतः कुप्यातु के ३२·७ भाग ताम्बे के ३१·६ भागों के समसंयुज हैं। पहले ज्ञात हो चुका है कि कुप्यातु के ३२·७ भाग उदजन के एक भाग के समसंयुज हैं। अतः ताम्बे का समसंयुज भार ३१·६ है।

रसायनिक संयोजन (combination) के सिद्धान्त

१. स्थिर-निबन्ध सिद्धान्त—(law of constant composition) नाना संपरीक्षाओं से यह परिणाम निकलता है कि रसायनिक संयोगों के निबन्ध में परिवर्तन नहीं होता ; जैसे कि भार के अनुसार पानी का निबन्ध सदा ही उदजन और जारक के १·० और ८·० के अनुभाग में होगा। पारे के रक्त जारेय का निबन्ध सदा जारक और पारे के भारों के ७·४ और ९२·६ के अनुभाग में होगा।

अतः इससे निम्नलिखित सिद्धान्त स्थापित हुआ :—

संयोग-विशेषस् तेषां तेषाम् एव तत्त्वानां तेन तेनैवानुभागेन संयोजनाद् उपलभ्यते ॥

अर्थात् एक ही संयोग एक ही प्रकार के तत्त्वों के एक ही अनुभाग में मिलने से बनता है। यह सिद्धान्त प्रकृति की बनावट के किसी वाद-विशेष के आधार पर नहीं बनाया गया प्रत्युत साक्षात् संपरीक्षाओं का फल है।

२. बहुगुणानुभाग सिद्धान्त (law of multiple proportions)—जब किसी एक तत्त्व के नियत भार से दूसरे तत्त्व के भिन्न भिन्न भार मिल कर दो अथवा दो से अधिक संयोग बनाएँ तब दूसरे तत्त्व के भारों में सरल गुणन सम्बन्ध (simple numerical relation) होता है।

यथा भार के अनुसार जारक के ८·० भागों के साथ ताम्बे के ३१·८ भाग और ६३·६ भाग अलग अलग मिलने से ताम्बे के जारेय बनाते हैं। ३१·८ और ६३·६ में सरल गुणन सम्बन्ध है अर्थात् दूसरी संख्या (अथवा भार) पहले से दुगुनी है। अतः ताम्बे के ३१·८ और ६३·६ दो भिन्न भिन्न समसंयुज भार हैं। कई और तत्त्वों के भी एकसे अधिक समसंयुज भार होते हैं।

३. समसंयुजानुभाग अथवा मिथोऽनुभाग सिद्धान्त (law of equivalent or reciprocal

proportions)—जब किसी तत्त्व के नियत भार के साथ दो अथवा दोसे अधिक अन्य तत्त्व अलग अलग मिल कर संयोग बनाते हों तो उन दूसरे तत्त्वों का भार उस भार के तुल्य होगा जिस भार में वे आपसमें संयुक्त हो सकते हों अथवा उस भार का सरल गुणन होगा।

उदजन और शुल्बारि जारक के साथ मिल कर भिन्न भिन्न संयोग बनाते हैं। पानी बनाने के लिये उदजन और जारक का अनुभाग १ और ८ है। और आगे जा कर हमें ज्ञात होगा कि शुल्बारि द्विजारेय (sulphur dioxide) बनाने के लिये शुल्बारि और जारक का अनुभाग ८:८ है। अत: ऊपर लिखे सिद्धान्त के अनुसार आपसमें संयुक्त होने के लिये शुल्बारि और उदजन का भार ८ और १ होना चाहिये अथवा इनके सरल गुणन के तुल्य होना चाहिये। हमें ज्ञात होगा कि शुल्बेयित उदजन (sulphuretted hydrogen) नाम का एक संयोग है जिसमें शुल्बारि और उदजन क्रम से १६ और १ के अनुभाग में संयुक्त होते हैं। १६ और १, ८ और १ का सरल गुणन है।

४. परिमा के अनुसार निबन्ध का सिद्धान्त (law of combination by volume) —जब ताप और निपीड की एकसी अवस्थाओं में वातियाँ रसायनिक संयोग में आएँ तो उनकी परिमाओं का आपसमें सरल गुणन सम्बन्ध होता है और यदि उनसे बना हुआ नया पदार्थ भी वाति अवस्था में हो तो उसकी परिमा का भी प्रतिक्रिया करने वाली वातियों की परिमाओं के साथ सरल गुणन सम्बन्ध होता है।

हम देख चुके हैं कि पानी बनाने में उदजन और जारक का परिमा के अनुसार २ और १ का सरल गुणन सम्बन्ध है। यदि इस पानी को वाति अवस्था में ही रहने दिया जाए तो इसकी परिमा २ होती है (देखो संपरीक्षा ५०)। इस परिमा का भी उदजन और जारक की परिमाओं से सरल गुणन सम्बन्ध है।

इस बात का ध्यान रहे कि प्रकृति की अनाश्यता के सिद्धान्त के अनुसार संयोग का भार उसको बनाने वाले तत्त्वों के भार के तुल्य होना चाहिये। रसायनिक प्रतिक्रियों में सुकड़ने अथवा फैलने से परिमा में अन्तर आ जाता है, भार में नहीं आता।

मिथोनुभाग और बहुगुणानुभाग के सिद्धान्त केवल रसायन की प्रारम्भिक अवस्था में ही एक प्रकार के दो अथवा दो से अधिक तत्त्वों के थोड़े से संयोगों के लिये महत्त्व रखते हैं। आगे चल कर विशेषरूप से प्रांगार के असंख्य संयोगों के लिये ये व्यर्थ हो जाते हैं॥

ग्यारहवाँ अध्याय

परमाणु-वाद (atomic theory) और व्यूहाण्विक भार (molecular weights)

प्रकृति के स्वरूप के विषय में जितने भी मत हैं उनमें से परमाणु-वाद ही सबसे अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। विक्रम संवत् से शताब्दियों पूर्व भारतवर्ष के दार्शनिकों ने सबसे पहले परमाणु-वाद का सिद्धान्त उपस्थित किया था (देखो परिशिष्ट)।

यूरोप में आंगल रसायनज्ञ डॉल्टन (Dalton) ने १८६०-६४ विक्रम संवत् में पहले पहल दार्शनिक परमाणु-वाद को वैज्ञानिक रूप दिया था। उसके अनुसार सारे तत्त्व अविभाज्य (indivisible) लवों से बने हुए हैं जिनको 'परमाणु' कहते हैं। प्रत्येक तत्त्व के अपने परमाणुओं के भार और गुण समान होते हैं और वे एक ही पदार्थ के बने होते हैं, किन्तु वे दूसरे तत्त्वों के परमाणुओं से भिन्न होते हैं। रसायनिक संयोग भिन्न भिन्न प्रकार के परमाणुओं के मेल से बनते हैं।

इताली के भौतिकीविद् (physicist) आवोगाद्रो (Avogadro) ने डॉल्टन के मत में थोड़ा सा परिवर्तन कर के अपना नया वाद उपस्थित किया। इस वाद के अनुसार परमाणु अलग अलग नहीं रहते किन्तु पुञ्जों में होते हैं। ऐसे पुञ्जों को 'व्यूहाणु' (molecule) कहते हैं जो कि नन्हें नन्हें परमाणुओं से बने होते हैं। जैसे एक घर से ईंट उखाड़ कर दूसरे घर में लगाई जा सकती है वैसे ही एक व्यूहाणु से परमाणु निकाल कर दूसरे व्यूहाणु में मिलाया जा सकता है। भिन्न भिन्न व्यूहाणुओं के परस्पर परमाणु-विनिमय का नाम ही 'रसायनिक प्रतिक्रिया' है।

प्रकृति के सूक्ष्मतम लव को जो रसायनिक प्रतिक्रिया में योग देता है 'परमाणु' कहते हैं। अथवा 'परमाणु' व्यूहाणु का वह सूक्ष्मतम लव है जो उसमें से निकाल कर दूसरे व्यूहाणु में मिलाया जा सके।

परमाणुओं की प्रवृत्ति मिलकर व्यूहाणुओं में रहने की है—तत्त्वों के परमाणु अकेले नहीं रह सकते। दो अथवा अधिक परमाणु मिलकर समूह बनाकर रहते हैं। उदजन का विशालन (magnification) करने से ज्ञात होगा कि इसके परमाणु जोड़ा बना कर रहते हैं।

संयोगों को व्यूहाणुओं से छोटे भागों में विभक्त नहीं किया जा सकता। ये व्यूहाणु भिन्न भिन्न प्रकार के परमाणुओं के मेल से बने होते हैं। यदि उनका विभाजन किया जाए तो वे संयोग के रूप में नहीं रहेंगे; नाना तत्त्वों के परमाणु अलग अलग हो जाएँगे। पानी के व्यूहाणुओं का विभाजन करने से पानी का रूप लुप्त हो जाएगा और उदजन और जारक के परमाणु अलग अलग हो जाएँगे।

अतः 'व्यूहाणु' पदार्थ के उस सूक्ष्मतम लव को कहते हैं जो स्वतन्त्ररूप में रह सके अथवा जिसमें उस पदार्थ के सभी गुण पाए जाएँ।

यदि पानी के बिन्दु का विशालन कर के उसको भूगोल के तुल्य दिखाया जा सके तो उसका एक व्यूहाणु साधारण गेंद के समान होगा। इससे व्यूहाणुओं की सूक्ष्मता का अनुमान किया जा सकता है।

रसायनिक परिवर्तन से पदार्थ के व्यूहाणुओं के निबन्ध में परिवर्तन हो जाता है—पानी का विबन्धन करने से उसका प्रत्येक व्यूहाणु उदजन और जारक के परमाणुओं में पृथक् हो जाता है। पानी के व्यूहाणु में जो शक्ति भिन्न भिन्न परमाणुओं को आपसमें जोड़ कर (संयुक्त) रखती है उसे 'रसायनिक बन्धुता' (chemical affinity) कहते हैं। उनके संयोग को तोड़ने के लिए उस शक्ति को परास्त करना पड़ता है। यद्यपि रसायनिक बन्धुता द्वारा पदार्थों में संयोग होता है किन्तु क्रिया उनके व्यक्तिगत व्यूहाणुओं में ही होती है। यह शक्ति बहुत थोड़ी दूर तक ही काम कर सकती है इसलिये भिन्न भिन्न व्यूहाणुओं का निकट होना अत्यावश्यक है। अतः प्रतिक्रिया करने वाले सभी पदार्थ अथवा उनमें से कुछ एक तरल और वाति हों तो रसायनिक प्रतिक्रिया अत्युत्तम रीति से होगी। प्रलयन और द्रवण विधा से पदार्थ तरल बनाए जा सकते हैं।

परमाणु-वाद तथा रसायनिक संयोजन के नियम—आगे चल कर हमें पता लग जाएगा कि उद्-जन का परमाणु-भार १·०० है और जारक का १६·०० है।

पानी का निबन्ध नियत और सुनिश्चित है। भार के अनुसार १८·०० भाग पानी में २·०० भाग उद्जन के और १६·०० भाग जारक के हैं। परमाणु-वाद के अनुसार पानी के व्यूहाणु में दो परमाणु उद्जन के और एक जारक का है। यदि हम तोल कर उद्जन और जारक को २ और १६·१३ के अनु-भाग में मिलाएँ तो पानी नहीं बनेगा क्योंकि उसमें जारक के परमाणु का कुछ प्रभाग रहेगा। परमाणु-वाद के अनुसार परमाणु अविभाज्य है। इसलिये सिद्ध हुआ कि संयोग के निबन्ध में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। एवं परमाणु-वाद द्वारा स्थिरानुभाग सिद्धान्त की बड़े सरलरूप से व्याख्या हो जाती है।

परमाणु-भार और व्यूहाणु-भार—आज तक बड़े से बड़ा विशालन करने वाले अरावीक्ष (microscope) से भी परमाणु अथवा व्यूहाणु नहीं देखा जा सका; न ही उसका भार तोला जा सका है। जिन अनुभागों में भिन्न भिन्न तत्त्व आपसमें संयुक्त होते हैं उन्हींसे उनके परमाणुओं का सापेक्षिक भार (relative weight) जाना जाता है। यथा, मान लो कि भ्राजातु का एक परमाणु जिसका भार 'क' है 'ख' भार के जारक के एक परमाणु से मिल कर भ्राजातु जारेय बनाता है। भ्राजातु की १ धान्य मात्रा में अनेकों ही परमाणु होंगे। मान लो कि वे गिनती में 'अ' हैं। तो वे जारेय बनाने के लिये जारक के 'अ' संख्यक परमाणुओं से मिलेंगे। संपरीक्षा से पता लगता है कि जारेय बनाने के लिये एक धान्य भ्राजातु के साथ केवल ·६६ धा. जारक मिलती है।

अ × क = १

अ × ख = ·६६

अतः क : ख :: १ : ·६६ अर्थात् ३ : २

इससे ज्ञात हुआ कि भ्राजातु का एक परमाणु जारक के एक परमाणु से डेढ़ गुणा भारी है।

तत्त्वों के परमाणु-भार की तुलना से ज्ञात होता है कि उद्जन का परमाणु सबसे हलका है। अतः उद्जन के परमाणु को परमाणु-भार का एकक माना गया है। जब हम कहते हैं कि पारे का पर-माणु-भार २०० है तो इसका अर्थ यह है कि पारे के एक परमाणु का भार उद्जन के २०० परमाणुओं के भार के तुल्य है अथवा वह उद्जन के परमाणु से २०० गुणा भारी है। इसी प्रकार जारक के एक परमाणु का भार उद्जन के १६ परमाणुओं के भार के तुल्य है।

व्यूहाणु का भार उसके संघटक परमाणुओं के भारों के जोड़ के तुल्य होता है। एवं उदनीरिक अम्ल का व्यूहाणु उद्जन के एक परमाणु और नीरजी के एक परमाणु से बनता है। उद्जन के पर-माणु का भार १ है और नीरजी के परमाणु का ३५.५ है। अतः उदनीरिक अम्ल के व्यूहाणु का भार उद्जन के ३६·५ परमाणुओं के भार के तुल्य हुआ। इसी भाँति पारद जारेय के व्यूहाणु का भार, जिस में एक परमाणु पारद का (२००) और एक जारक का (१६) होता है, उद्जन के २१६ परमाणुओं के भार के तुल्य है।

आवोगाद्रो का सिद्धान्त—ताप और निपीड के परिवर्तन से सभी वातियों की एक जैसी प्रतिक्रिया होती देख कर आवोगाद्रो ने निम्नलिखित उपकल्पना (hypothesis) उपस्थित की थी :—

सदृशयोस् ताप-निपीडयोः समान-परिमेषु वातिषु व्यूहाणु-संख्या ऽपि समा ॥

ताप और निपीड की समान अवस्थाओं में वातियों की एकसी परिमा में व्यूहाणुओं की संख्या भी एकसी होती है।

यह उपकल्पना यद्यपि संपरीक्षाओं द्वारा सिद्ध नहीं की जा सकती तथापि इसके परिणाम संपरीक्षा-फलों से इतनी संपूर्णता से मिलते हैं कि अब इसे सभी वैज्ञानिकों ने सिद्धान्तरूप से स्वीकार कर लिया है। इस सिद्धान्त में केवल 'व्यूहाणुओं' का उल्लेख है, परमाणुओं का नहीं। इस सिद्धान्त द्वारा वाति की घनता और व्यूहाणु-भार का सम्बन्ध बड़ी सरलता से स्थापित हो जाता है।

वातियों की घनता और व्यहाणु-भार—वातियों की घनता से अभिप्राय उनकी सापेक्ष घनता से है। उद्जन सबसे हलकी वाति है, इसलिये इसकी घनता को एकक माना गया है। अतः अन्य किसी वाति की घनता निकालने के लिये हमें देखना होगा कि ताप और निपीड की समान अवस्थाओं में उस वाति की नियत परिमा उद्जन की उतनी ही परिमा से कितने गुणा भारी है। यतः वातियों की एकसी परिमा में व्यूहाणुओं की संख्या एकसी होती है इसलिये उनकी घनताओं में भी वही अनुपात होगा जो उनके अपने व्यूहाणुओं के भार में है।

परमाणु-भार के समान व्यूहाणु-भार भी उद्जन के एक परमाणु-भार की गुणान संख्या में अभिव्यक्त किया जाता है। यतः उद्जन का व्यूहाणु दो परमाणुओं का बना होता है इसलिये उसका व्यूहाणु-भार २ हुआ और घनता १ ही रही।

हम जारक का उदाहरण लेते हैं। एक प्रस्थ जारक एक प्रस्थ उद्जन से १६·० गुणा भारी है इसलिये इसकी घनता १६ है। यतः दोनों वातियों के एक एक प्रस्थ में व्यूहाणुओं की संख्या एकसी है इसलिये जारक का एक व्यूहाणु उद्जन के एक व्यूहाणु से १६·० गुणा भारी है।

उद्जन का व्यूहाणु-भार २ है क्योंकि उसमें दो परमाणु होते हैं। अतः जारक के एक व्यूहाणु का भार ३२·० होगा अथवा उद्जन की तुलना में इसकी अपनी घनता का दुगुना। इससे यह नियम बना कि वाति अवस्था में पदार्थ का व्यूहाणु-भार उसकी घनता से दुगुना होता है।

पदार्थस्य व्यूहाणु-भारस् तद्-बाष्प-घनता-द्विगुणः ॥

व्यूहाणु की परिमा—यतः वातियों की एकसी परिमा में व्यूहाणुओं की संख्या एकसी होती है अतः प्रत्येक वाति के व्यूहाणु की परिमा भी एकसी ही होगी।

यदि उद्जन के परमाणु की परिमा को एकक माना जाए तो उसके व्यूहाणु की परिमा २ हुई, क्योंकि उद्जन का व्यूहाणु २ परमाणुओं का बना होता है। अतः प्रत्येक वाति के व्यूहाणु की परिमा भी २ ही हुई क्योंकि हम ऊपर देख चुके हैं कि सभी वातियों के व्यूहाणुओं की परिमा समान होती है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि सभी परिमाएँ उद्जन के सापेक्ष (relative) हैं। जब हम कहते हैं कि किसी व्यूहाणु की परिमा २ है तो इसका अर्थ यह है कि जो कुछ भी उद्जन के एक परमाणु की परिमा हो उससे उस व्यूहाणु की परिमा दुगुनी है।

वातियों के धान्यों में भार और प्रस्थों में परिमा का परस्पर सम्बन्ध—ऋजु ताप और निपीड

पर तोल कर देखा गया है कि १ प्रस्थ उदजन का भार ·०८९६ धा. अथवा लगभग ·०६ धा. होता है। इस भार को कभी कभी 'प्रयव' (crith) भी कहते हैं।

यतः जारक की घनता १६ है अर्थात् यह उदजन से १६ गुणा भारी है इसलिये जारक के एक प्रस्थ का भार श्र. ता. नि. पर १·४४ होगा। प्रांगार द्विजारेय की घनता २२·० है अतः श्र. ता. नि. पर उसके एक प्रस्थ का भार २२·० × ·०६ = १·६८ होगा।

अतः श्र. ता. नि. पर किसी भी वाति के एक प्रस्थ का भार उसकी घनता और एक प्रस्थ उदजन के भार का गुणनफल होगा।

अब, श्र.ता.नि. पर ·०६ धा. उदजन की परिमा = १ प्रस्थ

तो २ धा. उदजन की परिमा = २२·२ प्रस्थ

अतः २ × १६ (३२·०) धा. जारक की परिमा भी = २२·२ प्रस्थ

अतः २ × २२ (४४·०) धा. प्रांगार द्विजारेय की परिमा भी = २२·२ प्रस्थ

इससे ज्ञात हुआ कि २२·२ प्रस्थ में समाने वाली किसी भी वाति के भार की संख्या धान्यों में उतनी ही होती है जितना उसका व्यूहाणु-भार होता है। अर्थात् वाति का जो व्यूहाणु-भार होगा उतने धान्य वाति २२·२ प्रस्थ में समाएगी।

परमाणु-भार और परमाण्विकता (atomicity)—किसी तत्त्व का परमाणु-भार निकालने के लिये उस तत्त्व के उन संयोगों का विश्लेषण करना पड़ता है जिनके व्यूहाणु-भार निश्चित किये जा सकें। संयोग के व्यूहाणु में किसी तत्त्व के भार की जो भी अल्पतम मात्रा विद्यमान होगी वही उस तत्त्व का परमाणु-भार होगा। जारक का परमाणु-भार १६·० है क्योंकि जारक-संयोगों के व्यूहाणुओं में जारक का अल्पतम भार इतना ही मिलता है।

जारक का व्यूहाणु-भार उसकी घनता से ज्ञात हो जाता है। घनता संपरीक्षा द्वारा ज्ञात हो सकती है। ऐसे जारक का व्यूहाणु-भार ३२·० निकलता है। इसलिये जारक के व्यूहाणु में २ परमाणु होते हैं।

व्यूहाणौ परमाणु-संख्या तत्त्वस्य परमाण्विकता॥

तत्त्व के व्यूहाणु में परमाणुओं की संख्या उस तत्त्व की 'परमाण्विकता' कहलाती है। उदजन और जारक की परमाण्विकता २ है। अधिकांश धातुओं की परमाण्विकता वातिरूप में १ होती है।

संपरीक्षा-फलों की परमाणु-वाद द्वारा व्याख्या—परमाणु-वाद को तभी ग्राह्य कहा जा सकता है जब इसके द्वारा ज्ञात सत्यों की व्याख्या हो सके और इससे नए नए आविष्कारों में सहायता मिले। अब देखना चाहिये कि प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या परमाणु-वाद कैसे करता है।

सान्द्र, तरल और वाति—प्रकृति की इन तीनों अवस्थाओं के व्यूहाणुओं की दूरता में बड़ा भेद है। ये व्यूहाणु सदा तीव्र गति से हिलते रहते हैं। वाति अवस्था में व्यूहाणुओं के बीच अन्तर अधिक होता है इसलिये वे दूर तक निर्बाध घूम सकते हैं। तरल अवस्था में व्यूहाणु एक दूसरेके अधिक समीप होते हैं इसलिये उनकी गति संकुचित और अपेक्षाकृत सीमित हो जाती है। सान्द्र के व्यूहाणु एक दूसरेके इतना अधिक समीप होते हैं, कि वे केवल प्रस्पन्दन (vibrate) ही कर सकते हैं, स्वतन्त्रता से घूम नहीं सकते। वे संलाग (cohesion) शक्ति द्वारा एक दूसरेसे जुड़े रहते हैं। यदि तरल वाति

अवस्था धारण कर ले तो व्यूहाणुओं के व्यक्तिगत निबन्ध में कोई परिवर्तन नहीं होता, केवल उनकी स्थिति में भेद पड़ जाता है। वे एक दूसरेसे अधिक दूर दूर हो जाते हैं।

व्यूहाणु-वाद से नाना प्रकार की भौतिक विधाओं की बड़ी सरलता से व्याख्या हो जाती है। प्रलयन हो कर सान्द्र के व्यूहाणुओं का संलाग विलायक द्वारा नष्ट हो जाता है। व्यूहाणु अलग अलग हो कर सारे तरल में एक दूसरे से दूर दूर फैल जाते हैं।

तरल और वातियाँ पाव में से नाँघ जाती हैं, क्योंकि उनके व्यूहाणु दूर दूर होने के कारण स्वतन्त्रता से अलग अलग घूम सकते हैं और अतिसूक्ष्म होने के कारण सूक्ष्मतम रन्ध्रों में से नाँघ जाते हैं। अपने व्यूहाणुओं की तीव्र गति के कारण वातियाँ भी प्रसृति द्वारा सूक्ष्मतम रन्ध्रों में से नाँघ जाती हैं। वाति के व्यूहाणु जितना अधिक भारी होंगे उतनी ही अधिक उनकी गति मन्थर होगी

इससे सिद्ध हुआ कि भौतिक परिवर्तन केवल व्यूहाणुओं की अवस्था का ही परिवर्तन है। व्याहाणु एक दूसरेसे दूर हो जाते हैं अथवा निकट हो जाते हैं किन्तु उनके निबन्ध में कोई परिवर्तन नहीं होता ॥

बारहवाँ अध्याय

प्रतीक और सूत्र—समीकारों (equations) का प्रयोग

रसायनिक गणनाएँ (chemical calculations)

रसायनिक प्रतीक—रसायनिक प्रतिक्रियाओं को लिखने की सुविधा के लिये रसायनज्ञ तत्त्वों के प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। प्रतीक प्रायः तत्त्व के नाम का पहला अक्षर* होता है और वह केवल नाम का ही संक्षेप नहीं है किन्तु तत्त्व के एक परमाणु का द्योतक है, जिसका भार सुनिश्चित होता है। तत्त्वों के नाम, उनके प्रतीक और परमाणु-भार पृष्ठ ३०–३२ पर सारणी में दिये गए हैं।

रसायनिक सूत्र—तत्त्व के व्यूहाणु को सूचित करने के लिये प्रतीक के नीचे दाहिनी ओर छोटा सा अंक लगा दिया जाता है जो उस व्यूहाणु में विद्यमान परमाणुओं की संख्या बताता है। इस प्रकार उदजन के व्यूहाणु का सूत्र उ$_२$, और जारक के व्यूहाणु का ज$_२$ है।

संयोग को दिखलाने के लिये भिन्न भिन्न तत्त्वों के परमाणुओं के प्रतीकों को साथ साथ लिखा जाता है और परमाणुओं की संख्या को उन प्रतीकों के नीचे छोटे अंकों में दिया जाता है। यदि परमाणु की संख्या १ हो तो कोई अंक नहीं दिया जाता। यथा उ$_२$ ज पानी के व्यूहाणु का द्योतक है जिसमें २ परमाणु उदजन के और १ परमाणु जारक का है। शुल्बारिक अम्ल के व्यूहाणु का सूत्र उ$_२$शु ज$_४$ है। इससे ज्ञात होता है कि इस व्यूहाणु में उदजन के २, शुल्बारि का १ और जारक के ४ परमाणु हैं।

कई बार सूत्र लिखने में जटिल होते हैं; यथा ता (भू ज$_३$)$_२$, जिसका अर्थ यह है कि अभिवारों (brackets) के भीतर का परमाणु-समूह दो बार आता है और सूत्र का सरल रूप ता भू ज$_६$ है।

---

* कहीं कहीं पहले अक्षर का भी संक्षिप्तरूप लिया गया है, यथा प्राङ्गार के लिये 'प्राङ्' के स्थान में केवल 'प्र' और श्वेतला का केवल 'श्व'।

एकसे अधिक व्यूहाणुओं को दर्शाने के लिये उनकी संख्या का अंक सूत्र से पूर्व बड़े अंक में लिखा जाता है, जैसे $५\,\text{उ}_२\,\text{शु}\,\text{ज}_४$ का अभिप्राय शुल्बारिक अम्ल के ५ व्यूहाणुओं से है।

भिन्न भिन्न व्यूहाणुओं के मेल को दर्शाने के लिये कई बार सूत्र निम्नलिखित रूप में लिखे जाते हैं, यथा $\text{क्ष}_२\,\text{प्र}\,\text{ज}_३ . १०\,\text{उ}_२\,\text{ज}$। इस सूत्र से क्षारातु प्रांगारीय (sod.um carbonate) के एक व्यूहाणु और पानी के १० व्यूहाणुओं के मेल से बना हुआ व्यूहाणु अभिप्रेत है। परमाणुओं के विशेष विन्यास (arrangement) को दर्शाने वाले सूत्रों को 'विन्यास-सूत्र' (structural formula) कहते हैं, यथा $\text{ता}\,(\text{भू}\,\text{ज}_३)_२$ और $\text{क्ष}_२\,\text{प्र}\,\text{ज}_३ . १०\,\text{उ}_२\,\text{ज}$।

व्यूहाणु-सूत्र से संयोग के निबन्ध की प्रतिशतता (percentage) निकालने की रीति—सबसे पहले संयोग के व्यूहाणु का भार निकालना चाहिये। यह सभी परमाणुओं के भार का जोड़ करने से सरलता से निकल आएगा।

उदाहरण—$\text{क्ष}_२\,\text{प्र}\,\text{ज}_३ . १०\,\text{उ}_२\,\text{ज}$ सूत्र वाले संयोग के निबन्ध की प्रतिशतता निकालो।

इसमें क्षारातु के २, प्रांगार का १, जारक के १३ और उदजन के २० परमाणु हैं। अत: सारणी में से प्रत्येक तत्त्व के परमाणु-भार को ले कर जोड़ने से व्यूहाणु का भार $(२ \times २३) + १२ + (१३ \times १६) + २० = २८६$ हुआ।

भार के अनुसार संयोग के २८६ भागों में प्रत्येक तत्त्व का भार हमें ज्ञात है। अनुभाग विधि से १०० भागों में निकालना सरल है।

१०० भागों में क्षारातु का भार $= \frac{४६ \times १००}{२८६} = १६.१\,\%$

१०० भागों में प्रांगार का भार $= \frac{१२ \times १००}{२८६} = ४.२\,\%$

१०० भागों में जारक का भार $= \frac{२०८ \times १००}{२८६} = ७२.७\,\%$

इन सब भारों का योग $= १६.१ + ४.२ + ७२.७ = ९३.०$

अत: उदजन का भार $= १०० - ९३.० = ७.०\,\%$

संयोग के निबन्ध की प्रतिशतता से सरलतम सूत्र बनाने की रीति—

उदाहरण १—एक संयोग के निबन्ध की प्रतिशतता निम्नलिखित है। उसका सरलतम सूत्र बनाओ।

उदजन = २.०४ %

शुल्बारि = ३२.६४ %

जारक = ६५.३२ %

पहले ऊपर दिये भारों से प्रत्येक तत्त्व के परमाणुओं की संख्या निकालो। यह संख्या प्रत्येक तत्त्व की प्रतिशतता को उसके परमाणु-भार से विभाजन करने पर निकल आएगी।

उदजन के परमाणुओं की संख्या $= \frac{२.०४}{१} = २.०४$

शुल्बारि के परमाणुओं की संख्या $= \frac{३२.६४}{३२} = १.०२$

जारक के परमाणुओं की संख्या $= \frac{६५.३२}{१६} = ४.०८$

यत: व्यूहाणु में परमाणु का प्रभाग (fraction) तो हो ही नहीं सकता इसलिये इन अंकों को पूर्णांकों में लाना होगा। पूर्णांक प्राप्त करने के लिये सब से छोटे अंक से विभाजन कर दो।

उदजन के परमाणु $= \frac{२.०४}{१.२} = २$

शुल्बारि के परमाणु $= \frac{१.०२}{१.०२} = १$

जारक के परमाणु $= \frac{४.०८}{१.०२} = ४$

अत: सरलतम सूत्र = $उ_२ शु ज_४$ है।

उदाहरण २—एक संयोग के निबन्ध में लोहा ७०.० % और जारक ३०.० % है। उसका सरलतम सूत्र बनाओ।

परमाणु-भार से विभाजन करने पर—

अयस् के परमाणु $= \frac{७०.०}{५५.८} = १.२५$

जारक के परमाणु $= \frac{३०.०}{१६.०} = १.८७$

इनको छोटे अंक अर्थात् १.२५ से विभाजन करने पर—

अयस् के परमाणु $= \frac{१.२५}{१.२५} = १$

जारक के परमाणु $= \frac{१.८७}{१.२५} = १.५$

ऐसी अवस्था में प्राप्त अंकों को किसी संख्या से गुणन कर के पूर्णांक बनाने चाहियें। यहाँ २ से गुणन करने पर अयस् के २ और जारक के ३ परमाणु बनेंगे। अत: $अ_२ ज_३$ सरलतम सूत्र है।

[जब किसी अंक का पूर्णांक से अत्यल्प अन्तर हो तब निकटतम पूर्णांक ले लेना चाहिये यथा १.९९ के स्थान पर २ ले लेना चाहिये।]

इस रीति से प्राप्त सूत्रों को 'सरल अथवा मात्रिक-सूत्र' (simple or empirical formula) कहते हैं।

मात्रिक सूत्र से यथार्थ (true) व्यूहाणु-सूत्र बनाने की रीति—मान लो किसी संयोग का मात्रिक सूत्र $प्र उ_३$ है और उस संयोग की वाति-रूप में घनता १५ है। इसलिये उसका व्यूहाणु-भार २ × १५ = ३० होगा। किन्तु $प्र उ_३$ के अनुसार तो व्यूहाणु-भार केवल १५ बनता है। अत: मात्रिक

सूत्र को दुगुना कर देने से यथार्थ सूत्र बन जाएगा, अर्थात् $\text{प्र}_{२}\text{उ}_{६}$ ।

रसायनिक समीकार—रसायनिक प्रतिक्रिया के विवरण को संक्षेप से लिखने के लिये समीकारों का प्रयोग किया जाता है । कौन कौनसे पदार्थों में और उनके कितने कितने व्यूहाणुओं में रसायनिक प्रतिक्रिया हुई तथा उनके संयोग से कौनसे पदार्थ बने—ये सभी बातें समीकारों से ज्ञात हो जाती हैं । यथा भ्राजातु के वायु में जलने से जो प्रतिक्रिया होती है उसका समीकार निम्नलिखित है—

$$\text{२ भ्र} + \text{ज}_{२} = \text{२ भ्रज}$$
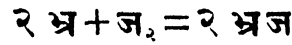
इस समीकार से ज्ञात हुआ कि भ्राजातु के २ व्यूहाणुओं और जारक के एक व्यूहाणु की परस्पर प्रतिक्रिया से भ्राजातु जारेय के २ व्यूहाणु बन जाते हैं । भ्राजातु के व्यूहाणु में एक ही परमाणु होता है ।

समीकार के दोनों ओर प्रत्येक प्रकार के परमाणुओं की संख्या सदा एकसी होनी चाहिये, अन्यथा परमाणुओं का नाश अथवा सर्जन हो जाएगा जो कि सिद्धान्त के विरुद्ध है । परमाणुओं के विन्यास में परिवर्तन हो जाता है किन्तु किसी परमाणु का नाश वा सर्जन नहीं होता । यथा, पानी पर दहातु की प्रतिक्रिया का समीकार निम्नलिखित है—

$$\text{२ उ}_{२}\text{ज} + \text{२ द} = \text{उ}_{२} + \text{२ दजउ}$$
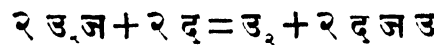
उदजन के ४ परमाणु जो प्रतिक्रिया होने के पूर्व पानी के दो व्यूहाणुओं में विद्यमान थे, वे प्रतिक्रिया होने के पीछे संख्या में नहीं घटे । उनमें से दो उदजन के व्यूहाणु में हैं और दो दहातु उदजारेय (potassium hydroxide) में विद्यमान हैं ।

समीकार लिखने से पहले हमें पता होना चाहिये कि कौनसा नया पदार्थ बना । परमाणुओं का मनमाना पुनर्विन्यास (rearrangement) नहीं किया जा सकता ।

रसायनिक क्रिया तीन प्रकार से हो सकती है—

१. व्यूहाणु सीधे मिल कर नया जटिलतर व्यूहाणु बना दें—

यथा, चूर्णातु जारेय (जीव चूर्णक) में पानी डाल देने से व्यूहाणुओं का सीधा मेल हो जाता है ।

$$\text{चू ज} + \text{उ}_{२}\text{ज} = \text{चू (ज उ)}_{२}$$
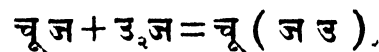
२. भिन्न भिन्न व्याहाणुओं में परस्पर परमाणु-विनिमय हो जावे—

तत्त्वों के मिलने से संयोग का संश्लेषण इसी विधि से होता है । यह परमाणु-विनिमय भ्राजातु जारेय के निम्नलिखित सूत्र से स्पष्ट हो जाता है—

$$\text{२ भ्र} + \text{ज}_{२} = \text{२ भ्र ज}$$
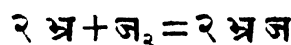
जब विश्लेषण होने से संयोग का तत्त्वों में विभाजन हो जाता है तब भी इसी प्रकार का परमाणु-विनिमय होता है, यथा पारदिक जारेय (mercuric oxide) को तपाने से—

$$\text{२ प ज} = \text{२ प} + \text{ज}_{२}$$
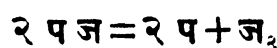
इस विधि में सरल आदेश (simple substitution) भी हो जाता है, जैसे कुप्यातु की मन्द शुल्बारिक अम्ल पर क्रिया होने से—

$$\text{कु} + \text{उ}_{२}\text{शु ज}_{४} = \text{कु शु ज}_{४} + \text{उ}_{२}$$
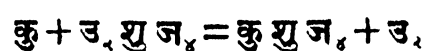
एक और प्रतिक्रिया है जिसको प्राय: 'द्विविबन्धन' (double decomposition) कहते हैं। इसमें भी भिन्न भिन्न व्यूहाणुओं में परमाणु-विनिमय होता है। शुल्बारिक अम्ल की ताम्र जारेय पर क्रिया होने से जो ताम्र शुल्बीय (copper sulphate) बनता है वह इसी परमाणु-विनिमय का उदाहरण है। इसका समीकार यह है—

$$\text{ताज} + \text{उ}_2\text{शुज}_4 = \text{ताशुज}_4 + \text{उ}_2\text{ज}$$
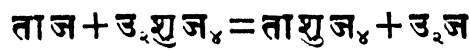
३. एक ही व्यूहाणु में परमाणुओं का पुनर्विन्यास हो जावे—

इस क्रिया का उदाहरण इस प्रारम्भिक पुस्तक में नहीं मिलेगा।

रसायनिक समीकार और गणनाएँ—रसायनिक समीकार में समानता के चिह्न (=) का अभिप्राय केवल इतना ही है कि दोनों ओर के पदार्थों का भार समान है। प्रकृति कभी नाश नहीं होती, इसलिये प्रतिक्रिया करने वाले पदार्थों का समग्र भार (total weight) नए बने पदार्थों के समग्र भार के तुल्य होना चाहिये।

जब कुप्यातु ताम्र शुल्बीय पर क्रिया करता है तब ताम्र और कुप्यातु शुल्बीय बन जाते हैं। समीकार निम्नलिखित है—

$$\text{कु} + \text{ताशुज}_4 = \text{कुशुज}_4 + \text{ता}$$
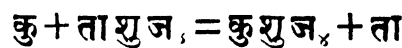
प्रत्येक परमाणु का भार निश्चित और अपरिवर्त्य है। हम ऊपर लिखे समीकार को इयत्तात्मक विधि (quantitative way) से निम्नलिखित रूप में लिख सकते हैं—

६५·४ भार के कुप्यातु के परमाणु ने १५९·६ भार वाले ताम्र शुल्बीय के व्यूहाणु के साथ मिल कर प्रतिक्रिया की। फलस्वरूप ताम्र का एक परमाणु बन गया जिसका भार ६३·६ है और साथ ही कुप्यातु शुल्बीय का एक व्यूहाणु भी बन गया जिसका भार १६१·४ है। अत:

$$\text{कु} + \text{ताशुज}_4 = \text{कुशुज}_4 + \text{ता}$$
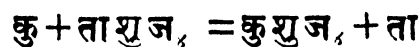
$$\text{अथवा } ६५·४ + १५९·६ = १६१·४ + ६३·६$$

जिससे ज्ञात हुआ कि दोनों ओर समग्र भार एकसा अर्थात् २२५ है।

ऐसे समीकारों द्वारा जो पदार्थ प्रतिक्रियाओं में भाग लेते हैं उनका भार भी गणना करके निकाल सकते हैं।

उदाहरण—बताओ २०·० धा. दहातु उदजारेय बनाने के लिये दहातु का कितना भार चाहिये।

पहले समीकार लिखो—

$$२\,\text{द} + २\,\text{उ}_2\text{ज} = \text{उ}_2 + २\,\text{दजउ}$$

$$२\,(\,३९·१\,) + २\,(\,२ + १६\,) = २ + २\,(\,३९·१ + १६ + १\,)$$

$$७८·२ + ३६·० = २·० + ११२·२$$

इस समीकार से ज्ञात हुआ कि दहातु के दो परमाणुओं ने, जिनका भार ७८·२ है, भार के अनुसार ११२·२ भाग दहातु उदजारेय के बनाए। अर्थात् ७८·२ धा. दहातु से ११२·२ धा. दहातु उदजारेय बन सकता है।

अत: २०·० धा. दहातु उदजारेय बनाने के लिये $\frac{७८·२ \times २०·०}{११२·२}$ = १३·९ धा. दहातु की आवश्यकता होगी।

वातियों के भार और परिमा की गणना—

उदाहरण १—श्र.ता.नि. पर १०·०० धा. जारक की क्या परिमा होगी ?

जारक का व्यूहाणु-सूत्र $ज_२$ है। यत: इसका परमाणु-भार १६·० है इसलिये इसका व्यूहाणु-भार ३२·० होगा।

अत: उद्जन की अपेक्षा इसकी घनता $= \frac{३२·०}{२·०} = १६·०$

यत: श्र.ता.नि. पर उद्जन के १·००० प्रस्थ का भार लगभग ·०६०० धा. है,

अत: श्र.ता.नि. पर जारक के १.००० प्रस्थ का भार $·०६०० \times १६·० = १·४४$ धा. होगा।

यत: १·४४ धा. की परिमा = १ प्रस्थ

अत: १०·०० धा. की परिमा $= \frac{१ \times १०·००}{१·४४} = ६·६४$ प्रस्थ

उदाहरण २—श्र.ता.नि. पर १०० प्रस्थ भूयाति का कितना भार होगा ?

भूयाति का व्यूहाणु-सूत्र $भू_२$ है और उसका परमाणु-भार १४·० है। अत: इसका व्यूहाणु-भार २८·० है।

इसलिये इसकी घनता $\frac{२८·०}{२·००} = १४·०$ है

इसलिये १ प्रस्थ भूयाति का भार $= १४·० \times ·०६$ धा.

१०० प्रस्थ भूयाति का भार $= १०० \times १४·० \times ·०६ = १२६$ धा.

परिमा की गणनाओं में समीकारों का प्रयोग—

उदाहरण १—१२० धा. चूर्णातु प्रांगारीय में से २१° श. ताप और ७२० सि.मा. निपीड पर प्रांगार द्विजारेय की कितनी परिमा प्राप्त होगी ?

(१) समीकार की सहायता से प्राप्त वाति का भार निकालो—

$चू\,प्र\,ज_3 + २\,उ\,नी = चू\,नी_२ + प्र\,ज_२ + उ_२ज$

१०० में से ४४

अत: १२० धा. में से $\frac{४४ \times १२०}{१००} = ५२·८$ धा.

(२) वाति के भार को श्र.ता.नि. पर परिमा में परिणत करो—

प्रांगार द्विजारेय का व्यूहाणु-सूत्र $प्र\,ज_२$ है। अत: इसका व्यूहाणु-भार ४४·० और इसकी सापेक्ष घनता $\frac{४४·०}{२·०} = २२·०$ है।

अत: १·००० प्रस्थ प्रांगार द्विजारेय का भार $२२·० \times ·०६००$ धा. $= १·९८$ धा. है।

इसलिये श्र.ता.नि. पर ५२·८ धा. की परिमा $= \frac{५२·८}{१·९८}$ प्रस्थ

(३) अत: २१° श. ताप और ७२० सि.मा. पर नई परिमा $= \frac{५२·८}{१·९८} \times \frac{२९४}{२७३} \times \frac{७६०}{७२०} = ३०·३$ प्रस्थ होगी।

उदाहरण २—बताओ कि ४२° श. ताप और ७०० सि. मा. निपीड पर १०० प्रस्थ प्रांगार द्विजारेय बनाने के लिये चूर्णातु प्रांगारीय के कितने भार की आवश्यकता होगी।

(१) ऋ.ता.नि. पर वाति की परिमा निकालो—

$$\text{नई परिमा} = १०० \times \frac{२७३}{३१५} \times \frac{७००}{७६०} = ७६\cdot८२ \text{ प्रस्थ}$$

(२) वाति की इस परिमा का भार निकालो—

प्रांगार द्विजारेय का व्यूहाणु-सूत्र प्रज_2 है। अतः इसका व्यूहाणु-भार ४४·० और सापेक्ष घनता $\frac{४४}{२} = २२\cdot०$ है।

इसलिये १·००० प्रस्थ प्रांगार द्विजारेय का भार = २२·० × ·०६०० = १.६८ धा.

७६·८२ प्रस्थ प्रांगार द्विजारेय का भार = ७६·८२ × १·६८ धा. = १५८·० धा.

(३) समीकार लिखकर तत्संवादी (corresponding) भार लिखो—

$$\text{चूप्रज}_3 + २\ \text{उनी} = \text{चूनी}_2 + \text{प्रज}_2 + \text{उ}_2\text{ज}$$

१०० में से ४४·०

यत: २४·० धा. प्रांगार द्विजारेय के लिये चूर्णातु प्रांगारीय = १०० धा.

अत: १५८·० धा. के लिये चूर्णातु प्रांगारीय $= \frac{१०० \times १५८\cdot०}{४४\cdot०} = ३५९$ धा.

छोटी गीति

उदाहरण ३—बताओ १०° श. और ७५० सि.मा. निपीड पर २०·० धा. दहातु नीरीय को तपाने से जारक की कितनी परिमा प्राप्त होगी ?

किसी वाति के व्यूहाणु-भार की संख्या के तुल्य उस वाति का धान्यों में भार १ प्रस्थ परिमा में समाता है—इस सिद्धान्त का प्रयोग करते हुए समीकार लिख कर परिमा निकाल लो।

$$२\ \text{दनीज}_3 = २\ \text{दनी} + ३\ \text{ज}_2$$

२ (३६·१ + ३५·५ + ४८) धा. में से जारक के ३ व्यूहाणु प्राप्त हुए।

अर्थात् ऋ.ता.नि. पर २४५·२ धा. दहातु नीरीय में से ३ × २२·२ प्रस्थ जारक के प्राप्त हुए।

अत: ऋ.ता.नि. पर २०·० धा. दहातु नीरीय में से $\frac{३ \times २२\cdot२ \times २०}{२४२\cdot२} = ५\cdot४३२$ प्रस्थ जारक बनी।

१०° श. ताप और ७५० सि.मा. निपीड पर गणना करने से जारक की परिमा ५·७१ निकल आती है।

नामकरण (nomenclature)—ताम्र, रजत आदि धातुओं के प्राचीन नामों को छोड़ कर नई धातुओं के नामों के अन्त में -आतु (धातु शब्द का संक्षिप्त रूप) प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे चूर्णातु, दहातु आदि।

संयोगों के नामों में यथासंभव उनके सभी संघटक तत्त्वों के नाम आ जाते हैं, यथा ताम्र जारेय में ताम्र और जारक दोनों के नाम विद्यमान हैं। जब संयोग का व्यूहाणु केवल दो तत्त्वों से बना होता है तब नाम के अन्त में -एय प्रत्यय लगता है, यथा क्षारातु और नीरजी के संयोग (क्ष नी) को 'क्षारातु नीरेय', और चूर्णातु और जारक के संयोग (चू ज) को 'चूर्णातु जारेय' कहते हैं।

यदि एक ही प्रकार के तत्त्वों से दो प्रकार के भिन्न भिन्न संयोग बनते हों तो उनके नामों के पूर्व संख्यावाचक उपसर्ग (numerical prefixes) एक-, द्वि-, त्रि- आदि लगाए जाते हैं, यथा सीस एकजारेय (सीज) और सीस द्विजारेय (सीज$_2$) ।

इसी प्रकार परमाणुओं की संख्या के अनुसार त्रि-, चतुः-, पञ्च- आदि का प्रयोग किया जाता है ।

कई बार उपसर्गों के स्थान पर, विशेष कर जब व्यूहाणु में परमाणुओं की संख्या नियत न हो, -य और -इक प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, यथा—

अयस्य जारेय, अ ज

अयसिक जारेय, अ$_2$ज$_3$

भूय्य जारेय, भू ज

भूयिक जारेय, भू ज

-इक प्रत्यय वाले संयोगों में -य प्रत्यय वाले संयोगों की अपेक्षा जारक अथवा अन्य अधातु तत्त्वों का अधिक अनुभाग होता है ।

एक ही प्रकार के तीन अथवा अधिक तत्त्वों से बने हुए संयोगों का एक दूसरेसे भेद करने के लिये भी -य और -इक प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, यथा भूयाति के अम्ल—

भूय्य अम्ल, उ भू ज$_2$

भूयिक अम्ल, उ भू ज$_2$

जिस अम्ल में -य प्रत्यय वाले संयोग से थोड़ी जारक हो उसके नाम के पूर्व उप- उपसर्ग लगाया जाता है, यथा उपभूय्य अम्ल; और जिस अम्ल में -इक प्रत्यय वाले संयोग से अधिक जारक हो उसके नाम के पूर्व अति- उपसर्ग लगाया जाता है, यथा क्षारातु अतिनीरीय ।

-य प्रत्यय वाले अम्लों से बने हुए लवणों के नामों के अन्त में -इत प्रत्यय और -इक प्रत्यय वाले अम्लों के लवणों के नामों के पीछे -ईय प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—

क्षारातु भूयित, क्ष भू ज$_2$

क्षारातु भूयीय, क्ष भू ज$_3$

साधारणतया -इत और -ईय प्रत्ययों वाले संयोगों में जारक विद्यमान होती है ।

तत्त्व की संयुजता (valency)—किसी भी रसायनिक संयोग में उदजन का एक परमाणु किसी दूसरे तत्त्व के एक से अधिक परमाणुओं के साथ संयुक्त नहीं होता । अतः इसे 'एकसंयुज' (univalent) कहते हैं, अर्थात् इसकी संयुजता एक है । हम देखते हैं कि नीरजी (chlorine) का एक परमाणु उदजन के एक परमाणु के साथ मिल कर उदनीरिक अम्ल का एक व्यूहाणु बनाता है, और उदनीरिक अम्ल में डालने से क्षारातु (sodium) का एक परमाणु उदजन के एक परमाणु का स्थान लेकर क्षारातु नीरेय (sodium chloride) बनाता है । अतः इन तत्त्वों का प्रत्येक परमाणु एकसंयुज है । उनकी संयुजता उदजन के एक परमाणु के तुल्य है ।

उदजन, क्षारातु और दहातु एकसंयुज हैं । जारक द्विसंयुज (bivalent) है क्योंकि पानी का

व्यूहाणु बनाने के लिये जारक का एक परमाणु उद्जन के दो परमाणुओं के साथ सीधा मिल जाता है। एवं उ-ज-उ। अत:

तत्त्वस्यैक-परमाणुना संयुज्यमानानाम् उद्जन-परमाणूनाम् संख्या तस्य तत्त्वस्य संयुजता ॥

किसी तत्त्व के एक परमाणु के साथ संयुक्त हो सकने वाली उद्जन के परमाणुओं की संख्या उस तत्त्व की 'संयुजता' कहलाती है।

कुछ तत्त्वों की संयुजता नीचे दी जाती है—

संयोग शु $उ_2$ में शुल्बारि द्विसंयुज है।

तिक्ताति, भू $उ_3$, में भूयाति त्रिसंयुज (tervalent) है, किन्तु तिक्तातु नीरेय, भू $उ_4$ नी, में पञ्चसंयुज (quinquevalent) है।
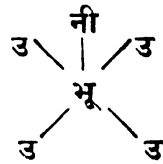
कच्छ-वाति (marsh gas), प्र $उ_4$, में प्रांगार चतुःसंयुज (quadrivalent) है। क्षारातु और दहातु एकसंयुज हैं। चूर्णातु, हर्यातु (barium), शोणातु (strontium), भ्राजातु, कुप्यातु आदि बहुत सी धातुएँ द्विसंयुज हैं। उनके नीरेय कुप्यातु नीरेय, कुनी$_2$, के सदृश होते हैं।

अयस्य संयोगों (ferrous compounds) में अयस् द्विसंयुज है, यथा अ $नी_2$; किन्तु अयसिक (ferric) संयोगों में त्रिसंयुज है, यथा अ $नी_3$। इससे ज्ञात हुआ कि एक तत्त्व की एकसे अधिक संयुजताएँ हो सकती हैं।

जिस संयोग के संघटक तत्त्वों की सभी संयुजताएँ रुकी हुई हों उसे 'अनुविद्ध संयोग' (saturated compound) कहते हैं, अर्थात् उसके साथ किसी तत्त्व का और परमाणु नहीं संयुक्त हो सकता, यथा तिक्तातु नीरेय।

किन्तु तिक्ताति (ammonia) का व्यूहाणु अननुविद्ध (unsaturated) है क्योंकि इसमें भूयाति के परमाणु की केवल तीन संयुजताएँ प्रयोग में आई हैं और उस परमाणु के साथ दो एकसंयुज परमाणु अभी और संयुक्त हो सकते हैं।

संयुत मूल (compound radicals)—तत्त्वों के कई वर्ग संयोगों की मालाओं (series) में विशेषरूप से आते हैं किन्तु वे वर्ग स्वतन्त्र अवस्था में नहीं रह सकते। ऐसे वर्गों को 'संयुत मूल' कहते हैं, यथा—शु $ज_4$ जो शुल्बारिक अम्ल में तथा 'शुल्बीय' (sulphates) नाम के संयोगों की माला में पाया जाता है। शुल्बारिक अम्ल का सूत्र $उ_2$ शु $ज_4$ और कुप्यातु शुल्बीय (zinc sulphate) का कु शु $ज_4$ है। इन दोनोंमें—शु $ज_4$ विद्यमान है, किन्तु स्वतन्त्र अवस्था में यह नहीं होता।

परमाणु के समान संयुत मूल भी एक व्यूहाणु से निकल कर दूसरे व्यूहाणु में मिल जाते हैं। एक प्रकार के संयोगों की माला का विशिष्ट संयुत मूल उद्जारल, -ज उ (hydroxyl, -OH),

है। भूयीयों (nitrates) की माला में संयुत मूल –भूज$_3$; प्रांगारीयों (carbonates) में –प्रज$_3$; शुल्बितों (sulphites) में –शुज$_3$ और नीरीयों (chlorates) में –नीज$_3$ है।

तिक्तातु, –भूउ$_4$, से एक प्रकार के लवणों की माला बनती है जिनमें इसकी क्रिया धातु के समान होती है।

संयुत मूलों की संयुजता निश्चित होती है। उदजारल, तिक्तातु और –भूज$_3$ और –नीज$_3$ एक-संयुज हैं, किन्तु –शुज$_3$, –शुज$_4$, –प्रज$_3$ द्विसंयुज हैं और इनमें से प्रत्येक उदजन के दो परमाणुओं के साथ संयुक्त हो जाता है।

तेरहवाँ अध्याय

उदजन

आंगल गवेषक केवेंडिश ने विक्रम संवत् १८२३ में पहले पहल इस तत्त्व को शुद्धरूप में पृथक् करके दिखलाया था कि यह अन्य ज्ञात अभिज्वाल्य (inflammable) वातियों से सर्वथा भिन्न है। पानी का संघटक होने के कारण इसका नाम उद्-जन (पानी को बनाने वाली) रखा गया है।

प्राप्ति-स्थान (occurence)—उदजन स्वतन्त्ररूप (free state) में ज्वालामुखी पर्वतों में से निकलने वाली वातियों में होती है और लवण के समान अन्य खनिज पदार्थों के रन्ध्रों में भी पाई जाती है। उल्कापिण्डों (meteorites) में रूपक (nickel) और केत्वातु (cobalt) के साथ उदजन भी होती है। सूर्य के बाह्य वायुमण्डल में भी अधिकांश उदजन ही होती है। बहुत से पदार्थों में उदजन दूसरे तत्त्वों के साथ मिली हुई होती है। भार के अनुसार पानी का नवम भाग उदजन है। अम्ल, क्षारक, मृत्तैल (petrolium), स्नेह (fat.), मण्ड, मांस, लकड़ी आदि अनेकों उद्भिद्-(vegetable) और प्राणि-पदार्थों (animal substances) में उदजन होती है।

पानी से उदजन की प्राप्ति—विद्युद्दंशन द्वारा पानी में से उदजन अलग की जाती है। इस प्रकार प्राप्त की हुई उदजन शुद्धतम होती है। पानी के विद्युद्दंशन का समीकार यह है—

$$२उ_२ज = २उ_२ + ज_२$$
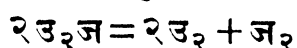
साधारण ताप में पानी पर कई धातुओं की क्रिया से उदजन अलग हो जाती है। क्षारातु की क्रिया से पानी में से कुछ भाग उदजन का निकल जाता है और कुछ क्षारातु और जारक से मिल कर क्षारातु उदजारेय (क्षारातु जलीय अथवा दह क्षार) नाम के श्वेत संयोग में परिणत हो जाता है। इस क्रिया का समीकार यह है—

$$२क्ष + २उ_२ज = २क्षजउ + उ_२$$
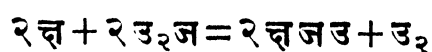
दहातु की क्रिया भी पानी पर क्षारातु के समान होती है। दहातु का छोटा सा टुकड़ा पानी में डालने से तैरता हुआ जलने लगता है। वास्तव में वह उदजन जलती है और दहातु के बाष्पों से ज्वाला का रंग नील-रक्त हो जाता है। इस क्रिया से उदजन और दहातु उदजारेय, दजउ, (दहातु जलीय अथवा दह सर्जि (caustic potash) बनते हैं—

$$२द + २उ_२ज = उ_२ + २दजउ$$
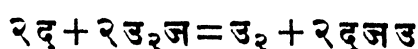
दह विक्षार और दह सर्जि के विलयन में रक्त शेवल नीला और हरिद्रा-पत्र भूरा हो जाता है।

चूर्णातु ठण्डे पानी का विबन्धन धीरे धीरे करता है। इससे उदजन और चूर्णातु उदजारेय उत्पन्न होते हैं—

$$\text{चू} + \text{२}\text{उ}_{\text{२}}\text{ज} = \text{चू}(\text{जउ})_{\text{२}} + \text{उ}_{\text{२}}$$

यदि क्षारातु उदजारेय को क्षारातु से मिलाकर तपाया जाए तो क्षारातु जारेय और उदजन उत्पन्न होते हैं—

$$\text{२चूजउ} + \text{२चू} = \text{२चू}_{\text{२}}\text{ज} + \text{उ}_{\text{२}}$$

भाप पर रक्तोष्ण (red-hot) धातुओं की क्रिया से उदजन की प्राप्ति—तपा कर रक्त की हुई कई धातुओं पर से भाप को ले जाने से पानी की सारी की सारी उदजन उन्मुक्त हो कर निकल जाती है और पीछे धातु और जारक का सान्द्र संयोग रह जाता है। यदि तपे लोहे पर से भाप को ले जाएँ तो लोहे का काला जारेय बनता है—

$$\text{३अ} + \text{४उ}_{\text{२}}\text{ज} = \text{४उ}_{\text{२}} + \text{अ}_{\text{३}}\text{ज}_{\text{४}}$$

इस काले जारेय को उदजन के प्रवाह में तपाने से ज्ञात हो जाएगा कि यह लोहे और जारक का संयोग है, क्योंकि ऐसा करने से लोहा और पानी बन जाएँगे।

भ्राजातु और भाप से भ्राजातु जारेय और उदजन बनते हैं—

$$\text{भ्र} + \text{उ}_{\text{२}}\text{ज} = \text{उ}_{\text{२}} + \text{भ्रज}$$

संपरीक्षा ५६—लम्बी कठिन काचनाल को स्वच्छ अयश्चूर्ण (iron filings) से भर कर दोनों ओर नाल के सिरों में अदह (asbestos) के ढीले डाट रख दो। त्वक्षाओं और नाल द्वारा दहन नाल के एक सिरे को पिनाल ज्वाला पर रखे हुए उबलते पानी के पलिघ के साथ जोड़ दो और दूसरे सिरे के साथ प्रदान-नाल लगा कर उसे मारुत द्रोणी में डाल दो। अयश्चूर्ण को वाति भ्राष्ट्र (gas furnace) से तपाओ और उनपर से भाप का प्रवाह क्षिप्रता से ले जाओ। द्रोणी के पानी में उलटे किये हुए रम्भ में उदजन इकट्ठी कर लो (देखो चित्र १६)।

मन्द अम्लों पर धातुओं की क्रिया से उदजन की प्राप्ति—अम्लों में उदजन होती है और उनपर धातुओं की क्रिया से अलग की जा सकती है। कुप्यातु, अयस , स्फटातु, भ्राजातु, त्रपु आदि को मन्द शुल्बारिक अथवा उदनीरिक अम्ल से साधित करने से उदजन उन्मुक्त हो जाती है। धातुओं में अशुद्धताएँ होने के कारण उदजन भी शुद्ध नहीं होती और उसमें अशुद्धताएँ मिली होती हैं। निम्न-लिखित समीकार कुप्यातु और लोहे की क्रियाओं के द्योतक हैं—

$$\text{कु} + \text{उ}_{\text{२}}\text{शुज}_{\text{४}} = \text{उ}_{\text{२}} + \text{कुशुज}_{\text{४}} \text{ (श्वेत कुप्यातु शुल्बीय)}$$

$$\text{अ} + \text{उ}_{\text{२}}\text{शुज}_{\text{४}} = \text{उ}_{\text{२}} + \text{अशुज}_{\text{४}} \text{ (हरा अयः शुल्बीय अथवा अयस्य शुल्बीय)}$$

$$\text{कु} + \text{२उनी} = \text{उ}_{\text{२}} + \text{कुनी}_{\text{२}} \text{ (कुप्यातु नीरेय)}$$

भ्राजातु की मन्द शुल्बारिक अम्ल पर क्रिया से शुद्ध उदजन प्राप्त होती है। समीकार यह है—

$$\text{भ्र} + \text{उ}_{\text{२}}\text{शुज}_{\text{४}} = \text{उ}_{\text{२}} + \text{भ्रशुज}_{\text{४}} \text{ (श्वेत भ्राजातु शुल्बीय)}$$

यह बात देखने योग्य है कि उपर्युक्त धातुओं का एक परमाणु उदजन के दो परमाणुओं का स्थान लेता है।

प्रयोगशाला के लिये कुप्यातु की मन्द शुल्बारिक अम्ल पर क्रिया से उदजन प्राप्त की जाती है।

संपरीक्षा ५७—कणात्मक (granulated) कुप्यातु के कुछ टुकड़े लेकर द्विमुखी कूपी में डाल दो। एक मुख में शृगाल-निवाप और दूसरे मुख में प्रदान-नाल लगा दो। कूपी में पानी इतना भर दो कि निवाप का निचला सिरा पानी में डूबा रहे। फिर निवाप में से कूपी में शुल्बारिक अम्ल डाल दो। वाति के बुलबुले उठने लगेंगे। कुछ समय तक क्रिया होने दो ताकि वाति कूपी में से सारी वायु को बाहर निकाल दे। यह अत्यावश्यक है। फिर प्रदान-नाल के सिरे को मारुत द्रोणी में डाल कर पानी पर से उदजन इकट्ठी कर लो।

कूपी के तरल को पावित कर के चीनमृत्सा शराव में डाल कर उद्वाष्पण द्वारा सुखा देने से ठण्डा होने पर कुप्यातु शुल्बीय के लम्बे लम्बे रंगहीन स्फट बन जाएँगे।

[यदि मन्द के स्थान पर संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल बरता जाए तो कुप्यातु पर कुप्यातु शुल्बीय का रोपण (coating) हो जाने से अम्ल की क्रिया नहीं होती। पानी में कुप्यातु शुल्बीय घुलता रहता है इसीलिये मन्द अम्ल प्रयोग में लाया जाता है। संकेन्द्रित अम्ल के प्रयोग से साथ साथ अन्य वातियाँ भी उत्पन्न होती रहती हैं।]

कुप्यातु की क्षारातु उदजारेय के तप्त विलयन पर क्रिया होने से भी उदजन अलग निकल आती है और पीछे कुप्यातु, जारक और क्षारातु का संयोग रह जाता है। समीकार यह है—

$$\text{कु} + \text{२क्ष जउ} = \text{उ}_{२} + \text{क्ष}_{२}\text{कुज}_{२} \text{ (क्षारातु कुप्यीय)}$$
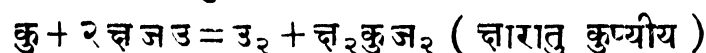
कुप्यातु के स्थान पर स्फत्रातु बरतने से शुद्ध उदजन प्राप्त हो सकती है।

उदजन के गुण—उदजन का कोई रंग नहीं होता इसलिये यह अदृश्य वाति है। शुद्ध उदजन में न गन्ध और न स्वाद होता है। वायु में जलने से इससे पानी बनने लगता है। साधारण दाह्य (combustible) पदार्थों को यह अपने अन्दर जलने नहीं देती।

०° श. ताप और ७६० सि.मा. निपीड पर उदजन के एक प्रस्थ का भार ०.०८९९ धा. होता है। यह वायु से १४.४ गुणा हलकी है। इसकी घनता को एकक माना गया है जिससे अन्य वातियों के भार की तुलना की जाती है। इसका परमाणु-भार १ और व्यूहाणु-भार २ है। व्यूहाणु-सूत्र $\text{उ}_{२}$ है। पानी में अत्यल्प मात्रा में घुलती है।

उदजन के शुद्ध जारक में जलने से अत्युष्ण ज्वाला उत्पन्न होती है जो बहुत सी धातुओं को पिघला देती है। इस ज्वाला को चूर्णक के रम्भों पर डालने से रम्भ तप कर श्वेत हो जाते हैं और उनसे चूर्ण-प्रकाश (limelight) उत्पन्न होता है जो अत्यन्त श्वेत होता है।

उदजन का संकट ताप –२४१° श. है और इससे थोड़े ताप में यह तरल अवस्था को प्राप्त हो जाती है। ७६० सि. मा. निपीड पर इसका बुद्बुदांक –२५२° श. है और उद्वाष्पण करने से इसका ताप –२५९° श. तक चला जाता है जहाँ पहुँच कर यह सान्द्र हो जाती है।

रसायनिक क्रिया—साधारण ताप पर उदजन क्रियाशील (active) नहीं है किन्तु उचित परिस्थितियों में यह अन्य कई तत्त्वों के साथ मिल कर संयोग बनाती है जिन्हें 'उदेय' (hydrides) कहते हैं। यदि उदजन को नीरजी से मिला कर मिश्र को तपाएँ अथवा धूप में रखें तो महान् उत्स्फोट होगा। इस प्रकार बने हुए उदेय का नाम उदजन नीरेय है। अनुकूल परिस्थितियों में उदजन भूयाति के

साथ मिल कर तिक्ताति बनाती है और शुल्बारि के साथ मिल कर उद्जन शुल्बेय नाम की वाति बनाती है जिसमें से बड़ी दुर्गन्ध आती है। जारक के साथ बन्धुता अधिक होने से यह कई संयोगों में से जारक का अपहरण कर लेती है। इसीलिये इसको प्रह्रासक (reducer) भी कहते हैं। तपे हुए ताम्र जारेय को प्रह्रसित कर के यह उसका ताम्बा बना देती है। साधारण ताप पर उद्जन और जारक को मिलाने से कोई क्रिया नहीं होती। किन्तु यदि उनके मिश्र को ८००° श. तक तपाया जाए अथवा उसके साथ ज्वाला का संपर्क किया जाए तो अति तीव्र उत्स्फोटन होगा और दोनों वातियों के मिलने से पानी बन जाएगा॥

चौदहवाँ अध्याय

जारक

कहते हैं पहले पहल आंगल रसायनज्ञ प्रीस्टली (Priestly) ने वि. सं. १८३१ में पारे और जारक के संयोग (रक्त पारद जारेय) को तपाकर इस वाति का आविष्कार (discovery) किया था। संभव है इससे पहले भी रसायनज्ञों को, विशेष कर स्विट्ज़रलैंड के रसायनज्ञ शेल (Scheele) को इसका ज्ञान हो, किन्तु उन्होंने लोगों का ध्यान अपने इस आविष्कार की ओर नहीं खैंचा।

प्राप्ति-स्थान—जारक सभी तत्त्वों से अधिक प्रचुरता में पाई जाती है। शुष्क वायु की १०० परिमाओं में लगभग २१ परिमाएँ जारक की होती हैं। संयुक्त अवस्था में यह कई पदार्थों में और उद्भिदों तथा प्राणियों की ऊतियों (tissues) में पाई जाती है। भार के अनुसार पानी में इसकी मात्रा ८८.८९% है और भूमि के त्वचारूपी (composing the earth's crust) पर्वतों में आधा भाग जारक का है। मनुष्य के शरीर में भार का लगभग दो तिहाई जारक होती है।

भारी धातुओं के जारेयों को तपाने से जारक की प्राप्ति—चाँदी और पारे आदि के जारेयों को तपाने से धातु और जारक अलग अलग हो जाते हैं। पारद जारेय के विबन्धन का समीकार निम्नलिखित है—

$$२ प ज = ज_२ + २ प$$

संपरीक्षा ५८—कठिन काचनाल में रक्त पारद जारेय को तपा कर प्रदान-नाल द्वारा मारुत द्रोणी में पानी पर से जारक इकट्ठी कर लो।

अजारेय संयोगों को तपाने से जारक की प्राप्ति—भूयीय और नीरीय आदि संयोगों को तपाने से भी जारक प्राप्त हो जाती है। दहातु भूयीय अथवा दहातु नीरीय दोनों को तपाने से जारक निकल आती है। दहातु नीरीय के विबन्धन के लिये अधिक ताप की आवश्यकता होती है। इसके पिघलने पर जारक का उद्भव (evolution) हो कर दहातु अतिनीरीय (द नी ज$_४$) बन जाता है। और अधिक तपाने से दहातु नीरेय और जारक बन जाते हैं। प्रतिक्रिया का समीकार यह है—

$$२ द नी ज_3 = २ द नी + ३ ज_२$$

प्रयोगशाला के लिये उद्जन की प्राप्ति—दहातु नीरीय में लोहक द्विजारेय मिला देने से उसका विबन्धन बहुत थोड़े ताप पर और अति शीघ्रता से हो जाता है और संपरीक्षा के अन्त में लोहक द्विजारेय वैसे का वैसा बच रहता है। प्रयोगशाला के लिये जारक प्राप्त करने के लिये यह रीति सरल है।

संपरीक्षा ५९—दहातु नीरीय में उससे एक चौथाई लोहक द्विजारेय मिलाकर मिश्र को एक

पलिघ में डाल कर पिनाल ज्वाला पर तपाओ और प्रदान-नाल द्वारा मारुत द्रोणी में से जारक इकट्ठी कर लो।

पिघलने से पहले ही धीमी आँच पर मिश्र में से जारक निकलने लगेगी। जब सारी जारक निकल जाए तब पलिघ में से काले पुञ्ज को निकाल कर पानी में डाल कर उबालो और विलयन को पावित कर लो। लोहक द्विजारेय वैसे का वैसा पाव पत्र पर रह जाएगा और पावित विलयन में से स्फटन विधा द्वारा दहातु नीरेय प्राप्त हो जाएगा।

अतिजारेयों तथा अन्य ऊँचे जारेयों (higher oxides) के तपाने से जारक की प्राप्ति—सीस द्विजारेय को तपाने से जारक और सीस जारेय निकल आते हैं। एवं—

$$२ सी ज_२ = २ सी ज + ज_२$$
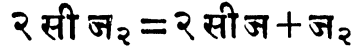
लोहक द्विजारेय का विबन्धन निम्नलिखित प्रकार से होता है—

$$३ लो ज_२ = लो_३ज_४ + ज_२$$
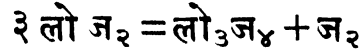
हजा-विधा (Brin's process) द्वारा वायुमण्डल में से जारक प्राप्त करने के लिये हर्यातु जारेय को अत्यधिक निपीड पर वायु में तपाया जाता है। तब उसका अतिजारेय बन जाता है। एवं—

$$२ ह ज + ज_२ = २ ह ज_२$$
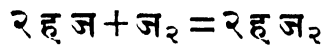
तब वायु को अन्दर जाने से रोक कर और निपीड को घटा कर हर्यातु एकजारेय बना लिया जाता है और जारक को पृथक् इकट्ठी कर लिया जाता है। समीकार यह है—

$$२ ह ज_२ = २ ह ज + ज_२$$
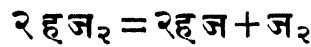
तत्पश्चात् इन्हीं विधाओं को बार बार किया जाता है।

शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से अतिजारेयों में से जारक की प्राप्ति—हर्यातु द्विजारेय और लोहक द्विजारेय जैसे संयोगों को शुल्बारिक अम्ल के साथ तपाने से जारक निकल आती है। इन जारेयों से बने हुए संयोगों से भी इसी प्रकार जारक की प्राप्ति हो सकती है। क्षारातु अतिजारेय का विबन्धन तो ठण्डे पानी की क्रिया से हो जाता है और जारक तथा दह विक्षार प्राप्त हो जाते हैं। एवं—

$$२ क्ष ज_२ + २ उ_२ज = ४ क्ष ज उ + ज_२$$
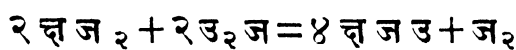
संपरीक्षा ६०—पलिघ में क्षारातु अतिजारेय डाल कर उसके मुख में घृषि-त्वक्षा द्वारा बिन्दुपाति निवाप (dropping funnel) और प्रदान-नाल लगा दो (चित्र २८)। निवाप को पानी से भर कर टोंटी खोल दो जिससे बूँद बूँद पानी जारेय पर टपकता रहे। पूर्ववत् प्रदान-नाल से जारक इकट्ठी कर लो।
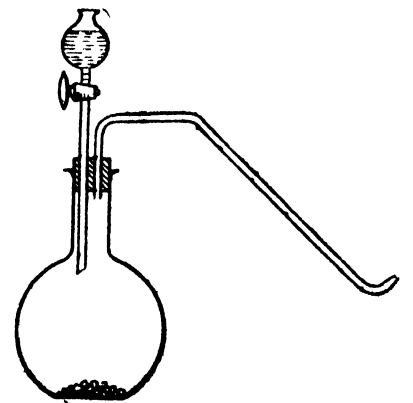
चित्र २८

उद्जन के भौतिक गुण—उद्जन भी रंग, गन्ध और स्वाद हीन वाति है। वायु से यह थोड़ी सी भारी है। उद्जन की अपेक्षा इसकी घनता १६·० है और वायु की घनता १४·४ है। अतः इसका व्यूहाणु-भार ३२·० और व्यूहाणु-सूत्र $ज_२$ है। पानी में यह बहुत थोड़ी घुलती है। यह बहुत थोड़े ताप में तरल बन जाती है। इसका संकट ताप −११६° श. है, किन्तु साधारण निपीड में तरल बनाने के लिये इसके ताप को घटा कर −१८२·५° श. पर ले जाना पड़ता है (जो कि इसका बुद्बुदांक है)। यह सान्द्र

भी बन जाती है किन्तु वह सान्द्र -२२७° श. पर पिघलने लगता है।

जारक के रसायनिक गुण—साधारण ताप पर जारक की क्रिया अति मन्थर होती है यहाँ तक कि कई पदार्थों पर इसका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता और यदि पड़ता है तो दिखाई नहीं देता। किन्तु अधिक ताप पर जारक बड़ी क्रियाशील होती है और यह अधिकांश तत्त्वों से सीधी मिल जाती है। नाना प्रकार के पदार्थों को पहले वायु में जला कर इसके अन्दर ले जाने से वे पहले से अधिक तीव्रता और चमक के साथ जलने लगेंगे। दहकती लकड़ी को इसमें ले जाने से उसमें से ज्वालाएँ उठने लगेंगी। वायु में जलती हुई गन्धक की ज्वाला बड़ी मन्द और प्रकाश बहुत क्षीण होता है। जारक में ले जाने से ज्वालाएँ बड़ी बड़ी और प्रकाश अति तीव्र हो जाएगा। भास्वर के समान जो पदार्थ वायु में शीघ्रता से जल उठते हैं उनको जारक के अन्दर जलाने से उनका प्रकाश आँखों को चुँधिया देता है। जारक स्वयं वायु में नहीं जलती किन्तु इसके अन्दर सभी पदार्थ शीघ्रता से जलते हैं अर्थात् यह दहन की बहुत अच्छी पोषक है।

प्रांगार और अन्य अधातु पदार्थों का जारक में दहन—प्रांगार अथवा प्रांगार के संयोगों को जारक में जलाने से प्रांगार द्विजारेय नाम की वाति उत्पन्न हो जाती है। यह वाति गीले शेवल पत्र को हलका रक्त कर देती है और चूर्णक-जल को दूधिया बना देती है। अधातु पदार्थ के जारक में जलने से जो जारेय बनता है उसके विलयन में शेवल-पत्र रक्त हो जाता है। प्रांगार, शुल्बारि और भास्वर आदि अधातु तत्त्वों के दहन के समीकार निम्नलिखित हैं—

$$प्र + ज_२ = प्र\ ज_२$$ (प्रांगार द्विजारेय)

$$शु_२ + २\ ज_२ = २\ शु\ ज_२$$ (शुल्बारि द्विजारेय)

$$भ_४ + ५\ ज_२ = भ_४\ ज_{१०}$$ (भास्वर पञ्चजारेय pentoxide)
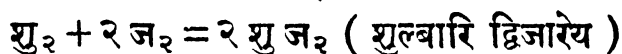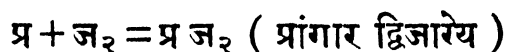
धातुओं का जारक में दहन—धातुओं के जारक में जलने से जो जारेय बनते हैं उनमें से कई पानी में घुल जाते हैं और कई नहीं घुलते। विलेय जारेयों के विलयन में रक्त शेवल नीला हो जाता है। क्षारातु के जारक में जलने से विलेय जारेय बनता है जिसको पानी में घोलने से दह क्षार बन जाता है। दहन का समीकार यह है—

$$२\ क्ष + ज_२ = क्ष_२\ ज_२$$ (क्षारातु अतिजारेय)
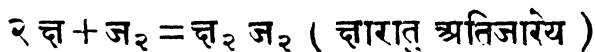
भ्राजातु जारक में जलकर विलेय भ्राजातु जारेय बनाता है। एवं—

$$२\ भ्र + ज_२ = २\ भ्र\ ज$$
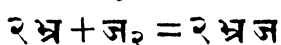
ऐसे विलेय जारेय जिनके विलयन में रक्त शेवल नीला हो जाता है 'क्षारक' (alkalis) कहलाते हैं।

लोहे को जारक में जलाने से लोहे का काला जारेय बनता है जो पानी में नहीं घुलता। शेवल पर उसकी कोई क्रिया नहीं होती। उसका समीकार यह है—

$$३\ अ + २\ ज_२ = अ_३\ ज_४$$
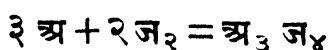
जारण (oxidation)—जारक के साथ मिलने की विधा को 'जारण' कहते हैं। जारक में उदजन जलने से जारित (oxidised) होकर पानी बन जाती है। यदि जारक सर्वथा शुष्क हो तो इसमें कई पदार्थों का दहन नहीं होता, यथा सर्वथा शुष्क भास्वर संपूर्णतया शुष्क जारक में नहीं जलेगा।

वायु में जारक बहुत अधिक होती है इसलिये वायु में जारण सरलता से हो जाता है। कई बार यह जारण मन्थर गति से होता है और ऊष्मा का उद्भव प्रतीत ही नहीं होता। लोहे और त्तारातु का जारण गीली वायु में बड़ी मन्थर गति से होता है। लोहे का रक्त जारेय और त्तारातु के दो जारेय—एक पैठिक (त्त$_2$ ज) और दूसरा अतिजारेय—बनते हैं। उद्भिद्- और प्राणि-पदार्थों के गलने सड़ने में भी मंथर जारण होता है। जारक के विना जीवन असंभव है।

अधिक मात्रा में जारक की प्राप्ति—निपीड और ताप घटा कर वायु को तरल बनालो। फिर बड़ी सावधानी से आसवन द्वारा भूयाति को उसमें से निकाल दो। भूयाति जारक की अपेक्षा थोड़े ताप पर उबलने लगती है इसलिये वह उद्वाष्पण द्वारा जारक में से निकल जाएगी और पीछे पर्याप्त शुद्ध जारक रह जाएगी॥

पंद्रहवाँ अध्याय

प्रजारक (ozone)—अपरावर्तना (allotropy)

प्रजारक—व्यूहाणुओं में तत्त्व के सभी गुण पाए जाते हैं और उनमें परमाणुओं की संख्या नियत होती है। अब देखना यह है कि क्या व्यूहाणुओं में परमाणुओं की संख्या घटाई बढ़ाई जा सकती है? और यदि ऐसा हो सकता है तो क्या उससे बने हुए नए पदार्थ के गुणों में भी परिवर्तन हो जाता है? संपरीक्षा से पता लगता है कि व्यूहाणु की परमाणु-संख्या में परिवर्तन हो सकता है, क्योंकि एक वाति ऐसी बनाई गई है जिसके व्यूहाणु में जारक के तीन परमाणु होते हैं। उसे 'प्रजारक' कहते हैं। साधारण जारक से इसके गुण बहुत भिन्न हैं। समुद्रतट के निकट वायु के अन्दर यह वाति बहुत अल्प मात्रा में पाई जाती है। विद्युद्-यन्त्रों के चलने और बिजली चमकने से वायु की जारक में से यह उत्पन्न हो जाती है। मण्ड की लेई (starch paste) और दहातु जम्बेय के मिश्र में डुबा कर बनाए हुए परीक्षा-पत्र (test paper) को प्रजारक नीला कर देती है।

प्रजारक की उत्पत्ति—(१) पानी का विद्युद्दंशन करने से जारक के साथ प्रजारक भी उत्पन्न हो जाती है। उद्द्वार से वातियों को मण्ड (starch) और दहातु जम्बेय के विलयन में ले जाने से यदि विलयन नीले रंग का हो जाए तो वह प्रजारक की उपस्थिति का द्योतक है।

(२) गीले भास्वर को वायु में खुला रखने से भी प्रजारक उत्पन्न हो जाती है। भास्वर का धीरे धीरे जारण होता है और जारक के कुछ अंश की प्रजारक बन जाती है।

(३) शुष्क जारक में मूक विद्युत् मोच (silent electric discharges) छोड़ने से बड़ी सुगमता से प्रजारक बन जाती है। इस प्रकार विद्युद् यन्त्रों के आस पास बहुत सी प्रजारक बन जाती है जो अपनी विशेष गन्ध से पहचानी जा सकती है। इस सरल से परिवर्तन का समीकार यह है—

$$३ ज_2 = २ ज_3$$
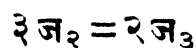
विद्युत् मोचों (discharges) में जारक चाहे कितना चिर क्यों न रहे पर वह सारी की सारी प्रजारक में परिणत नहीं होती, केवल उसका थोड़ा सा भाग ही प्रजारक बनता है और उन दोनोंके मिश्र को 'प्रजारकित जारक' (ozonised oxygen) कहते हैं।

संपरीक्षा ६१—प्रजारक बनाने वाला साधित्र एक नाल 'क' का बना होता है जिसके अन्दर त्रपुपर्ण (tinfoil) चढ़ा होता है और बाहर काच आवरण 'ख' होता है । आवरण के ऊपर त्रपुपर्ण चढ़ा होता है । नाल और आवरण के बीच के स्थान में नाल 'ग' में से जारक का प्रवाह प्रवेश करता है और 'ख' में से जारक और प्रजारक का मिश्र बाहर निकलता है (चित्र २६) । शुल्बारिक अम्ल द्वारा जारक पहले सुखा ली जाती है और इसीसे हम माप भी सकते हैं कि जारक किस मात्रा में नाल के अन्दर जा रही है । त्रपुपर्ण के दोनों रोपों (coats) को तन्तुओं द्वारा प्ररोचन कुण्डल से जोड़ दिया जाता है और विद्युत् का हलका वाह छोड़ा जाता है ।
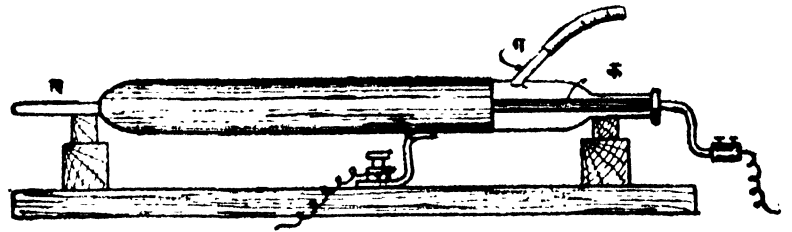
चित्र २६

प्रजारक के गुण और प्रयोग—प्रजारक वायु से भारी होती है और इसकी गन्ध विशेष प्रकार की होती है । कई बातों में यह जारक से मिलती जुलती है किन्तु यह उससे बहुत अधिक क्रियाशील है । यह बहुत भारी जारणकर्त्री है । इसका व्यूहाणु छिन्न होकर जारक का व्यूहाणु और परमाणु बन जाता है । वह परमाणु जायमान (nascent) अवस्था में होने के कारण अन्य पदार्थों के साथ बड़ी सरलता से मिल जाता है । जारण द्वारा प्रजारक घृषि को नाश कर देती है अत: प्रजारक के साधित्र में घृषि के युजों (connections) का प्रयोग नहीं करना चाहिये । इसकी क्रिया से कई रंजकों (dyes) के रंगहीन संयोग बन जाते हैं अत: सिक्थों और तैलों आदि का श्वेतन (bleaching) करने में इसका प्रयोग किया जाता है । रोगाणुनाशक (disinfectant) होने के कारण इसे पेय जल के शोधन के लिये भी बरता जाता है । तपा कर इसे साधारण जारक में परिणत किया जा सकता है । यह धातुओं के जारेय और शुल्बेयों के शुल्बीय बना देती है ।

दहातु जम्बेय (potassium iodide) में से जम्बुकी को अलग करके उसका दहातु जारेय बना देती है । यदि उसमें मण्ड भी मिला हो तो जम्बुकी और मण्ड का नीले रंग का संयोग बन जाता है । यदि दहातु जम्बेय को शेवल-पत्र पर डालें तो जो क्षारक बनता है उसकी क्रिया से शेवल-पत्र नीला हो जाता है । इस प्रतिक्रिया का समीकार यह है—

$$२\text{दजं} + \text{ज}_3 + \text{उ}_2\text{ज} = २\text{दजउ} + \text{ज}_2 + \text{जं}_2$$
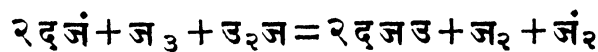
प्रजारक का निबन्ध—जारक से प्रजारक बनाई जाती है । इस रीति से संकोचन (contraction) हो कर प्रजारक की परिमा जारक से दो तिहाई रह जाती है । अत: प्रजारक के व्यूहाणु में जारक के तीन परमाणु होते हैं और उसका व्यूहाणु-सूत्र ज_3 है । प्रजारक में जारक की अपेक्षा ऊर्जा (energy) भी बहुत बढ़ जाती है और वह रसायनिक ऊर्जा के रूप में दूसरे पदार्थों पर क्रिया करती है । अत: जारक से प्रजारक का भेद दो बातों में है —(१) रसायनिक ऊर्जा (chemical energy) और (२) व्यूहाणु-संरचना (molecular structure) ।

अपरावर्तना (allotropy)—प्रजारक जारक का अपरावर्त (allotrope) अथवा अपरावर्तिक (allotropic) रूप है । अपरावर्तों में तत्त्व तो एक ही होता है किन्तु उनके व्यूहाणुओं और

स्फटों की संरचना में भेद होता है।

अपरावर्तना के अन्य उदाहरण प्रांगार, भास्वर और शुल्बारि हैं॥

सोलहवाँ अध्याय

पानी

पानी का निबन्ध, $उ_2 ज$—पहले पानी को पाँच तत्त्वों में से एक तत्त्व माना जाता था किंतु वि. सं. १८३८ में केवेंडिश (Cavendish) नाम के आंगल रसायनिक ने संपरीक्षा से सिद्ध कर दिया कि यह २ और १ के अनुपात में उदजन और जारक का संयोग है। परन्तु उदजन की दो परिमाएँ और जारक की एक परिमा मिलकर भाप की केवल दो परिमाएँ ही बनाती हैं। भार के अनुसार उदजन का एक भाग जारक के आठ भागों से मिलकर पानी बनाता है।

यत: उदजन की अपेक्षा जल-बाष्प की घनता ९·० है इसलिये इसका व्यूहाणु-भार १८·० है और व्यूहाणु-सूत्र $उ_2 ज$ है।

पानी के संश्लेषण का समीकार यह है—

$$२ उ_2 + ज_2 = २ उ_2 ज$$

और विश्लेषण का समीकार है—

$$२ उ_2 ज = २ उ_2 + ज_2$$
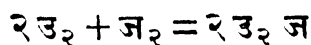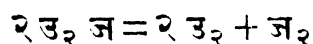
उदजन के संयोगों के वायु में जलने से पानी बन जाता है।

शुद्ध पानी के गुण—शुद्ध जल में न गन्ध होती है और न स्वाद। पानी के पतले स्तर का कोई रंग नहीं होता किन्तु बड़े पुञ्ज का रंग हरियावल लिये होता है।

चित्र ३०

७६० सि.मा. निपीड में १००° श. पर पानी उबलने लगता है। यदि निपीड बढ़ा दिया जाए तो बुद्बुदांक भी बढ़ जाता है और यदि घटा दिया जाए तो बुद्बुदांक भी घट जाता है।

संपरीक्षा ६२—गोल तले वाले पलिघ में पानी को उबालो। जब पानी उबल रहा हो तब पलिघ का मुख घृपि-त्वचा से मूँद दो। पलिघ को झटपट पानी के बरतन में उलटा कर दो (चित्र ३०)। पलिघ पर ठण्डा पानी डालते जाओ। पलिघ के अन्दर की भाप के संघनन से निपीड घट जाएगा और पानी शीघ्रता से उबलने लगेगा।
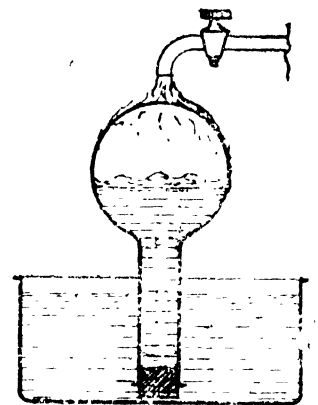
यदि पानी को ठण्डा करते जाएँ तो ४° श. तक तो यह सुकड़ता जाएगा। अत: ४° श. पर जल-पुञ्ज की परिमा अल्पिष्ठ (minimum) और घनता भूयिष्ठ (maximum) होती है। इसलिये अन्य ताप की अपेक्षा ४° श. पर पानी के १ घ. शि. मा. का भार अधिक होता है। ४° श. से थोड़े ताप पर इसकी परिमा बढ़ने लगती है। अत: जब ०° श. पर यह जम कर हिम बन जाता है तो फैल जाने से हलका हो जाता है। इसीलिये हिम पानी पर तैरती रहती है।

साधारणतया सान्द्र बनते हुए तरल सुकड़ते हैं किंतु पानी उनका अपवाद है।

विलायक होने के कारण रसायन में पानी का बड़ा महत्त्व है। इसके द्वारा अविलेय पदार्थों में से विलेय पदार्थ अलग किये जा सकते हैं और पदार्थों के स्फट बनाए जा सकते हैं।

रसायनिक परिवर्तन होने के लिये प्रतिक्रिया करने वाले पदार्थों के व्यूहाणुओं को एक दूसरे के निकटतर संस्पर्श (intimate contact) में आना चाहिये। उन सब पदार्थों का अथवा उनमें से कुछ पदार्थों का पानी में विलयन बनाने से उनके व्यूहाणु शीघ्रता से संस्पर्श में आ जाते हैं और रसायनिक क्रिया सरलता से हो जाती है।

पानी में प्राय: सभी प्रकार के पदार्थ—सान्द्र, तरल और वाति—घुल जाते हैं। सान्द्र प्राय: चण्ड तापों (high temperatures) पर अधिक घुलते हैं और वातियाँ मन्द तापों (low temperatures) पर। जारक और उद्जन के समान कई वातियाँ पानी में थोड़ी घुलती हैं और कई अत्यधिक, यथा तिक्ताति।

स्फटन-जल (water of crystallisation)—कई पदार्थों का स्फटात्मक रूप केवल इसी कारण होता है कि उनकी सान्द्र अवस्था में उनके अन्दर पानी होता है। यदि वह पानी निकाल दिया जाए तो टूट कर स्फटों का चोद बन जाएगा और बहुधा उसका रंग भी उड़ जाएगा। ताम्र शुल्बीय के नीले नीले स्फटों में पानी होता है। यदि उन्हें तपा कर पानी निकाल दिया जाए तो उनका श्वेत चोद बन जाएगा।

संपरीक्षा ६३—तुली हुई मूषा में चुर्ण (powdered) ताम्र शुल्बीय डाल कर उसे फिर तोल लो। फिर मूषा को पिनाल ज्वाला पर घण्टा भर तपाओ। ठण्डी होने पर मूषा को एक बार फिर तोलो। भार जितना घटेगा उतना पानी स्फटों में था। २·४० धा. ताम्र शुल्बीय में से ·८७ धा. पानी उड़ता है। ताम्र शुल्बीय का व्यूहाणु भार १५६ है, इससे ज्ञात हुआ कि १५६ भाग ताम्र शुल्बीय ९० भाग पानी से संयुक्त होता है। अत: स्फटात्मक ताम्र शुल्बीय का सूत्र है—

$$ता\ शु\ ज_{४}\cdot ५\ उ_{२}\ ज$$

जिन स्फटों में पानी (स्फटन-जल) होता है उनको 'जलीयित स्फट' (hydrated crystals) कहते हैं जिनमें नहीं होता उन्हें 'अजल (anhydrous) स्फट' कहते हैं। स्फटन-जल का अपहरण करने की विधा को 'विजलीयन' (dehydration) कहते हैं। कई संयोग वायु में खुले पड़े रहने से अपना स्फटन-जल छोड़ देते हैं, यथा साधारण धावन क्षिार इस प्रकार स्फटन-जल त्याग कर श्वेत और पारादर्श (opaque) बन जाता है। इस विधा को 'उत्फुल्लन' (efflorescence) कहते हैं।

वायु में खुला रखने से कई संयोग वायु में से पानी का प्रचूषण कर लेते हैं। जो संयोग पानी का प्रचूषण कर के विलयन में परिणत हो जाएँ उनको 'क्लेदक्षर' (deliquescent) कहते हैं किंतु जो तरल अवस्था में परिणत न हों उन्हें 'उन्दचूष' (hygroscopic) कहते हैं।

कई संयोगो में पानी उनके व्युहाणुओं का सारभूत संघटक (essential constituent) होता है, यथा क्षारातु जारेय में पानी मिलाने से क्षारातु उद्जारेय बन जाता है। यहाँ पानी मिलाने से एक सर्वथा भिन्न संयोग बन गया। इस प्रकार से संयुक्त पानी को 'संस्थापना जल' (water of constitution) कहते हैं।

प्राकृत जल—प्रकृति (nature) में रसायनिक रूप से शुद्ध पानी नहीं मिलता। इसमें बहुत सी अशुद्धताएँ—सान्द्र, तरल और वातियाँ—मिली होती हैं।

प्राकृत जल निम्नलिखित रूपों में पाया जाता है—(१) वर्षा का पानी, (२) नदी का पानी, (३) स्रोत अथवा कुएँ का पानी, (४) समुद्र का पानी, और (५) खनिज-जल (mineral water)।

प्राकृत जल में मिली हुई अशुद्धताएँ दो प्रकार की होती हैं, (१) निलम्बित (suspended), खनिज और प्रांगारिक (mineral and organic) दोनों प्रकार की, और (२) प्रविलीन (dissolved), सान्द्र (खनिज और प्रांगारिक) और वातियाँ दोनों।

भूमि पर से शुद्ध पानी का उद्वाष्पन होता है किन्तु बरसते समय उसमें वातियाँ तथा अन्य पदार्थ प्रविलीन हो जाते हैं। वर्षा के पानी में प्रविलीन पदार्थ बहुत थोड़े होते हैं, किन्तु भूमि में रचते समय इसमें कई प्रकार के सान्द्र पदार्थ घुल जाते हैं। भाँति भाँति की भूमियों पर से बहने से नदियों के जल में नाना प्रकार के सान्द्र (लवण आदि) प्रविलीन हो जाते हैं। इसीलिये वर्षा का पानी प्राकृत पानी का शुद्धतम स्वरूप है और समुद्र का पानी अशुद्धताओं से भरा हुआ। समुद्र के पानी की अशुद्धताओं में लगभग तीन चौथाई साधारण लवण होता है। खनिज-स्रोतों (mineral springs) का पानी घरेलू प्रयोग में लाने के योग्य तो नहीं होता किन्तु कई रोगों के लिये लाभकारी होता है।

कठोर और मृदु जल (hard and soft water)—जिस पानी में स्वफेन (soap) की झाग सरलता से बन जाए उसे 'मृदु जल' कहते हैं और जिसमें बहुत सा स्वफेन घिसने पर भी झाग न बने और यदि बने तो बहुत थोड़ी, उस पानी को 'कठोर जल' कहते हैं।

प्राकृत पानी में धातुओं के लवण घुल जाने से उसके अन्दर अनुत्पत विलेय अशुद्धताएँ मिल जाती हैं।

चूर्णातु और भ्राजातु के विलेय लवणों की उपस्थिति पानी को कठोर बनाती है। कठोरता भी दो प्रकार की होती है—एक स्थायी (permanent) और दूसरी अस्थायी (temporary)। अस्थायी कठोरता तो उबालने अथवा चूना मिला देने से दूर हो जाती है, किन्तु स्थायी कठोरता सुगमता से दूर नहीं होती क्योंकि उबालने से अशुद्धताएं निस्सादित नहीं होतीं।

पानी को स्थायीरूप में कठोर बनाने वाले पदार्थ चूर्णातु और भ्राजातु के शुल्बीय और नीरेय हैं। चूर्णातु प्रांगारीय (calcium carbonate) से पानी में अस्थायी कठोरता आ जाती है जो कि उबालने से दूर हो जाती है। पानी में घुले हुए चूर्णातु शुल्बीय में धावन क्षार (क्षारातु प्रांगारीय) डाल देने से चूर्णातु प्रांगारीय बन कर नीचे बैठ जाता है। जलीयित चूर्णक (slaked lime) और क्षारातु प्रांगारीय का मिश्र साधारण कठोर पानी को मृदु करने का अच्छा साधन है।

महातु (platinum) के पात्र में डालकर उद्वाष्पन करने से शुद्ध जल अवशेष नहीं छोड़ता। इसमें गन्ध और स्वाद नहीं होते और नीले अथवा रक्त शेवल पर भी इसकी कोई क्रिया नहीं होती। अजल ताम्र शुल्बीय पानी के संस्पर्श से नीला हो जाता है अतः पानी की उपस्थिति को जाँचने का यह एक अच्छा साधन है॥

सतरहवाँ अध्याय

अम्ल (acid) पीठ (bases) और लवण (salts) —क्लीबन (neutralisation)

अधिकांश संयोग तीन वर्गों में विभक्त हो सकते हैं—अम्ल, पीठ और लवण।

अम्ल—अम्ल शब्द का अर्थ 'खट्टा' है किन्तु सभी खट्टे पदार्थ अम्ल नहीं होते। अम्लों के अध्ययन से पता लगता है कि उनमें निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(१) सभी अम्लों में उद्जन होती है।

(२) सभी अम्ल नीले शेवल को रक्त बना देते।

(३) धातु किसी न किसी रूप में अम्ल की उद्जन का स्थान ले लेती है।

अतः अम्ल एक ऐसा संयोग है जिसका विलयन नीले शेवल को रक्त बना देता है और जिसमें उद्जन अवश्य होती है किन्तु धातुएँ उस उद्जन का थोड़ा अथवा सारा निरसन करके उसका स्थान ले लेती हैं।

जो संयोग इन तीनमें से दो बातों को पूरा करता है आवश्यक नहीं कि वह अम्ल हो। पानी में उद्जन होती है और क्षारातु उस उद्जन के कुछ भाग को निकाल कर उसका स्थान ले लेता है, किन्तु पानी अम्ल नहीं है क्योंकि यह तीसरी बात को पूरी नहीं करता अर्थात् नीले शेवल को रक्त नहीं बनाता। इसी प्रकार क्षारातु उद्जारेय में भी उद्जन होती है जो कुप्यातु आदि धातुओं से निरस्त हो जाती है। एवं

$$कु + २ क्ष ज उ = क्ष_2 कु ज_2 + उ_2$$
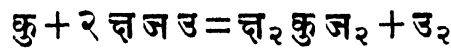
किन्तु क्षारातु उद्जारेय अम्ल नहीं है क्योंकि यह भी नीले शेवल को रक्त नहीं बनाता।

लवण—शुल्बारिक अम्ल पर कुप्यातु की क्रिया से उद्जन निकल जाती है और उसका स्थान कुप्यातु ले लेता है। पीछे विलयन में रंग-हीन सान्द्र रह जाता है। विलायक का उद्वाष्पन कर देने से सान्द्र के लम्बे लम्बे पारदर्श स्पट बन जाते हैं (देखो संपरीक्षा ५७)। साधारण लवण के साथ ऐसे संयोगों के सादृश्य के कारण इन्हें भी 'लवण' कहते हैं।

अतः जब कोई धातु अम्ल की सारी सारी अथवा थोड़ी बहुत उद्जन का निरसन करके उसका स्थान ले लेती है तो जो संयोग बनता है उसे 'लवण' कहते हैं।

निचले समीकार में कुप्यातु ने शुल्बारिक अम्ल में से उद्जन का स्थान ले कर कुप्यातु शुल्बीय नाम का लवण बना दिया—

$$कु + उ_2 शु ज_4 = कु शु ज_4 + उ_2$$
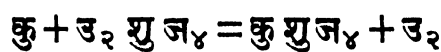
कई लवणों का स्वाद साधारण लवण जैसा होता है और कइयों में धातुओं का कसैलापन पाया जाता है।

पीठ—पीठ प्रायः धातुओं के जारेयों और उद्जारेयों को कहते हैं। ये भी अम्लों के साथ मिलकर लवण बनाते हैं किन्तु धातुओं से इनका भेद केवल इतना है कि अम्ल पर इनकी क्रिया से वाति

का उद्भव नहीं होता और लवण बनने के साथ साथ अम्ल की उद्जन पीठ की जारक से मिल कर पानी बना देती है।

अतः 'पीठ' उस संयोग को कहते हैं जिसकी क्रिया अम्ल पर होने से केवल लवण और पानी बनें।

उष्ण संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल पर ताम्र की क्रिया से वाति उत्पन्न होती है जिसकी गन्ध से साँस घुटने लगता है और ताम्र शुल्बीय बन जाता है।

$$\text{ता} + २\,\text{उ}_२\,\text{शु}\,\text{ज}_४ = \text{ता}\,\text{शु}\,\text{ज}_४ + २\,\text{उ}_२\,\text{ज} + \text{शु}\,\text{ज}_२$$
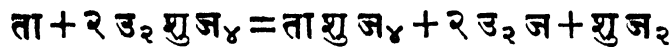
किन्तु ताम्र जारेय को शुल्बारिक अम्ल में डाल कर उष्ण करने से कोई वाति नहीं बनती। ताम्र शुल्बीय और पानी बनते हैं, यथा—

$$\text{ता}\,\text{ज} + \text{उ}_२\text{शु}\,\text{ज}_४ = \text{ता}\,\text{शु}\,\text{ज}_४ + \text{उ}_२\,\text{ज}$$

इसी प्रकार

$$\text{चू}\,\text{ज} + २\,\text{उ}\,\text{नी} = \text{चू}\,\text{नी}_२ + \text{उ}_२\,\text{ज}$$

$$\text{कु}\,(\text{ज}\,\text{उ})_२ + \text{उ}_२\text{शु}\,\text{ज}_४ = \text{कु}\,\text{शु}\,\text{ज}_४ + २\,\text{उ}_२\text{ज}$$
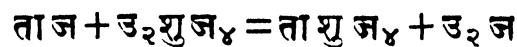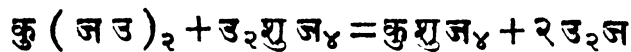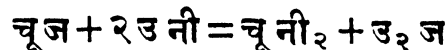
क्षारक (alkalis)—पीठ दो प्रकार के होते हैं, एक विलेय और दूसरे अविलेय। जिन पीठों का विलयन रक्त शेवल को नीला बना दे उनको 'क्षारक' कहते हैं।

अतः 'क्षारक' उस विशेष पीठ को कहते हैं जो पानी में विलेय हो और जिसका विलयन रक्त शेवल को नीला बना दे।

क्षारकों में पीठ के सभी गुण होते हैं किन्तु विशेषता यह है कि वे बहुत क्रियाशील होते हैं और उनका विलयन चिकना और चखने में जलाने वाला (caustic) होता है जो रक्त शेवल को नीला और हरिद्रा-पत्र को भूरा बना देता है।

सभी क्षारक तो पीठ होते हैं किन्तु सभी पीठ क्षारक नहीं होते। दह विक्षार (क्ष ज उ), दह सर्जि (द ज उ), चूर्णातु उद्जारेय चू (ज उ)₂ आदि मुख्य क्षारक हैं। नीचे क्षारातु जारेय से क्षारातु उद्जारेय बनाने का समीकार दिया जाता है—

$$\text{क्ष}_२\,\text{ज} + \text{उ}_२\,\text{ज} = २\,\text{क्ष}\,\text{ज}\,\text{उ}$$
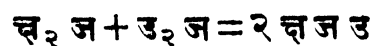
क्लीबन—यदि अम्ल और क्षारक को विलयन अवस्था में उचित अनुभाग में मिलाया जाए तो दोनों के विशिष्ट गुण लुप्त हो जाते हैं। इससे ज्ञात हुआ कि दोनों की प्रतिक्रिया से जो एक अथवा एकसे अधिक नये संयोग बनते हैं वे न तो अम्ल ही रहते हैं और न क्षारक ही। क्षारक और अम्ल की क्रियाओं ने एक दूसरे को क्लीब (neutral) बना दिया है। इस विधा को 'क्लीबन' कहते हैं।

क्षारातु उद्जारेय और शुल्बारिक अम्ल के सम्बन्ध में हम दिखा सकते हैं कि क्षारक के दो व्यूहाणु अम्ल के एक व्यूहाणु का क्लीबन करते हैं। समीकार यह है—

$$२\,\text{क्ष}\,\text{ज}\,\text{उ} + \text{उ}_२\,\text{शु}\,\text{ज}_४ = \text{क्ष}_२\,\text{शु}\,\text{ज}_४ + २\,\text{उ}_२\,\text{ज}$$
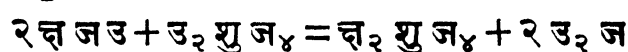
संपरीक्षा ६४—क्षारातु उद्जारेय का एक प्रस्थ विलयन बनाओ जिसमें क्षारक की मात्रा ४० धा. हो। शुल्बारिक अम्ल को भी इतना मन्द (dilute) बनाओ कि एक प्रस्थ में ४६ धा. अम्ल के हों।

नाडक द्वारा क्षारक के विलयन के १० घ. शि. मा. चञ्चुकी में डालो। फिर उसमें पानी और शेवल का विलयन डाल दो। थोड़ा सा मन्द अम्ल द्रवमि में डाल कर अंक देख लो। द्रवमि में से चञ्चुकी में अम्ल की एक एक बिन्दु टपका कर काच शलाका से हिलाते जाओ। अम्ल के बिन्दुओं से

चक्चुकी का विलयन रक्त हो जायगा और धीरे धीरे रक्त रंग लोप हो जाएगा। तत्पश्चात् अम्ल की बूँदों को बड़ी सावधानी से तब तक डालते आओ जब तक विलयन का रंग आनीलारुण (purplish) न हो जाए। यह विलयन क्लीब होगा और द्रवमि का अंक देखने से ज्ञात होगा कि अम्ल के १० घ. शि. मा. डाले गए हैं।

यत: क्षारक के १० घ.शि.मा. ने अम्ल के १० घ.शि.मा. का क्लीबन किया है अत: क्षारक के १००० घ.शि.मा. अम्ल के १००० घ.शि.मा. का क्लीबन करेंगे। इसलिये ४० धा. क्षारातु उदजारेय ४६ धा. शुल्बारिक अम्ल का क्लीबन करने में समर्थ है। अत: ९८ भार का शुल्बारिक अम्ल का व्यूहाणु ४० भार के क्षारातु उदजारेय के दो व्यूहाणुओं का क्लीबन करता है।

विलयन का उद्वाष्पन कर के लवण निकाल लो। इस लवण का विशेष प्रकार का कड़वा स्वाद होगा और इसमें क्षारक और अम्ल की उपस्थिति स्वतन्त्ररूप में पहचानी नहीं जा सकती।

ऋजु लवण और अम्ल लवण (normal salts and acid salts)—जब कोई धातु अम्ल पर क्रिया करके उसकी सारी की सारी प्रतिस्थाप्य (replaceable) उदजन का स्थान ले लेती है तब जो नया संयोग बनता है उसे 'ऋजु अथवा यथार्थ (true) लवण' कहते हैं। किन्तु जब कोई धातु अम्ल में से प्रतिस्थाप्य उदजन का पूरा निरसन नहीं करती और उसके कुछ भाग का ही स्थान लेती है तब जो संयोग प्राप्त होता है उसे 'अम्ल लवण' कहते हैं। ऐसे संयोग लवण भी होते हैं और अम्ल भी।

क्षारातु उदजारेय और उदनीरिक अम्ल के परस्पर क्लीबन से जो लवण बनता है वह ऋजु लवण है। इसमें क्षारातु जारेय एक ही अनुभाग में उदनीरिक अम्ल पर क्रिया कर सकता है।

$$\text{क्षजउ} + \text{उनी} = \text{क्षनी} + \text{उ}_2\text{ज}$$
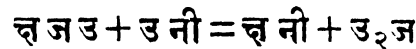
किन्तु नीचे दिये समीकारों से ज्ञात होगा कि यही जारेय शुल्बारिक अम्ल पर दो भिन्न भिन्न अनुभागों में क्रिया करता है।

$$२\,\text{क्षजउ} + \text{उ}_2\text{शुज}_4 = \text{क्ष}_2\text{शुज}_4 + २\,\text{उ}_2\text{ज}$$

$$\text{क्षजउ} + \text{उ}_2\text{शुज}_4 = \text{क्षउशुज}_4 + \text{उ}_2\text{ज}$$
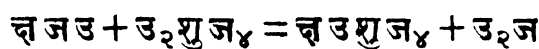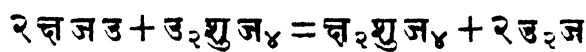
पहली क्रिया से क्षारातु शुल्बीय ($\text{क्ष}_2\text{शुज}_4$) लवण बना। यह ऋजु लवण है क्योंकि क्षारातु उदजारेय और शुल्बारिक अम्ल के व्यूहाणु २ और १ के अनुपात से संयुक्त हुए हैं इसलिये उदजन का संपूर्णतया निरसन हो गया है। किन्तु दूसरे समीकार में उदजारेय और अम्ल के व्यूहाणु समान अनुपात से मिले हैं इसलिये जो लवण (क्षउशुज_4) बना उसमें उदजन मिली रह गई। यह लवण अम्ल लवण है। इसको 'क्षारातु उदजन शुल्बीय, क्षारातु द्विशुल्बीय अथवा अम्ल क्षारातु शुल्बीय' (sodium hydrogen sulphate, sodium bisulphate or acid sodium sulphate) कहते हैं।

पैठिक लवण—भिन्न अनुभागों में उदनीरिक अम्ल और चूर्णातु उदजारेय की प्रतिक्रिया निम्नलिखित समीकारों के अनुसार होती है—

$$\text{उनी} + \text{चू}(\text{जउ})_2 = \text{चू}(\text{जउ})\text{नी} + \text{उ}_2\text{ज}$$

$$२\,\text{उनी} + \text{चू}(\text{जउ})_2 = \text{चूनी}_2 + २\,\text{उ}_2\text{ज}$$
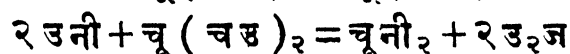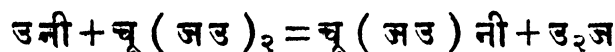
पहले समीकार में लवण चू (ज उ) नी की स्थिति लवण और पीठ के बीच की है अर्थात् यह लवण भी है और पीठ भी। ऐसे संयोगों को 'पैठिक लवण' कहते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि ऋजु लवण और पीठ के मेल से जो संयोग बने वह 'पैठिक लवण' होता है। पैठिक ताम्र शुल्बीय का सूत्र ता शु $ज_४$.ता ज है।

अम्ल की पैठिकता (basicity)—अम्ल के व्यूहाणु में उदजन के प्रतिस्थाप्य परमाणुओं की संख्या को ही अम्ल की 'पैठिकता' कहते हैं।

शुल्बारिक अम्ल द्विपैठिक (dibasic) है, और इससे एक ऋजु और एक अम्ल क्षारातु लवण अर्थात् दो क्षारातु लवण प्राप्त हो सकते हैं। क्षारातु उदजारेय में शुल्बारिक अम्ल की चाहे कितनी भी अधिक मात्रा क्यों न डालते जाएँ अम्ल लवण केवल एक ही बनेगा।

भास्विक अम्ल त्रिपैठिक (tribasic) अम्ल है अर्थात् इसके व्यूहाणु में उदजन के प्रतिस्थाप्य परमाणु तीन हैं। इससे तीन क्षारातु लवण बन सकते हैं। एवं—

भास्विक अम्ल, $उ_३भज_४$ (phosphoric acid)

द्वयुदजन क्षारातु भास्वीय, $उ_२क्षभज_४$ (dihydrogen sodium phosphate)।

उदजन द्विक्षारातु भास्वीय, $उक्ष_२भज_४$ (hydrogen disodium phosphate)।

ऋजु क्षारातु भास्वीय, $क्ष_३भज_४$ (normal sodium phosphate)।

उदनीरिक और भूयिक अम्ल एकपैठिक (monobasic) हैं। इसलिये दोनों से एक एक क्षारातु लवण बनता है।

अत: अम्ल की पैठिकता उससे बनने वाले क्षारातु लवणों की संख्या से ज्ञात होती है।

शेवल (litmus) पर लवणों की क्रिया—ऋजु लवण शेवल के प्रति सदा क्लीब ही नहीं होते, जैसे क्षारातु प्रांगारीय, $क्ष_२प्रज_३$, और ऋजु क्षारातु भास्वीय की क्रिया शेवल पर क्षारिय (alkaline) होती है। क्लीब क्षारातु भास्वीय तो उदजन लवण है जिसका सूत्र $उक्ष_२भज_४$ है। ऋजु लवण में प्रतिस्थाप्य उदजन सर्वथा नहीं होती, किन्तु अम्ल लवण में प्रतिस्थाप्य उदजन होती है चाहे शेवल पर उसकी क्रिया क्लीब ही क्यों न हो।

अम्ल, पीठ और लवणों के समसंयुज भार (equivalent weights)—शुल्बारिक अम्ल का वह भार जिसमें भार के अनुसार प्रतिस्थाप्य उदजन का एक भाग हो शुल्बारिक अम्ल का समसंयुज माना जाता है। इसलिये शुल्बारिक अम्ल का समसंयुज भार के अनुसार इसके ४९·० भाग हैं।

पीठ का जो भार भारानुसार शुल्बारिक अम्ल के पूरे ४९·० भागों को ऋजु लवण में परिणत कर कर दे उसे पीठ का 'समसंयुज भार' कहते हैं।

संपरीक्षा ६४ में हमने देख लिया है कि भार के अनुसार क्षारातु उदजारेय के ४०·० भाग शुल्बारिक अम्ल के ४९·० भागों का क्लीबन कर देते हैं। अत: क्षारातु उदजारेय का समसंयुज ४०·० है।

इसी प्रकार दहातु उदजारेय का समसंयुज ५६·१ है। जब समसंयुज भार धान्यों में दिया हो तब इसे 'धान्य समसंयुज' (gram equivalent) कहते हैं।

नीचे कुछ अम्लों और पीठों का समसंयुज भार दिया जाता है—

अम्ल		पीठ	
उदनीरिक अम्ल	३६·५	क्षारातु उदजारेय	४०·०
भूयिक अम्ल	६३·०	दहातु उदजारेय	५६·१
शुल्बारिक अम्ल	४६·०	चूर्णातु उदजारेय	३७·०
भास्विक अम्ल	३२·६	अयसिक उदजारेय	३५·६

अम्लों और पीठों के समसंयुज भारों से ऋजु लवण बनते हैं, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वे लवण शेवल के प्रति क्लीब हों।

अम्लों के समसंयुज वे भार होते हैं जिन में भार के अनुसार प्रतिस्थाप्य उदजन का एक भाग होता है। अत: अम्ल के व्यूहाणु-भार का उसकी पैठिकता से विभाजन करने पर उसका समसंयुज निकल आता है।

अम्ल	व्यूहाणु-भार	पैठिकता	समसंयुज
उदनीरिक	३६·५	१	३६·५
भूयिक	६३·०	१	६३·०
शुल्बारिक	६८	२	४६·०
भास्विक	६८	३	३२·६

पीठों में से क्षारातु और दहातु उदजारेयों का समसंयुज उनके व्यूहाणु-भार के तुल्य है। चूर्णातु उदजारेय, चू (ज उ)$_2$, का व्यूहाणु-भार से आधा और अयसिक उदजारेय, अ (ज उ)$_2$, का व्यूहाणु-भार से एक तिहाई है।

इससे ज्ञात हुआ कि प्रत्येक पैठिक उदजारेय का समसंयुज भार उतना होता है जिसमें उदजारल, –ज उ, (hydroxyl) का एक भार हो अर्थात् भार के अनुसार १७·० के तुल्य हो।

अम्लों और पीठों के समसंयुजों की प्रतिक्रिया से जो भार प्राप्त हो वही लवणों का समसंयुज भार होता है। जैसे भार के अनुसार शुल्बारिक अम्ल के ४६·० भाग और दहातु उदजारेय के ५६·१ भाग मिल कर दहातु शुल्बीय के ८७·१ भाग बनाते हैं, अतः दहातु शुल्बीय का समसंयुज भार ८७·१ है॥

अठारहवाँ अध्याय

जारेय (oxides)—धातु और अधातु—जारण और प्रहसन

जारेय और उदजारेय (hydroxides)—तत्त्वों और जारक के मेल से बने हुए संयोगों को 'जारेय' कहते हैं। ये पाँच प्रकार के होते हैं, (१) पैठिक (basic), (२) अम्लकर (acidic), (३) क्लीब (neutral), (४) अतिजारेय (peroxides) और (५) उभयविध (amphoteric)।

उद्जारेय जारेय और पानी के मेल से बनते हैं। इन को कभी कभी 'जलीय' (hydrate) भी कह देते हैं।

(१) पैठिक जारेय—ये प्राय: धातुओं के जारेय होते हैं और अम्लों का क्लीबन कर के लवण और पानी बना देते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं (१) विलेय, और (२) अविलेय।

विलेय पैठिक जारेय पानी में घुल कर क्षारक बन जाते हैं और ये धातुओं के 'क्षारिय उद्जारेय' कहलाते हैं। स्पर्श में ये चिकने होते हैं और रक्त शेवल को नीला तथा हरिद्रा-पत्र को भूरा कर देते हैं। विलेय जारेयों के मुख्य उदाहरण दहातु और क्षारातु के जारेय हैं। चूर्णातु और भ्राजातु के जारेय पानी में बहुत थोड़े विलेय हैं। चूर्णातु जारेय से चूर्णातु उद्जारेय बनाने का समीकार यह है—

$$चूज + उ_2ज = चू (जउ)_2$$
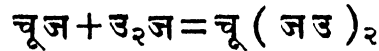
इस उद्जारेय के विलयन को चूर्णक-जल (limewater) कहते हैं।

अविलेय पैठिक जारेय के उदाहरण हैं ताम्र जारेय, ताज, और अयसिक जारेय, $ज_2ज_3$।

इनके उद्जारेय निस्सादन (precipitation) द्वारा बनाए जाते हैं जिसके लिये इनके विलयन में क्षारिय उद्जारेय मिलाना पड़ता है। यदि क्षारातु उद्जारेय का विलयन ताम्र शुल्बीय के विलयन में मिला दिया जाए तो द्विगुण विबन्धन (double decomposition) हो कर सान्द्र ताम्र उद्जारेय बन जाता है। एवं—

$$ताशुज_4 + २क्षजउ = ता (जउ)_2 + क्ष_2शुज_4$$
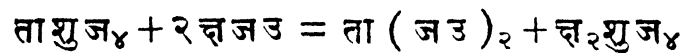
इस उद्जारेय को तपाने से इसका विबन्धन हो कर काला जारेय और पानी बन जाते हैं।

अविलेय जारेयों और उद्जारेयों की शेवल पर कोई क्रिया नहीं होती।

(२) अम्लकर (acidic) जारेय अथवा अम्लकर अनुदेय (anhydrides)—ये प्राय: अधातु तत्त्वों के जारेय होते हैं जो पानी से मिल कर अम्ल बना देते हैं। इसीलिये इनको 'अम्लकर जारेय' कहा है। यदि अम्ल में से पानी निकाल दिया जाए तो ये जारेय प्राप्त हो जाते हैं। अत: इनको 'अम्लकर अनुदेय' (अन् + उद् = बिना पानी) भी कहा गया है। इसीलिये हम अम्लों को 'जलीयित अम्लकर जारेय' (hydrated acidic oxides) अथवा अधिक शुद्धरूप में 'अम्लकर उद्जारेय' कह सकते हैं।

अम्लकर जारेयों के गुण पैठिक जारेयों के गुणों के सर्वथा विपरीत होते हैं। अम्ल की क्रिया पैठिक जारेय पर होने से लवण और पानी बनते हैं, यथा—

$$ताज + उ_2शुज_4 = ताशुज_4 + उ_2ज$$
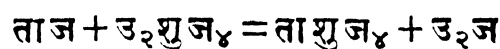
इस समीकार को हम नीचे दिये रूप में लिख सकते हैं—

$$ताज + उ_2ज.शुज_3 = ताज.शुज_3 + उ_2ज$$
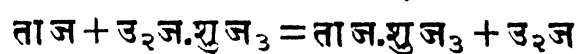
इससे पता लगता है कि पैठिक जारेय और अन्य जारेय के मेल से लवण कैसे बनता है। ऐसे जारेय को जो पैठिक जारेय से मिल कर लवण बना दे 'अम्लकर जारेय' कहते हैं।

अम्लकर जारेय भी विलेय और अविलेय होने के कारण दो प्रकार के होते हैं।

विलेय अम्लकर जारेयों के पानी मिले विलयन को 'अम्लकर उद्जारेय' अथवा 'अम्ल' कहते हैं। इनकी क्रिया से नीला शेवल रक्त हो जाता है।

शुल्बारि त्रिजारेय (trioxide) में, जो कि विलेय अम्लकर जारेय है, पानी मिला देने से शुल्बारिक अम्ल बन जाता है। समीकार यह है—

$$शु जा_3 + उ_2 ज = उ_2 शु ज_4$$
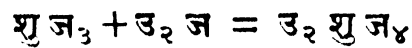
अविलेय अम्लकर जारेय—साधारण सिकता (रेत) अथवा सैकजा (silica) जो वास्तव में सैकता द्विजारेय, सै $ज_2$, (silicon dioxide) है, अविलेय अम्लकर जारेय का मुख्य उदाहरण है। इसको क्षारातु उदजारेय अथवा क्षारातु प्रांगारीय के साथ पिघलाने (fusing) से इसका क्षारातु लवण बन जाता है, जिसका सूत्र $क्ष_2$ सै $ज_3$ है। इस सूत्र को हम $क्ष_2$ ज. सै $ज_2$ भी लिख सकते हैं, जिससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यह लवण पैठिक जारेय और अम्लकर जारेय के मेल से बना है।

द्विगुण विबन्धन द्वारा इस लवण का अम्लकर उदजारेय अथवा अम्ल बन जाता है। सैकतिक अम्ल (silicic acid) बनाने के लिये इसके विलयन में उदनीरिक अम्ल मिलाया जाता है। यदि अम्ल निस्सादित न हो तो इसको व्याश्लेषण (dialysis) द्वारा लवण से पृथक् कर सकते हैं। मिश्र को चर्मपत्र (parchment paper) के तले वाले पात्र में डाल कर उस पात्र को पानी पर तैराया जाता है। सैकतिक अम्ल को छोड़ कर विलयन के सभी पदार्थ चर्मपत्र में से निकल जाते हैं। जो पदार्थ चर्मपत्र में से इस प्रकार निकल जाते हैं उन्हें 'स्फटाभ' (crystalloids) कहते हैं और जो नहीं निकलते उन्हें 'श्लेषाभ' (colloids) कहते हैं।

सैकतिक अम्ल का सूत्र $उ_2$ सै $ज_3$ है। उबालने, पावन और उत्तापन (igniting) द्वारा इसमें से जारेय निस्सादित किया जा सकता है। एवं—

$$उ_2 सै ज_3 = सै ज_2 + उ_2 ज$$
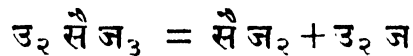
क्लीव जारेय (neutral oxides)—इन जारेयों में पानी मिलाने से न तो इनका अम्ल बनता है और न ही पीठ। पानी $उ_2$ ज, भूयिक जारेय भू ज, और प्रांगार एकजारेय प्र ज, आदि क्लीब जारेयों के उदाहरण हैं।

उभयविध जारेय (amphoteric oxides)—प्रतिकर्ताओं के स्वभाव के अनुसार भिन्न भिन्न परिस्थितियों में इन जारेयों के अन्दर पैठिक और अम्लकर दोनों प्रकार के जारेयों के लक्षण देखे जाते हैं, यथा कुप्यातु जारेय, स्फट्यातु जारेय, त्रपु जारेय आदि।

यतः कुप्यातु जारेय अथवा कुप्यातु उदजारेय अम्लों का क्लीबन करके अम्लों के लवण और पानी बनाते हैं इसलिये वे पैठिक प्रतीत होते हैं; किन्तु कुप्यातु उदजारेय दह विक्षार अथवा दह सर्जि के विलयन का क्लीबन करके क्षारातु कुप्यीय (एक प्रकार का लवण) अथवा दहातु कुप्यीय (अन्य प्रकार का लवण) और पानी बनाता है इसलिये इसका गुण अम्लकर भी है।

अतिजारेय (peroxides)—ऊपर लिखे जारेयों के अतिरिक्त कई दूसरे जारेय भी हैं जो अम्लकर नहीं होते और उनकी क्रिया यथार्थ पीठों की सी नहीं होती। अम्ल के साथ मिला कर तपाने से उनके लवण बन जाते हैं किन्तु साथ साथ जारक का उन्मोचन होता है। उनको पैठिक जारेयों और जारक के संयोग समझना चाहिये, यथा हर्यातु अतिजारेय अथवा द्विजारेय, ह $ज_2$। अम्ल से इसका साधन करने से एक लवण बनता है जो पैठिक जारेय, ह ज, के समान होता है और उसके साथ जारक

का उन्मोचन होता है। संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल की क्रिया अतिजारेय पर होने से जारक, एक प्रकार का शुल्बीय और पानी बनते हैं। एवं—

$$२ ह जा_२ + २ उ_२ शु जा_४ = २ ह शु जा_४ + २ उ_२ जा + जा_२$$

संपरीक्षा ६५—परीक्षण नाल में हर्यातु अतिजारेय और संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल को इकट्ठे डाल कर तपाओ। परीक्षण नाल का मुख घड़ी के काच (watch-glass) से ढँके रखो। कुछ समय पीछे दहकती हुई लकड़ी को उसके पास ले जाने से पता लग जायगा कि जारक निकल रही है। इसके साथ ही श्वेत रंग का हर्यातु शुल्बीय बनता जाता है।

उदनीरिक अम्ल और अतिजारेयों की प्रतिक्रिया से नीरेय और नीरजी बन जाते हैं। पहले जारक का उद्भव होता है जो उस समय जायमान अथवा परमाण्विक अवस्था में होने के कारण उदनीरिक अम्ल से संयुक्त हो कर पानी और नीरजी बना देती है। एवं—

(१) $ह जा_२ + २ उ नी = ह नी_२ + उ_२ जा + जा$ (परमाण्विक अथवा जायमान)

(२) $२ उ नी + जा = उ_२ जा + नी_२$

नीरजी वाति का रंग हरियाला सा होता है। इसकी गन्ध घिनावनी और तीखी होती है। और यह गीले शेवल-पत्र का श्वेतन कर देती है।

संपरीक्षा ६६—परीक्षण नाल में हर्यातु अतिजारेय और संकेन्द्रित उदनीरिक अम्ल को इकट्ठे तपाओ। नीरजी की विशेष प्रकार की गन्ध और श्वेतन क्रिया दिखाई पड़ेगी। हर्यातु नीरेय भी साथ साथ बनता जाएगा। हर्यातु एकजारेय से भी यही लवण प्राप्त होता है, किन्तु नीरजी का उद्भव नहीं होता।

शुल्बारिक और उदनीरिक अम्लों के साथ कई अम्लकर जारेयों की प्रतिक्रिया अतिजारेयों के समान होती है। यथार्थ अतिजारेयों से उनकी पहचान उनके अम्लकर गुणों से की जाती है।

धातु और अधातु—चिर काल से ही भौतिक गुणों के आधार पर तत्त्वों का विभाजन धातु और अधातु दो वर्गों में किया जाता है।

धातु तत्त्व प्रायः भारी होते हैं और उनका प्रमार्जन करने से उनके ऊपर धातु जैसी चमक आ जाती है, यथा चाँदी, त्रपु आदि। ताम्र के समान कई धातु ऊष्मा और विद्युत् के सुसंवाहक होते हैं और उनके सूक्ष्म तन्तु तथा पतले स्तार (sheets) भी बनाए जा सकते हैं।

अधातु तत्त्वों में ये गुण नहीं होते। इस पुस्तक में निम्नलिखित अधातुओं का विवरण दिया गया है—

जारक, नीरजी, भूयाति, शुल्बारि, प्रांगार और भास्वर।

धातुओं और अधातुओं के मोटे मोटे भेद नीचे सारणी में दिये जाते हैं—

धातु तत्त्व	अधातु तत्त्व
१. धातु पारादर्श (opaque) होते हैं।	१. कई अधातु (वातियाँ) पारदर्श (transparent) और कुछ (सान्द्र) पारादर्श होते हैं।
२. इनमें धातुओं जैसी चमक होती है।	२. इनमें धातु जैसी चमक नहीं होती।
३. इनका आपेक्षिक भार अधिक होता है।	३. इनका आपेक्षिक भार थोड़ा होता है।
४. पारे के अतिरिक्त सभी धातु सान्द्र होते हैं और इनका द्रावांक ऊँचा होता है।	४. अधातु सान्द्र अथवा वातिरूप में होते हैं और इनका द्रावांक नीचा होता है।
५. ये कुट्टय (malleable) और प्रतन्य (ductile) होते हैं।	५. सान्द्र अवस्था में ये प्रायः भिदुर (brittle) होते हैं।
६. प्रायः ऊष्मा और विद्युत् के सुसंवाहक होते हैं।	६. प्रायः विद्युत् और ऊष्मा के सुसंवाहक नहीं होते।
७. अम्लों की प्रतिक्रिया से उद्जन को निकाल देते हैं और लवण बना देते हैं।	७. प्रायः अम्लों में सरलता से प्रविलीन नहीं होते। जाराम्लों (oxyacids) की प्रतिक्रिया से जारेय बनाते हैं, लवण नहीं बनाते।
८. ये पैठिक जारेय बनाते हैं जिनको अम्ल में मिलाने से प्रतिक्रिया द्वारा लवण और पानी बन जाते हैं।	८. इनके जारेय अम्लकर अथवा क्लीब होते हैं, पैठिक कभी नहीं होते। प्रत्येक अम्लकर जारेय का तत्संवादी (corresponding) अम्ल होता है।
९. ये प्रायः उद्जन के साथ सरलता से संयुक्त नहीं होते।	९. उद्जन के साथ इनकी बन्धुता बहुत अधिक होती है।
१०. उद्विद्युतीय (electro-positive) होने के कारण निर्ध्रुव (negative pole) से उन्मुक्त होते हैं।	१०. निर्विद्युतीय (electro-negative) होने के कारण उद्ध्रुव (positive pole) से उन्मुक्त होते हैं।

तत्त्वों का विभाजन धातुओं और अधातुओं में कड़े नियम से नहीं किया जा सकता। कई तत्त्व ऐसे हैं जिनमें दोनों के गुण पाए जाते हैं। उनको 'धात्वाभ' (metalloids) कहते हैं। अंजन के भौतिक गुण कुछ कुछ धातुओं से मिलते हैं किंतु यह गन्धक (अधातु) के समान भिदुर है। रसायनिक गुणों की दृष्टि से यह दोनों वर्गों में आ सकता है क्योंकि इसका एक प्रकार का जारेय एक ओर पीठ और दूसरी ओर अम्लकर जारेय के समान क्रिया करता है। एवं अंजन शुल्बीय (antimony sulphate) और क्षारातु अंजनाश्म (sodium antimonite) अंजन के एक ही जारेय से बनते हैं।

लोहे के समान कुछ यथार्थ धातुओं के भी ऐसे जारेयिक जारेय (oxidic oxides) बनते हैं

जो बहुधा अस्थायी (unstable) होते हैं। अज और अ$_2$ज$_3$ तो पैठिक जारेय हैं किन्तु अज$_3$ अम्लकर है। तत्त्वों के जिन जारेयों में जारक का अनुभाग अधिक होता है उन्हें 'उच्च जारेय' (higher oxides) कहते हैं और जिन में न्यून होता है उन्हें 'नीच (lower) जारेय' कहते हैं।

जारण और प्रहसन—'जारण' का सरल अर्थ जारक के साथ संयुक्त होने की विधा से है। उदजन जब जारक के साथ मिल कर पानी बनाती है तब उसका जारण होता है। जारण की विपरीत विधा का नाम 'प्रहसन' है। इस विधा द्वारा संयोग में से जारक का अपहरण किया जाता है। ताम्र जारेय, ताज, को उदजन के प्रवाह में तपाने से प्रहसन होकर ताम्र रह जाता है।

यदि अयस्य शुल्बीय, अशुज$_4$, (ferrous sulphate) को शुल्बारिक अम्ल के साथ संकेन्द्रित भूयिक अम्ल, उभूज$_3$, में तपाएँ तो एक नया संयोग अयसिक शुल्बीय, अ$_2$ (शुज$_4$)$_3$, (ferric sulphate) बन जाएगा। विलयन का रंग हरे से पीला हो जाएगा। इस विधा में भी जारण हुआ है। शुल्बारिक अम्ल की उदजन जारण द्वारा पानी में परिणत हो गई है और –शुज$_4$ का वर्ग अयस्य शुल्बीय के साथ मिल गया है। अतः हम कह सकते हैं कि जारण द्वारा अयस्य लवण अयसिक लवणों में परिणत हो जाते हैं चाहे इस विधा में केवल नीरजी ही सीधी मिलाई जाती है।

विस्तृतरूप से 'जारण' का अभिप्राय संयोग के अधात्विक अनुभाग की वृद्धि से है और 'प्रहसन' का उस भाग के ह्रास से है।

संयोगे ऽधात्विकाऽनुभाग-वृद्धिर् जारणं तद्-ह्रासः प्रहसनम् ॥

संपरीक्षा ६५—हरे अयस्य शुल्बीय के विलयन में मन्द शुल्बारिक अम्ल मिलाओ। फिर उसमें संकेन्द्रित भूयिक अम्ल मिला कर विलयन को तपाओ। पहले तो यह बहुत असित (dark) हो जाएगा। फिर इसमें से वाति का उद्भव होकर इसका रंग पीला हो जाएगा।

यदि हरे अयस्य लवण में तिकाति मिला दी जाए तो अयस्य उदजारेय का मलिन हरे (dirty green) रंग का निस्साद बैठ जाएगा। अयसिक शुल्बीय में तिकाति मिलाने से अयसिक उदजारेय का रक्त निस्साद बैठेगा।

इस पुस्तक में मुख्य जारणकर्त्ता (oxidizing agents जारक, प्रजारक, नीरजी और भूयिक अम्ल हैं।

मुख्य प्रहसन कर्त्ता (reducing agents) उदजन, प्रांगार, प्रांगार एकजारेय, शुल्बेयित उदजन (sulphuretted hydrogen) और शुल्बारि द्विजारेय हैं।

जायमान (nascent) अथवा परमाण्विक अवस्था—जारक का प्रवाह अच्छा जारयिता नहीं होता क्योंकि इसमें जारक अपनी व्यूहाण्विक अवस्था में होती है। किसी पदार्थ में संयुक्त करने से पहले इसका विच्छेद करके परमाण्विक अवस्था में लाना चाहिये। इसीलिये वे पदार्थ जो जारणीय (oxidizable) पदार्थों के साथ मिल कर जारक को उत्पन्न करें वे अधिक अच्छे जारयिता होते हैं क्योंकि तब जारक अपनी जायमान अथवा परमाण्विक अवस्था में पदार्थों के संस्पर्श में आती है।

इसी प्रकार व्यूहाण्विक उदजन भी साधारण तापों पर अच्छी प्रहसित्री नहीं क्योंकि इसके व्यूहाणुओं का विच्छेद करने के लिये बहुत बल (force) चाहिये। यदि प्रहासनीय (reducible) पदार्थों की उपस्थिति में उदजन उत्पन्न हो तो वह जायमान अवस्था में होने के कारण सरलता से

प्रहसन कर देगी। यही कारण है कि कुप्यातु और मन्द शुल्बारिक अम्ल अयसिक लवणों को सरलता से अयस्य लवणों में परिणत कर देते हैं। एवं—

$$\text{अ}(\text{शुज}_{४})_{३} + २\,\text{उ}\ (\text{परमाण्विक}) = २\,\text{अशुज}_{४} + \text{उ}_{२}\text{शुज}_{४}\ ॥$$
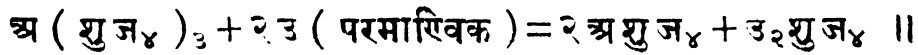
उन्नीसवाँ अध्याय

नीरजी (chlorine)

शेल (Scheele) नाम के रसायनज्ञ ने वि. सं. १८३१ में लोहक के काले जारेय को उदनीरिक अम्ल के साथ तपा कर इस वाति का आविष्कार किया था। उसका विचार था कि यह उदनीरिक अम्ल और जारक के संयोग से बनती है, किन्तु कुछ वर्षों के पीछे सिद्ध हो गया कि यह संयोग नहीं, तत्त्व है। अपने श्वेतन गुण से यह रंगों को उड़ा देती है इसीलिये इसका नाम 'नीरजी' (निर्+रञ्ज्) रखा है।

प्राप्ति-स्थान—नीरजी प्रकृति (nature) में स्वतन्त्र अवस्था में नहीं मिलती किन्तु यह क्षारातु, दहातु, भ्राजातु आदि के साथ प्रचुर मात्रा में मिली हुई होती है। साधारण खाने का लवण इसका सामान्य संयोग क्षारातु नीरेय है जो समुद्र के पानी और खानों में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। दहातु और भ्राजातु के नीरेय भी प्रायः बहुत अधिक मात्रा में पाए जाते हैं।

निर्माण की रीति—प्रयोगशाला में नीरजी बनाने के लिये प्रायः लोहक द्विजारेय (manganese dioxide) को तीव्र उदनीरिक अम्ल के साथ तपाया जाता है। इससे लोहक नीरेय बनता है और जायमान जारक उन्मुक्त होती है जो अम्ल की उदजन के साथ मिल कर पानी बनाती है। पानी नीरजी का उन्मोचन करता है। प्रतिक्रियाएँ निम्नलिखित समीकारों के अनुसार होती हैं—

(१) $\text{लोज}_{२} + २\,\text{उनी} = \text{लोनी}_{२} + \text{उ}_{२}\text{ज} + \text{ज}$ (परमाण्विक)
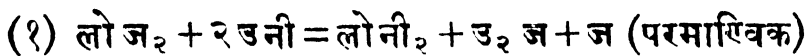
जायमान जारक की पुनः अम्ल पर क्रिया होने से—

(२) $\text{ज} + २\,\text{उनी} = \text{नी}_{२} + \text{उ}_{२}\text{ज}$
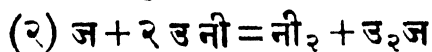
संपूर्ण प्रतिक्रिया को नीचे लिखे समीकार से दिखाया जाता है—

$$\text{लोज}_{२} + ४\,\text{उनी} = \text{लोनी}_{२} + २\,\text{उ}_{२}\text{ज} + \text{नी}_{२}$$
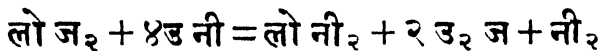
चित्र ३१

संपरीक्षा ६६—कणात्मक लोहक द्विजारेय ($\text{लोज}_{२}$) को पलिघ में डाल कर उसके मुख के साथ शृगाल-निवाप और प्रदान-नाल लगा दो (चित्र ३१)। निवाप में से संकेन्द्रित उदनीरिक अम्ल इतना डालो कि द्विजारेय ढँक जाए और निवाप का निचला सिरा अम्ल में डूबा रहे। पलिघ में गहरे भूरे रंग का विलयन बन जाएगा। उसे धीमी पिनाल ज्वाला पर तपाओ। नीरजी बनने लगेगी। उसे वायु के उपरि-निरसन (upward displacement) द्वारा इकट्ठी कर लो।
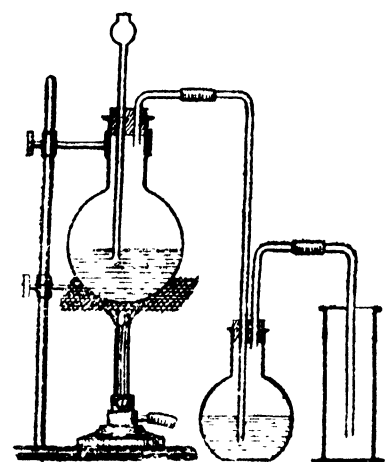
इस प्रकार प्राप्त की हुई नीरजी में उदनीरिक अम्ल मिला होता है। उसे दूर करने के लिये इकट्ठी करने से पहले वाति को पानी से भरी हुई धावन-कूपी (washing bottle) में से ले जाओ। कुछ समय के अंदर नीरजी और अम्ल दोनों ही पानी में प्रचूषित हो जाएँगे किन्तु विलयन शीघ्र ही नीरजी से अनुविद्ध हो जाएगा। तत्पश्चात् नीरजी तो विलयन में से बाहर निकलने लगेगी और उदनीरिक अम्ल अधिक विलेय होने के कारण पानी में प्रचूषित होता रहेगा।

ऊपर लिखी रीति में थोड़ा सा परिवर्तन भी किया जा सकता है। उदनीरिक अम्ल के स्थान पर साधारण अनतिसंकेन्द्रित (moderately concentrated) शुल्बारिक अम्ल का मिश्र प्रयोग में लाओ। इन दोनोंकी प्रतिक्रियाओं से उदनीरिक अम्ल बनने लगेगा जिसकी लोहक द्विजारेय के साथ प्रतिक्रिया से नीरजी बनने लगेगी। समीकार यह है—

$$२ \text{ क्ष नी} + \text{लो ज}_२ + ३ \text{ उ}_२ \text{ शु ज}_४ = २ \text{ क्ष उ शु ज}_४ + \text{लो शु ज}_४ + २ \text{ उ}_२ \text{ ज} + \text{नी}_२$$
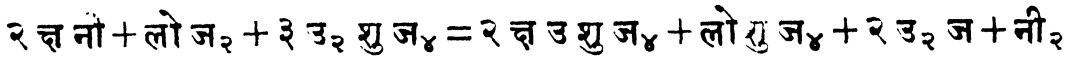
न्याप-विधा (नी = नीरजी, आप = आप्ति अर्थात् प्राप्ति (Deacon's process)—व्यापार के लिये अधिक मात्रा में नीरजी बनाने के लिये उदनीरिक अम्ल और वायु के मिश्र को रक्तोष्ण ईंटों पर से ले जाया जाता है। ये ईंटें पहले ताम्र नीरेय से अनुविद्ध की होती हैं। अम्ल की उदजन जारक से मिल कर पानी बनाती है। नीरजी उत्पन्न होने लगती है और साथ साथ वायु में से भूयाति भी उन्मुक्त होती है। ताम्र उदजारेय में कोई परिवर्तन नहीं होता इसलिये वह आवेजक* (catalytic agent) का काम करता है। समीकार यह है—

$$४ \text{ उ नी} + \text{ज}_२ = २ \text{ नी}_२ + २ \text{ उ}_२ \text{ ज}$$
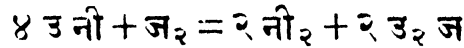
कई जारयिताओं की क्रिया उदनीरिक अम्ल पर होने से, अम्लों की क्रिया श्वेतन क्षोद (bleaching powder) पर होने से, तथा उदनीरिक अम्ल और अधिकतर क्षारातु नीरेय के तीव्र (strong) विलयनों के विद्युद्दंशन से भी नीरजी प्राप्त हो सकती है।

नीरजी के भौतिक गुण—नीरजी हरियावल लिये हुए पीले रंग की वाति है जिसके गन्ध और स्वाद से साँस घुटता है और फेफड़ों तथा गले में खुरखुरी होने लगती है। साँस के साथ यदि नीरजी अधिक मात्रा में अंदर चली जाए तो विषैली होने के कारण घातक भी हो सकती है। थोड़ी मात्रा में सूँघ लेने से भी तीव्र प्रतिश्याय (hard cold) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। पीछे से दृतु (ether) अथवा तिक्ताति सूँघ लेने से कुछ शांति मिलती है। यह वायु से लगभग २·५ गुणा भारी होती है। उदजन की अपेक्षा इसकी घनता ३५·५ और व्यूहाणु-भार ७१·० है। व्यूहाणु-सूत्र $\text{नी}_२$ है। साधारण ताप पर पानी की एक परिमा में इसकी २·५ परिमाएँ घुल जाती हैं।

साधारण ताप पर निपीड द्वारा अथवा साधारण वायुमण्डल निपीड पर इसको −३४° श. तक ठण्ढा करके इसका तरलन हो सकता है। −१०२° श. पर यह सान्द्र बन जाती है।

नीरजी के रसायनिक गुण—नीरजी वायु में नहीं जलती किन्तु कई पदार्थ इसके अन्दर जलने लगते हैं। साधारण ताप पर नीरजी अति क्रियाशील तत्त्वों में से एक है। कई तत्त्व इससे सीधे मिल कर

* जो पदार्थ अपने अन्दर बिना किसी रसायनिक परिवर्तन के हुए दूसरे पदार्थों में प्रतिक्रिया को बढ़ा देता है उसे 'आवेजक' कहते हैं, और प्रतिक्रिया-वृद्धि को 'आवेजन'(catalysis) कहते हैं।

नीरेय बनाते हैं। इसकी क्रियाशीलता भिन्न भिन्न शीर्षकों के नीचे दी जाती है—

(१) धातुओं पर नीरजी की क्रिया—नीरजी में ताम्र जलने लगता है और उसका धात्विक जारेय बन जाता है। क्षारातु और पारा भी इसके साथ सीधे मिल जाते हैं। ताम्र और क्षारातु के संयोगों के समीकार ये हैं—

$$ता + नी_२ = ता नी_२ \text{ (ताम्र नीरेय)}$$

$$२ क्ष + नी_२ = २ क्ष नी \text{ (क्षारातु नीरेय, सामान्य लवण)}$$
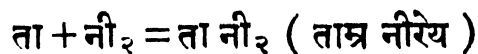
नेपाली और अंजन जैसे धात्वाभ तत्त्वों का क्षोद यदि नीरजी वाले पात्र में डाल दिया जाए तो उसमें से झटपट ज्वालाएँ निकलने लगती हैं।

(२) अधातुओं पर नीरजी की क्रिया—साधारण अवस्थाओं में भास्वर नीरजी के अन्दर जलने लगता है। किन्तु यदि भास्वर और नीरजी दोनों ही संपूर्णतया शुष्क हों तो भास्वर नहीं जलता। नीरजी भास्वर के साथ मिल कर नीचे दिये समीकार के अनुसार भास्वर पञ्चनीरेय (phosphorus pentachloride) बनाती है—

$$भ_४ + १० नी_२ = ४ भ नी_५$$
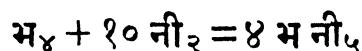
कई तत्त्वों के नीरेय नीरजी के साथ सीधे मिल कर नहीं बनते, उन्हें इस वाति के प्रवाह में तपाना पड़ता है।

(३) उद्जन पर नीरजी की क्रिया—नीरजी उद्जन के साथ सरलता से मिल कर उद्नीरिक अम्ल बनाती है। उद्जन और नीरजी के मिश्र को धूप में रखने से दोनों वातियाँ संयुक्त हो जाती हैं। इन दोनों के मिश्र के पास अग्नि ज्वाला ले जाने से इनका ऐसा ही उत्स्फोटात्मक (explosive) संयोजन हो जाता है। उद्जन नीरजी में जल कर उद्नीरिक अम्ल बनाने लगती है।

उद्जन के साथ इसकी अत्यधिक बन्धुता होने के कारण यह कई संयोगों में से उद्जन का अपहरण कर लेती है। उद्जन और प्रांगार के कई संयोग नीरजी में जलने लगते हैं और उद्नीरिक अम्ल बन कर प्रांगार का सूक्ष्म क्षोद नीचे बैठ जाता है। उद्जन शुल्बेय के विलयन में से नीरजी को ले जाने से नीचे लिखे समीकार के अनुसार नीरजी और उद्जन संयुक्त हो जाएँगी और शुल्बारि अलग हो जाएगा—

$$नी_२ + उ_२ शु = २ उ नी + शु$$
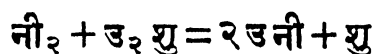
(४) पानी पर नीरजी की क्रिया—नीरजी और पानी का सम्बन्ध बहुत महत्त्व रखता है क्योंकि नीरजी का श्वेतन-कर्तृत्व मुख्यतः इसीपर निर्भर है। जब नीरजी को पानी में ले जाया जाए तब उद्नीरिक और उद्नीर्य अम्ल, उ नी ज, (hydrochlorous acid) दोनों ही बनते हैं—

$$नी_२ + उ_२ ज = उ नी + उ नी ज$$
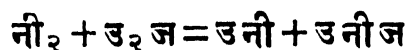
किन्तु उद्नीर्य अम्ल (उ नी ज) बहुत अस्थायी संयोग है जो कि अन्धेरे में धीरे धीरे विच्छिन्न होता है, किन्तु धूप में बहुत क्षिप्रता से विच्छिन्न हो कर उद्नीरक अम्ल और जारक बना देता है। एवं—

$$२ उ नी ज = २ उ नी + ज_२$$
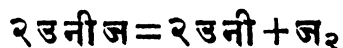
पानी में नीरजी का प्रवाह ले जाने से विलयन बन जाता है जिसे 'नीरजी-जल' (chlorine

water) कहते हैं। इसका रंग पीला होता है और इसमें से नीरजी की तीव्र गन्ध आती है। यह शेवल का श्वेतन कर देता है। यदि इस जल को कूपी में भली भाँति मूँद कर धूप में रख दिया जाए तो इसमें से वाति के बुलबुले उठेंगे और धीरे धीरे विलयन का रंग उड़ जाएगा। कूपी में इकट्ठी हुई हुई वाति में दहकती हुई लकड़ी ले जाने से उसमें ज्वालाएँ उठने लगेंगी और विलयन नीले शेवल को रक्त बना देगा। अतः ज्ञात हुआ कि सीधा धूप के सामने रखने से नीरजी और पानी की परस्पर प्रतिक्रिया उदनीरिक अम्ल और जारक बनाती है। एवं—

$$२ उ_२ ज + २ नी_२ = ४ उ नी + ज_२$$
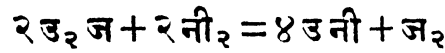
नीरजी-जल अंधेरे में रखने से सुरक्षित रहता है। यदि पानी को $0°$ श. के लगभग ठण्डा कर के उसे नीरजी से अनुविद्ध कर दें तो उन दोनोंके संयोग के स्फट बन जाएँगे। यदि इन स्फटों को दृढ़ नाल में संमुद्रित (sealed) कर के तपाएँ तो स्फटों का विबन्धन हो कर तरल नीरजी बन जाएगी।

यदि नीरजी और भाप का मिश्र रक्तोष्ण नाल में से ले जाया जाए तो भी इनकी प्रतिक्रिया से उदनीरिक अम्ल बन जाता है।

शुष्क नीरजी श्वेतन नहीं करती। यदि पक्के रंग वाले कपड़े को गीला कर के नीरजी के पात्र में डाल दिया जाए तो शीघ्र ही उसका रंग उड़ने लगेगा। संभव है पहले पानी के साथ प्रतिक्रिया से नीरजी से उदनीर्य अम्ल बनता हो और फिर अम्ल के विबन्धन से जायमान अथवा परमाण्विक जारक उन्मुक्त हो कर रंजक पदार्थ का रंगहीन जारेय बना देती हो। नीरजी के साथ मिलने से जिन पदार्थों का रंगहीन संयोग नहीं बनता नीरजी उनका श्वेतन नहीं कर सकती। प्रांगार आदि रंजक पदार्थों पर इसकी कोई क्रिया नहीं होती इसीलिये इससे मुद्रण-मसी (printer's ink) का कुछ नहीं बिगड़ता। कौशेय (silk) और तृण (straw) के श्वेतन करने के लिये नीरजी का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि यह उनके तन्तुओं (fabric) का नाश कर देती है।

(५) नीरजी उत्तम जारयित्री है—वायु की जारक गीले रंजक पदार्थ का श्वेतन नहीं करती किन्तु नीरजी द्वारा उन्मुक्त जारक श्वेतन कर देती है क्योंकि वह जायमान अथवा परमाण्विक अवस्था में निकलती है और निकलते ही रंजक पदार्थ से संयुक्त हो कर उसका जारेय बना देती है। एवं—

$$उ_२ ज + नी = २ उ नी + ज \text{ (परमाण्विक)}$$
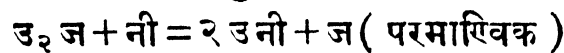
जारण के लिये नीरजी को अधिकतर किसी क्षारक के विलयन के साथ प्रयोग में लाते हैं। यदि दहातु नीरेय के मन्द विलयन में सीस एकजारेय निलम्बित (suspended) किया जाए और उस तरल में से नीरजी को ले जाया जाए तो हलके पीले रंग का जारेय न्यबरक्त (puce coloured) द्विजारेय में परिणत हो जाता है। एवं—

$$सी ज + ज = सी ज_२$$
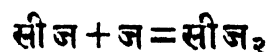
(६) क्षारकों पर नीरजी की क्रिया—(क) दहातु उदजारेय के ठण्डे विलयन में नीरजी मिलाने से दहातु नीरेय और दहातु उपनीरित (hypochlorite) का मिश्र बन जाएगा। एवं—

$$६ द ज उ + ३ नी_२ = ३ द नी + ३ द नी ज + ३ उ_२ ज$$
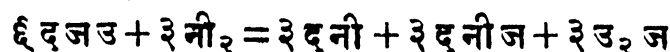
(ख) दहातु उदजारेय के उष्ण विलयन में निरजी मिलाने से दहातु नीरेय और दहातु नीरीय का

मिश्र बनता है। दहातु नीरीय को स्फटन द्वारा अलग कर सकते हैं। तब विलयन में पीछे विलेयतर जारेय रह जाएगा। प्रतिक्रिया का समीकार यह है—

$$६ द ज उ + ३ नी_२ = ५ द नी + द नी ज_३ + ३ उ_२ ज$$
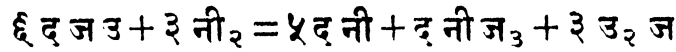
दहातु और चूर्णातु के उदजारेयों पर भी नीरजी की ऐसी ही क्रिया होती है।

यदि सीस एकजारेय के सदृश कोई अन्य पदार्थ भी साथ हो तो उपनीरित अथवा नीरीय की जारक से उसका जारण हो जाता है। इस प्रकार शुल्बारि का जारण कर के शुल्बारिक अम्ल बनाया जा सकता है।

(७) श्वेतन क्षोद (bleaching powder) अथवा चूने का नीरेय–नीरजी को ठण्डे शान्त चूर्णाक, चू (ज उ)$_२$, (चूर्णातु उदजारेय) के स्तरों पर से ले जाने से श्वेतन क्षोद बनता है। क्रिया वैसी ही होती है जैसी नीरजी की क्षारातु उदजारेय के ठण्डे विलयन पर होती है, किन्तु चूर्णातु नीरेय और चूर्णातु उपनीरित के मिश्र के स्थान पर इन दोनों का संयोग बन जाता है जिसका सूत्र है $चू \left< \begin{array}{l} नी \\ ज नी \end{array} \right.$। जब पानी से इसका साधन किया जाता है तो विबन्धन हो कर इसके चूर्णातु नीरेय, चू नी$_२$, और चूर्णातु उपनीरित, चू (ज नी)$_२$, बन जाते हैं। श्वेतन क्षोद में अविकृत (unchanged) शान्त चूर्णाक भी होता है जो पानी डालने से नहीं घुलता, अप्रविलीन ही रहता है। यदि शान्त चूर्णाक के ऊपर से नीरजी को ले जाते हुए चूर्णाक उष्ण हो जाए तो चूर्णातु नीरीय, चू (नी जी$_३$)$_२$, और चूर्णातु नीरेय बनते हैं।

नीरीय नीरिक अम्ल, उ नी ज$_३$, (chloric acid) के लवण होते हैं और उपनीरित उपनीर्य अम्ल, उ नी ज, (hypochlorous acid) के।

श्वेतन क्षोद में से नीरजी सरलता से उत्पन्न हो जाती है, इसीलिये इसे श्वेतनकर्त्ता और रोगाणुघ्न के रूप में बरता जाता है। इसमें थोड़ा सा मन्द अम्ल मिलाना पड़ता है जिससे शीत में नीरजी उत्पन्न होने लगती है। इसपर उदनीरिक अम्ल की क्रिया का समीकार यह है—

$$२ उ नी + चू नी_२ ज = चू नी_२ + उ_२ ज + नी_२$$
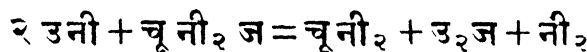
श्वेतन क्षोद बड़ा उपयोगी जारयिता है। इसके विलयन को किसी लोहक लवण के विलयन में मिलाने से उष्ण करने पर जलीयित लोहक द्विजारेय (hydrated manganese dioxide) निस्सादित हो जाएगा। पहले चूर्णातु उदनीरेय की क्रिया से लोहक जारेय बना और फिर विलयन में उपस्थित उपनीरित द्वारा उसका जारण हो गया॥

बीसवाँ अध्याय

उदनीरिक अम्ल—लवणजन (halogens)

उदनीरिक अम्ल, उ नी—यह पदार्थ जिसके विलयन को बहुधा 'विडीयिक अम्ल अथवा लवण-निषेचन' (muriatic acid or spirit of salt) कहते हैं, नीरजी का एक बड़ा महत्त्वशाली संयोग है क्योंकि हम देख चुके हैं यह नीरजी और उदजन के सीधे संयोग से अथवा कई संयोगों पर नीरजी की क्रिया से बनता है।

प्रयोगशाला के लिये उदनीरिक अम्ल की प्राप्ति—क्षारातु नीरेय को शुल्बारिक अम्ल के साथ

तपाने से उदनीरिक अम्ल बनता है। प्रतिक्रिया दुहरी होती है। पहले अम्ल क्षारातु शुल्बीय अथवा क्षारातु उदजन शुल्बीय (acid sodium sulphate or sodium hydrogen sulphate) बनता है। एवं—

$$उ_२ शु ज_४ + क्ष नी = उ नी + क्ष उ शु ज_४$$
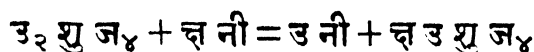
किन्तु ताप बहुत अधिक बढ़ा देने से उसके ऋजु क्षारातु शुल्बीय और उदनीरिक अम्ल बन जाते हैं। इस रीति से बनाने में शुल्बारिक अम्ल की मात्रा आधी लगती है। एवं—

$$उ_२ शु ज_४ + २ क्ष नी = २ उ नी + क्ष_२ शु ज_४$$
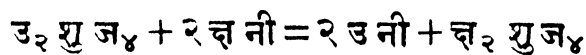
धातुओं के अन्य नीरेयों को शुल्बारिक अम्ल के साथ तपाने से भी उदनीरिक अम्ल बन जाता है।

संपरीक्षा ६७—पलिघ में शैल लवण (rock salt) डालो और उसमें मन्द शुल्बारिक अम्ल जिसमें आधा पानी मिला हो डाल दो। पलिघ के मुख में अभय-निवाप (safety funnel) और नीचे को मुड़ी हुई प्रदान-नाल लगा दो। मिश्र को तपा कर वाति को अधो-निरसन (downward displacement) द्वारा इकट्ठी कर लो।

उदनीरिक अम्ल (वाति) अथवा उदजन नीरेय के गुण—यह एक रंगहीन वाति है जिसकी गन्ध तीखी (pungent) और स्वाद खट्टा होता है। गीली वायु के साथ मिलने से इसमें से धुँधला धुआँ उठने लगता है। यह गीले नीले शेवल को रक्त बना देती है।

यह वाति स्वयं भी वायु में नहीं जलती और न ही इसमें कोई अन्य पदार्थ जल सकता है अर्थात् यह दहन की पोषक नहीं। जलती हुई बत्ती इसमें ले जाने से उसकी ज्वाला बुझ जाती है।

यह वायु से १·२६ गुणा भारी होती है। उदजन की अपेक्षा इसकी घनता १८·२५ है इसलिये इसका व्यूहाण्विक भार ३६·५ है।

१ वायुमण्डल निपीड में यह −८४° श. ताप पर संघनित होकर तरल बन जाती है किन्तु २८ वा. निपीड में ०°श. पर ही इसका तरलन (liquefaction) हो जाता है। तरल रंगहीन होता है। यदि इस तरल में पानी का अंश सर्वथा न हो तो यह बहुत अक्रिय (inactive) होता है और इसकी क्रिया धातुओं पर नहीं होती। यह −८३·१° श. पर उबलने लगता है और −११३° श. पर सान्द्र बन जाता है। यह तरल विद्युत् का संवाहक नहीं होता।

उदनीरिक अम्ल पानी में इतना अधिक विलेय है कि पानी की एक परिमा में इसकी ४५० परिमाएँ प्रविलीन हो जाती हैं। विलयन में जितनी वाति अधिक होगी उतनी ही उसकी घनता भी अधिक होगी। विलयन में नीला शेवल रक्त हो जाता है।

उदनीरिक अम्ल का विलयन जिसे साधारणतया उदनीरिक अम्ल कहते हैं—वाति को पानी में ले जाने से यह विलयन बड़ी सरलता से बन जाता है। ज्यों ज्यों वाति घुलती है त्यों त्यों अधिकाधिक ऊष्मा का उद्भव होता है। तीव्र विलयन प्राप्त करने के लिये विलयन को ठण्डा करना आवश्यक होता है क्योंकि उष्ण तरल में वातियाँ अधिक प्रविलीन नहीं होतीं।

उदनीरिक अम्ल का शुद्ध विलयन रंगहीन सा और स्वाद में खट्टा होता है और उद्वाष्पन होने से अवशेष नहीं छोड़ता। यदि संकेन्द्रित विलयन का उद्वाष्पन किया जाए तो जब तक उसमें २०%

अम्ल शेष है तब तक उसके निबन्ध में परिवर्तन होता रहेगा, किन्तु उसके पीछे ११०° श. पर तरल का आसवन होने लगेगा और उसके निबन्ध में कोई परिवर्तन नहीं होगा। यदि मन्द (weak) विलयन का आसवन किया जाए तो भी जब तक वह उपर्युक्त निबन्ध तक न पहुँच जाए विलयन संकेन्द्रित होता रहेगा। वायुमण्डलिक निपीड के परिवर्तन से निबन्ध में भी परिवर्तन हो जाता है। वाणिजिक (commercial) उदनीरिक अम्ल का रंग पीला होता है और उसमें अयसिक और नेपाली नीरेय, शुल्बारिक अम्ल और स्वतन्त्र नीरजी मिले होते हैं। अम्ल को मन्द कर के उसका आसवन करने से ये अशुद्धताएँ दूर की जा सकती हैं। उदनीरिक अम्ल के विलयन की क्रिया से कई धातुओं के धात्विक नीरेय और उदजन बन जाते हैं।

वाति अवस्था में यदि यह अम्ल शुल्बारिक अम्ल में से ले जा कर सुखाया जाए और फिर तपते हुए क्षारातु पर से ले जाया जाए तो सामान्य लवण (क्षारातु नीरेय) और उदजन बना देता है। तपते हुए लोहक द्विजारेय में से ले जाने से यह नीरजी, पानी और लोहक नीरेय बनाता है।

परिमा के अनुसार उदनीरिक अम्ल (वाति) का निबन्ध—उदनीरिक अम्ल के जलीय (aqueous) विलयन का विद्युद्दंशन करने से उद्द्वार से नीरजी का उद्भव होता है और निद्वार से उदजन का। पानी में नीरजी अत्यधिक विलेय होने के कारण विबन्धन में जो कठिनाइयाँ होती हैं उनको रोकने के लिये एक विशेष प्रकार का साधित्र प्रयोग में लाया जाता है। विबन्धन हो जाने पर दोनों वातियों की परिमा एकसी होगी। संपरीक्षा से यह भी दिखाया जा सकता है कि दोनों वातियाँ समान परिमा में संयुक्त होती हैं। उदजन और नीरजी की एक एक परिमा के मिश्र का विद्युत् द्वारा उत्स्फोटन करने से जो उदनीरिक अम्ल बनेगा उसकी परिमा २ होगी। अतः—

$$२ उनी = उ_२ + नी_२$$

उदनीरिक अम्ल का व्यूहाणु-सूत्र उनी है। नीरजी उदजन से ३५·५ गुणा भारी है। अतः उदनीरिक अम्ल का व्यूहाण्विक भार ३६·५ है।

उदनीरिक अम्ल के लवण (अर्थात् नीरेय)—कई धातुओं पर उदनीरिक अम्ल की क्रिया होने से अम्ल की उदजन निकल जाती है और उसका स्थान धातु ले लेती है जिससे धातु का नीरेय बन जाता है। एकपैठिक (monobasic) होने के कारण यह अम्ल केवल ऋजु लवण ही बना सकता है, यथा क्षारातु उदजारेय में चाहे हम कितना ही अधिक उदनीरिक अम्ल क्यों न डालते जाएँ उससे केवल एक ही ऋजु लवण क्षारातु नीरेय, क्षनी, बनेगा।

नीरेय बनाने की रीतियाँ—नीरेय निम्नलिखित रीतियों से बन सकते हैं—

(१) तत्त्व और नीरजी के सीधे संयोजन से, जैसे क्षारातु और भास्वर के नीरेय। जब नाल में तपते हुए अयस् पर से नीरजी का प्रवाह ले जाया जाए तब अजल अयसिक नीरेय, $अनी_३$ (anhydrous ferric chloride), के स्फट बन जाएँगे।

(२) उदनीरिक अम्ल की कुछ धातुओं पर क्रिया से, जैसे कुप्यातु से कुप्यातु नीरेय। एवं—

$$कु + २ उनी = कुनी_२ + उ_२$$
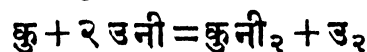
पारे, सोने और महातु पर इस अम्ल की कोई क्रिया नहीं होती।

(३) उदनीरिक अम्ल की पीठों (अथवा प्रांगारीयों) पर क्रिया से, यथा ताम्र जारेय अथवा

प्रांगारीय का उदनीरिक अम्ल से साधन करने से ताम्र नीरेय, तानी$_2$, बन जाता है। एवं—

ता (प्रज$_3$) + २ उनी = तानी + प्रज$_2$ + उ$_2$ज
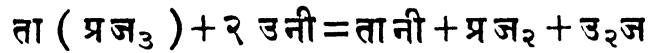
(४) द्विगुण विबन्धन द्वारा अविलेय नीरेय बनाए जा सकते हैं, यथा रजत नीरेय। तरल में से अविलेय नीरेय, रनी, अलग हो कर पात्र के नीचे बैठ जाता है। दो विलयनों की रसायनिक क्रिया से पदार्थों को अविलेय रूप में अलग करने की विधा को 'निस्सादन' (precipitation) कहते हैं। रजत भूयीय और उदनीरिक अम्ल से रजत नीरेय बनाने का समीकार यह है—

रभूज$_3$ (रजत भूयीय) + उनी = रनी (रजत नीरेय) + उभूज$_3$
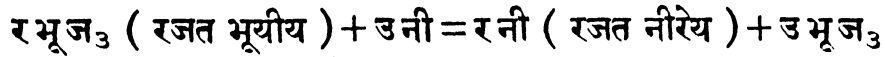
नीरेयों की परीक्षा—(१) नीरेय को शुल्बारिक अम्ल के साथ तपाने से उदनीरिक अम्ल का उद्भव होने लगता है। इसकी पहचान गन्ध से और इसके अन्दर तिक्ताति ले जाने से हो सकती है। तिक्ताति ले जाने से उसमें से श्वेत धूम उठने लगेगा।

(२) नीरेय को शुल्बारिक अम्ल और लोहक द्विजारेय के साथ तपाने से नीरजी का उद्भव होता है। नीरजी की पहचान इसको गन्ध तथा श्वेतन क्रिया से हो सकती है।

(३) विलेय नीरेयों में रजत भूयीय (silver nitrate) डालने से श्वेत रंग का रजत नीरेय निस्सादित हो जाएगा। यह निस्साद मन्द भूयिक अम्ल में अविलेय है किन्तु तिक्ताति में विलेय है।

लवणजन (halogens) और उनके संयोग

लवणजन—तरस्विनी (fluorine), नीरजी, दुराघ्री (bromine), और जम्बुकी इन चार तत्त्वों का एक पृथक् ही वर्ग है जिसको 'लवण-जन' कहते हैं, क्योंकि ये तत्त्व क्षारातु से मिल कर लवण बनाते हैं जो समुद्र लवण से मिलते जुलते हैं।

तरस्वेय, नीरेय, दुरेय और जम्बेय इन सब लवणों का एक नाम 'लवणेय' (halides) रखा गया है। इस वर्ग के तत्त्वों की आपसमें बहुत बड़ी समानता है। इनके परमाणु-भार और गुण भी उत्तरोत्तर क्रम से बढ़ते हुए हैं।

लवणजनों के गुणों की समानता

(१) सभी लवणजन अधातु हैं और प्रकृति में स्वतन्त्र अवस्था में नहीं पाए जाते।

(२) सभी एकसंयुज हैं।

(३) सभी दुर्गन्धि-युक्त हैं और सभी का कोई न कोई रंग होता है।

(४) उदजन के साथ मिल कर सभी के अम्ल बन जाते हैं, यथा उदतरस्विक (उत), उदनीरिक (उनी), उददुरिक (उदु), और उदजम्बिक अम्ल (उजं)।

(५) धातुओं के साथ सीधे मिल कर ये सभी तत्त्व लवण बनाते हैं, यथा दहातु तरस्वेय, दहातु नीरेय, दहातु दुरेय और दहातु जम्बेय।

(६) इनमें से प्रत्येक तत्त्व धूप में पानी का विबन्धन कर देता है। जम्बुकी द्वारा यह क्रिया बहुत धीरे होती है।

(७) इन सब की प्राप्ति एक जैसी विधाओं से हो सकती है।

इनमें से प्रत्येक तत्त्व को उसके अम्ल अथवा लवण से उन्हीं रीतियों द्वारा अलग किया जा

सकता है जिनसे नीरजी अलग होती है। नीरजी की उत्पत्ति के समीकारों में केवल प्रतीकों का परिवर्तन कर देने से इन सभी तत्त्वों की उत्पत्ति के समीकार बन जाते हैं, यथा दुराघ्री का समीकार ऐसे बनता है—

$$\text{लोज}_2 + ४\text{उदु} = \text{लोदु}_2 + २\text{उ}_2\text{ज} + \text{दु}_2$$
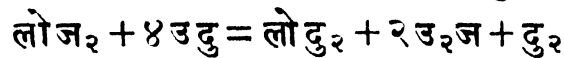
नीरेयों को बनाने वाली चारों रीतियों से उदतरस्विक, उददुरिक और उदजम्बिक अम्लों के लवण भी बनाए जा सकते हैं।

इन सभी तत्त्वों की क्षारकों पर क्रिया होने से एक जैसे मिलते जुलते संयोग बनते हैं। ठण्डे क्षारकों में मिलाने से दुराघ्री से दुरेय और उपदुरित (hypobromite) और जम्बुकी से जम्बेय और उपजम्बित (hypoiodite) बनते हैं। जब दुराघ्री की क्रिया उष्ण क्षारकों पर होती है तब एक प्रकार के दुरीय (bromate) और दुरेय (bromide) बनते हैं; और जब जम्बुकी की क्रिया होती है तब जम्बीय (iodate) और जम्बेय (iodide) । इन तत्त्वों की क्रियाओं के समीकार और इनसे बनने वाले संयोगों के सूत्र सब एकसे ही हैं, यथा दहातु जम्बीय का सूत्र दजंज_3 है।

यदि दहातु के नीरीयों, दुरीयों और जम्बीयों को तपाया जाए तो प्रत्येक से -एय संयोग तथा जारक उत्पन्न होंगे। एवं—

$$२\text{ददुज}_3 = २\text{ददु} + ३\,\text{ज}_2$$
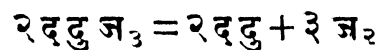
रजत के नीरेय, दुरेय और जम्बेय सभी पानी में अविलेय हैं। यही कारण है कि इन सब तत्त्वों की परीक्षा के लिये रजत भूयीय का प्रयोग किया जाता है।

दुराघ्री—दुराघ्री असित रक्त (dark red) रंग का भारी तरल होता है जिसकी घनता ३·१०२ है। इसमें से नीरजी से भी अधिक दुर्गन्ध आती है और इसके बाष्प गले और आँखों को बहुत व्याकुल करते हैं। यह मुख्यत: क्षारातु दुरेय अथवा भ्राजातु दुरेय के रूप में पाई जाती है।

रसायनिक क्रिया में दुराघ्री नीरजी से बहुत कुछ मिलती जुलती है किन्तु यह उतनी क्रियाशील नहीं। यह अधिकांश उन्हीं तत्त्वों के साथ संयुक्त हो जाती है जिनके साथ नीरजी होती है किन्तु उतने वेग के साथ नहीं होती। उदजन के साथ यह मिल तो जाती है किन्तु सरलता से नहीं। इनके मिश्र का उज्ज्वालन (ignite) करना पड़ता है। उदजन के कई संयोगों में से यह उसे अलग भी कर देती है। इसकी श्वेतन क्रिया नीरजी की अपेक्षा बहुत मन्थर है। पानी में इसका विलयन प्राय: जारयिता का काम भी दे देता है।

दुराघ्री मुख्यत: दुरेय बनाने के प्रयोग में आती है जो कि भाचित्रण (photography) और भैषज्य (medicine) में बहुत काम आते हैं।

यदि किसी विलेय दुरेय के विलयन में नीरजी डाल दें तो नीरेय बनकर दुराघ्री उन्मुक्त हो जाएगी। एवं—

$$२\text{ददु} + \text{नी}_2 = २\text{दनी} + \text{दु}_2$$
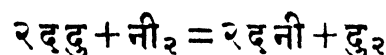
यदि इस मिश्र में प्रांगार द्विशुल्बेय डाल दें तो दुराघ्री प्रविलीन हो जाएगी और मिश्र का रंग आरक्त (reddish) हो जाएगा। दूसरी ओर नीरीय में दुराघ्री मिलाने से नीरजी उन्मुक्त हो जाएगी और दुराघ्री उसका स्थान लेकर दुरीय (bromate) बना देगी। दुराघ्री का जारेय नहीं बनता, नीरजी और जम्बुकी के बन जाते हैं।

जम्बुकी—यह आमनी से काले रंग का स्फटात्मक सान्द्र है। इसके बाष्प बड़ी शीघ्रता से बन जाते हैं जो नीललोहित (violet) रंग के होते हैं और संघनित हो कर नन्हें नन्हें स्फटों का रूप धारण कर लेते हैं। समुद्र के पानी में जम्बुकी जम्बेय के रूप में मिलती है और उपचार (Chile saltpetre) में जम्बीय के रूप में। जम्बेय में डालने से नीरजी और दुराघ्री दोनों ही जम्बुकी का स्थान ले लेती है। एवं—

$$२ द जं + दु_२ = २ द दु + जं_२$$
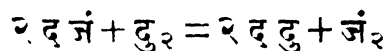
उन्मुक्त जम्बुकी को प्रांगार द्विगुल्बेय ग्रहण कर लेता है और उसका नीललोहित रंग का विलयन बन जाता है। दूसरी ओर दुरीयों और नीरीयों में जम्बुकी दुराघ्री और नीरजी का स्थान ले लेती है।

जम्बुकी और उदजन आपसमें तब तक नहीं संयुक्त होतीं जब तक इन्हें अत्यधिक न तपाया जाए। उदजम्बिक अम्ल, उ जं, (hydriodic acid) का विबन्धन बड़ी सरलता से उदजन और जम्बुकी में हो जाता है। स्वतन्त्र जम्बुकी मण्ड-लेपी (starch paste) के साथ मिल कर गहरे नीले रंग का संयोग बना देती है। उसका यह एक विशेष गुण है।

यतः संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से उदजम्बिक अम्ल का सरलता से जारण होकर जम्बुकी और पानी बन जाते हैं इसलिये उदजम्बिक अम्ल को प्रायः रक्त भास्वर, जम्बुकी और पानी की परस्पर प्रतिक्रिया से बनाया जाता है। पहले भास्वर जम्बेय बनता है और फिर उसकी प्रतिक्रिया निम्नलिखित समीकार के अनुसार होती है—

$भ जं_३ + ३ उ_२ ज = ३ उ जं + भ (ज उ)_३$ (भास्त्य अम्ल phosphorous acid)
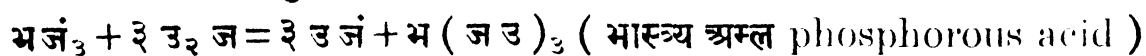
उदुदुरिक अम्ल (hydrobromic acid) भी इसी भाँति रक्त भास्वर, दुराघ्री और पानी से बनाया जाता है॥

इक्कीसवाँ अध्याय

दहन (combustion) और ज्वाला (flame)

दहन—शून्यक (vacuum) में कोई वस्तु नहीं जल सकती। जब वायु में पदार्थ जलते हैं तब वायु में से जारक उनके साथ मिल जाती है। अतः जारण 'दहन' ही है। स्थूलरूप से 'दहन' उस रसायनिक क्रिया को कहते हैं जिसके साथ साथ प्रकाश और ऊष्मा का उद्भव हो। कई बार जारण इतनी मन्थर गति से होता है कि न तो प्रकाश दिखाई देता है और न ही ऊष्मा का अनुभव होता है। इसको 'मन्थर दहन' कहते हैं, जैसे उद्भिद्-पदार्थों (vegetable matter) का गलना सड़ना (decay), लोहे को मण्डूर (rust) लगना आदि। जब सिक्थ-वर्ती (candle) वायु में जलती है तब उसका दहन होता है, किन्तु जब महातु तन्तु तप कर श्वेत हो जाता है तब यद्यपि प्रकाश और ऊष्मा का उद्भव होता है, तथापि कोई रसायनिक क्रिया नहीं होती। अतः इसे तन्तु का दहन नहीं कहेंगे 'उत्तापदीप्ति' (incandescence) कहेंगे।

कई पदार्थों को हम 'दाह्य' (combustible) और कइयों को 'दहन का पोषक' (supporter

of combustion) कहते हैं। दहन का पोषक होने से अभिप्राय यह है कि उस पदार्थ के वायु-मण्डल में दाह्य पदार्थ की ज्वाला जलती रहती है, बुझती नहीं। किन्तु 'दाह्य' और 'दहन का पोषक' शब्द परस्पर सापेक्ष हैं, दो पदार्थों के वास्तविक भेद के द्योतक नहीं हैं, क्योंकि यदि नीरजी को उद्जन के वायुमण्डल में जलाया जाए तो नीरजी दाह्य और उद्जन दहन की पोषक होगी और यदि उद्जन को नीरजी के वायुमण्डल में जलाया जाए तो उद्जन दाह्य और नीरजी दहन की पोषक कहलाएगी। साधारणतया जो पदार्थ वायु अथवा जारक में जल सकें उनको 'दाह्य' कहते हैं।

जारण और दहन की ऊष्मा (heat of oxidation and combustion)—पदार्थों का मन्थर जारण भी हो सकता है और दहन भी। भास्वर की डली को ठण्डी कोठड़ी के अन्दर यदि वायु में खुली रख दिया जाए तो धीरे धीरे सारी की सारी डली धुआँ बन कर उड़ जाएगी। वह धुआँ भास्वर का जारेय होगा। यदि उस डली को जलती हुई दियासलाई लगाई जाए तो वह तीव्रता से जलने लगेगी और उसमें से बहुत अधिक ऊष्मा उत्पन्न होगी। जो धूम उठेगा वह भी भास्वर का जारेय होगा। मन्थर जारण और दहन दोनों का परिणाम एक ही हुआ। देखने में भेद केवल निकलती हुई ऊष्मा की मात्रा में ही था किन्तु सूक्ष्मरूप से संपरीक्षाओं से पता लगता है कि ऊष्मा का उद्भव भी दोनों अवस्थाओं में सर्वथा एकसा हुआ। पहली अवस्था में क्रिया इतनी धीरे हुई कि जितनी ऊष्मा उत्पन्न होती थी उसका साथ ही साथ अपहरण हो जाता था। इसलिये वह दिखाई नहीं दी। दूसरी अवस्था में वह इतनी क्षिप्रता से हुई कि उसका स्पष्ट अनुभव होने लगा। यह बात सभी पदार्थों के दहन के विषय में सत्य है। जब किसी पदार्थ को नियत मात्रा में ले कर जलाया जाता है तब क्रिया चाहे मन्थर हो चाहे क्षिप्र उत्पद्यमान ऊष्मा की समस्त मात्रा दोनोंमें समान होती है, किन्तु इसमें आवश्यक यह है कि दोनों दशाओं में रसायनिक प्रतिक्रियाएँ एकसी हुई हों। वास्तव में प्रत्येक रसायनिक क्रिया का ऊष्मा के परिवर्तन के साथ निश्चित रूप से संबन्ध है।

एक धान्य पानी के ताप को १° श. बढ़ा देने में जितनी ऊष्मा की आवश्यकता होती है उसे ऊष्मा मापने का एकक (unit) माना गया है। इस एकक को 'उष' (calorie) कहते हैं। एक धान्य अंगार को जला कर प्रांगार द्विजारेय में परिणत कर देने में ऊष्मा के ८०८० उष व्यय होते हैं।

दहन-ताप (temperature of combustion)—जिस ताप पर पदार्थ का दहन होता है उसे 'दहन-ताप' कहते हैं, अर्थात् यह जलते हुए पदार्थों का ताप होता है। दहन की चण्डता के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है। जब लोहे को जारक में जलाया जाता है तब ऊष्मा क्षिप्रता से उत्पन्न होती है और उस ऊष्मा का कुछ भाग लोहे के ताप को बढ़ा देता है क्योंकि जब तक ताप न बढ़े तब तक जितनी क्षिप्रता से ऊष्मा उत्पन्न होती है उतनी क्षिप्रता से उसका अपहरण नहीं होता। किन्तु जब लोहे का मन्थर जारण होता है तो जिस धीमी गति से ऊष्मा की उत्पत्ति होती है उसी गति से उसका अपहरण होता रहता है। इसलिये लोहे का ताप नहीं बढ़ता। दहन का ताप भिन्न परिस्थितियों में भिन्न होता है। उद्जन शुद्ध जारक में जलने की अपेक्षा वायु में बहुत थोड़े ताप में जलती है क्योंकि ऊष्मा का कुछ भाग भूयाति ले लेती है जिससे ज्वाला का ताप घट जाता है।

उत्तापन-ताप (temperature of ignition)—ऊष्मा पहुँचा कर जब तक पदार्थ का ताप बढ़ा न दिया जाए तब तक उसे आग नहीं लगती। जिस ताप पर दहन आरम्भ हो उसे उत्तापन-

ताप अथवा 'उत्तापाङ्क' (ignition point) कहते हैं। भिन्न भिन्न पदार्थों का उत्तापांक भिन्न भिन्न होता है। भास्वर को जलाने के लिये केवल हाथ की उष्णता पर्याप्त है।

स्वतोदहन (spontaneous combustion) और उत्स्फोटन (explosion)—ताप बढ़ा देने से पदार्थों के जारण की गति भी तीव्र हो जाती है। अतः जारण की परिस्थितियाँ यदि ऐसी हों कि उत्पद्यमान ऊष्मा कहीं से निकल न सके तो ताप बढ़ जाएगा और जारण की गति भी तीव्र हो जाएगी। तीव्र जारण से ऊष्मा का उद्भव और भी अधिक हो जाएगा जिससे ताप में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाएगी यहाँ तक कि जारण क्षिप्र (active) दहन में परिणत हो जाएगा। इस प्रकार के दहन को 'स्वतोदहन' कहते हैं। स्वतोदहन के लिये दो बातें आवश्यक हैं—एक तो पदार्थ में मन्थर जारण (अर्थात् दहन) की उपस्थिति और दूसरे ऊष्मा का विसंवाहन (insulation) अर्थात् भली भाँति मुँद जाना। इसी कारण से ढेर में पड़े हुए अथवा नावोदर (hold of a ship) में रखे हुए पत्थर के कोयले को कई बार अपने आप ही आग लग जाती है। कई पदार्थ ऐसे भी होते हैं जिन्हें साधारण ताप में वायु के संस्पर्श से आग लग जाती है।

ऊष्मा के योग से एक बार दहन आरम्भ हो जाने से पदार्थ जलता रहता है क्योंकि जलने से उत्पद्यमान ऊष्मा अपने आसपास के भाग की ऊष्मा को उत्तापांक तक बढ़ाती जाती है। यदि ऊष्मा पदार्थ के सारे पुञ्ज के ताप को एक साथ उत्तापांक तक बढ़ा दे तो पुञ्ज के एक साथ क्षिप्रता से दहन से उत्स्फोटन (explosion) हो जाता है।

ज्वाला (flame)—जब दह्यमान पदार्थ वाति अवस्था में होते हैं तब ज्वाला उत्पन्न होती है। ज्वालाएँ दो प्रकार की होती हैं—१. चकासिनी (luminous) और २. अचकासिनी (non-luminous)।

वायु में जलती हुई उदजन की ज्वाला अचकासिनी होती है और सिक्थ-वर्ती की चकासिनी।

उदजन की ज्वाला की संरचना (structure) सरल होती है। भीतर अदग्ध उदजन का कोर (cone) होता है और उसके बाहर चारों ओर जलती हुई वाति की नीली ज्वाला। बाहर की ज्वाला में ऊष्मा और प्रकाश के उद्भव के साथ साथ रसायनिक क्रिया (२ $उ_२$ + $ज_२$ = २ $उ_२ज$) द्वारा पानी बनता है। यदि उदजन की ज्वाला पर गत्ते को क्षिप्रता से दबा कर तुरंत उठा लिया जाए तो गत्ते पर काला वलय (ring) बन जाएगा। यह जल जाने का चिह्न है जो वाति के जलते हुए बाह्य भाग से बना है।

संयुक्त पदार्थों की ज्वाला प्रायः अधिक जटिल (complex) होती है, यथा सिक्थ-वर्ती की ज्वाला। यह ज्वाला वायु में जलती हुई अंगार वाति की ज्वाला के सदृश होती है। ध्यान से देखने से ज्ञात होगा कि इस ज्वाला के तीन भाग हैं। सबसे अन्दर अदग्ध-वाति-कोर (cone of unburnt gases) है जिसके चारों ओर लाट का चकासी भाग है। सबसे बाहर पाण्डुर नील प्रावार (pale blue mantle) है जो ज्वाला के मूल तक चला गया है। ज्वाला का मूल नीले रंग का दिखाई देता है (चित्र ३२)।
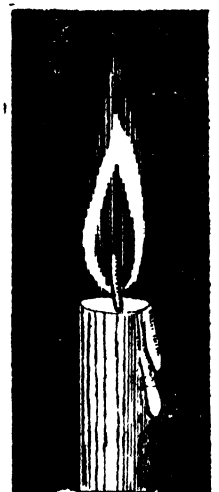
चित्र ३२

संपरीक्षा ६७—काचनाल का एक सिरा ज्वाला के अदग्ध-वाति-कोर में

रखो। यदि काचनाल के दूसरे सिरे के पास जलती हुई दियासलाई ले जाओगे तो वहाँ पर वातियाँ नन्हीं सी ज्वाला से जलने लगेंगी जो कि वर्ती की ज्वाला के सदृश होगी (चित्र ३३)। पिनाल दाहक की चकासिनी ज्वाला के साथ भी यही संपरीक्षा कर के देखो।

चित्र ३३

भीतरी कोर की अदग्ध वातियाँ सिक्थ (wax) के विबन्धन से उत्पन्न होती हैं। वे मुख्यत: प्रांगार और उदजन के संयोग हैं। वायु के साथ मिल कर उनका दहन होने लगता है और प्रांगार एकजारेय, प्र ज (corbon monoxide, CO), पानी, उदजन और कुछ मात्रा में प्रांगार द्विजारेय बनने लगते हैं।

बाहर के प्रावार में इन वातियों का अधिक संपूर्णता से जारण हो कर प्रांगार द्विजारेय और पानी बनते हैं। अंगार-वाति का निबन्ध सिक्थ के विबन्धन से उत्पन्न हुई वातियों के सदृश होता है। इसके अन्दर नाना घनताओं के प्रांगार और उदजन के संयोग, उदजन, और अन्य वातियों के कुछ अंश होते हैं। अंगार-वाति के दहन से पानी, प्रांगार द्विजारेय तथा कुछ मात्रा में अन्य पदार्थ बनते हैं।
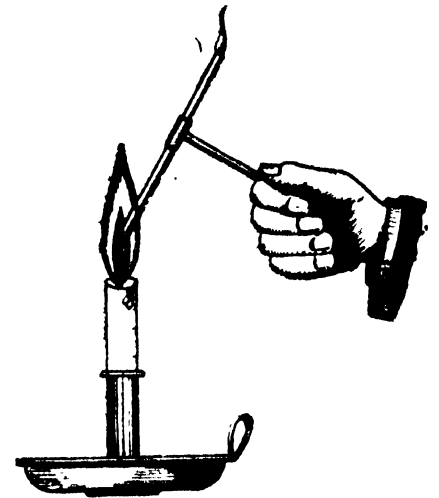
ज्वालाओं की चकासिता (luminosity)—ज्वालाओं की चकासिता तीन बातों पर निर्भर है—

१. दहन-ताप—ज्वाला की चकासिता पर ताप का बड़ा प्रभाव पड़ता है। ताप की वृद्धि से ज्वाला की चकासिता बढ़ जाती है और ह्रास से घट जाती है। जारक के अन्दर जलते हुए पदार्थ का दहन-ताप अधिक होता है। इसीलिये ज्वाला की चकासिता भी अधिक होती है। सिक्थ-वर्ती की ज्वाला के बाह्य प्रावार में चकासिता नहीं होती क्योंकि आसपास की वायु उसके ताप को घटा देती है।

२. वातियों की घनता (अथवा उन पर का निपीड)—वाति की घनता जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक चकासिता उसकी ज्वाला में होगी। इसीलिये वर्ती की ज्वाला की चकासिता पर्वत शिखर की अपेक्षा समुद्र-तल पर अधिक होती है। यद्यपि उदजन की ज्वाला में चकासिता नहीं होती चाहे वह शुद्ध जारक में ही क्यों न जलाई जाए तथापि यदि उदजन और जारक के मिश्र का उत्स्फोटन सीमित स्थान के अंदर किया जाए तो दीप्त स्फुरण (bright flash) होता है। यहाँ मिश्र का दहन अत्यधिक निपीड में हुआ है जब कि उसकी घनता बढ़ गई थी।

३. सान्द्र लवों (solid particles) की उपस्थिति—उत्ताप-दीप्त (incandescent) सान्द्र लवों की उपस्थिति भी ज्वाला की चकासिता को बहुत बढ़ा देती है। अचकासिनी (non-luminous) जारोदजन (oxyhydrogen) ज्वाला सान्द्र चूर्णक पर गिरने से भासुर (brilliaut) प्रकाश उत्पन्न कर देती है, जिसे चूर्णप्रकाश (देखो पृष्ठ ६०) कहते हैं। पिनाल- और वर्ती-ज्वालाओं में भी प्रांगार के लव होते हैं जो कज्जल (soot) के रूप में उपाड़े जा सकते हैं। सान्द्र लव चण्ड ताप में 'उत्तापदीप्त' हो कर चमकने लगते हैं जिससे ज्वाला की चकासिता बढ़ जाती है।

अचकासिनी पिनाल-ज्वाला—पिनाल दाहक में वाति छोटे से छिद्र में से बड़ी क्षिप्रता के साथ नाल में जाती है और पार्श्व के छिद्रों में से वायु अन्दर प्रवेश करती है। ज्वाला अचकासिनी होती है किन्तु इसके दो कोर स्पष्ट दिखाई देते हैं (चित्र ३४)। ज्वाला के अचकासिनी होने के कई कारण हैं। एक तो वायु की जारक की सहायता से दहन क्षिप्रता और अधिक पूर्णता से होने के कारण प्रांगार के सान्द्र लव नहीं बनते। दूसरे वायु की भूयाति का संमिश्रण भी ताप को हलका करता है। यदि वायु-छिद्रों में से प्रांगार द्विजारेय सरीखी अक्रिय वाति (inert gas) का प्रवेश कराया जाए तो भी ज्वाला अचकासिनी हो जाएगी। ऐसी वातियाँ ताप को थोड़ा करती और निपीड को घटाती हैं। अत: उनका प्रभाव ज्वाला पर पड़ता है।
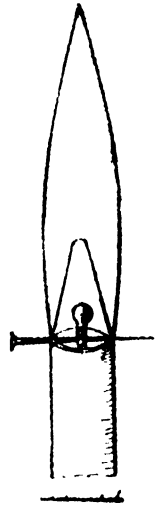
चित्र ३४

पिनाल ज्वाला सुषिर (hollow) होती है इस बात को सिद्ध करने के लिये दियासलाई को अन्धसूची (pin) में पिरो कर नाल में ऐसे लटकाओ जिससे उसका सिरा नाल से कुछ ऊपर ज्वाला के मध्य में रहे (चित्र ३४)। शीत और अदग्ध वाति के प्रदेश में होने से दियासलाई के भास्वर को आग नहीं लगेगी। अन्दर का अधिक नीला कोर मुख्यत: प्रांगार एकजारेय, उदजन और पानी बनाता है। बाह्य प्रावार में ये पदार्थ अधिक संपूर्णता से जल जाते हैं। अदग्ध वाति का भीतरी नीला कोर प्रह्रासक क्षेत्र (reducing area) है और बाह्य क्षेत्र, जहाँ जारक अधिक मात्रा में रहती है, जारयित्री ज्वाला का क्षेत्र है। यदि ताम्र तन्तु को क्षैतिज स्थिति में ज्वाला के बीच रखा जाए तो ज्वाला के प्रान्तों के पास से तन्तु का जारण हो जाएगा और मध्य के भाग में तन्तु चमकता ही रहेगा।

यदि वायु-छिद्र पूरे खोल दिये जाएँ और वाति का वाह घटा दिया जाए तो ज्वाला भक से पीछे हट जाएगी और वाति तले के पास जिस छिद्र से निकलती है वहीं जलने लगेगी। ज्वाला के पीछे हटने का कारण यह है कि जिस गति से वाति नाल के मुख पर जल रही थी उस मात्रा में उसका आना रुक गया। अत: नाल के अन्दर वातियों के मिश्र में हलका सा उत्स्फोटन होकर ज्वाला दौड़ कर नीचे चली गई।

धम-नाड ज्वाला (blow-pipe flame), जारण- और प्रह्रसन-कर्त्री ज्वालाएँ (oxidizing and reducing flames)—यदि केवल तापन (heating) के लिये वाति-ज्वाला का प्रयोग करना हो तो उसका दहन यथासंभव पूर्णता से होने से फल अधिक अच्छा होगा। यह तब हो सकता है जब दहन से पूर्व पिनाल दाहक में अंगार-वाति और वायु का संमिश्रण कर लिया जाए। यह संमिश्रण मुख-धम-नाड (mouth blow-pipe) द्वारा ज्वाला में वायु का वाह फूंकने से हो जाता है। इस प्रकार से उत्पन्न की हुई ज्वाला को 'धम-नाड-ज्वाला' कहते हैं।

धम-नाड ज्वालाएँ दो प्रकार की होती हैं—एक जारण-कर्त्री और दूसरी प्रह्रसन-कर्त्री।

जारण-कर्त्री ज्वाला उत्पन्न करने के लिये धमनाड का सिरा ज्वाला के बीच में ले जा कर बलपूर्वक फूँक दी जाती है। इस प्रकार अचकासिनी ज्वाला उत्पन्न होती है जिसके बीच में नीला कोर होता है। ज्वाला का उष्णतम भाग नीले कोर की अणि (point) के पास होता है किन्तु ज्वाला के

अग्रभाग के पास जारण उत्तम होता है क्योंकि बाह्य प्रावार में जारक अधिक मात्रा में होती है। इससे त्रपु (tin), सीस, आदि धातुओं के जारेय बन जाते हैं।

प्रह्रसन-कर्त्री ज्वाला उत्पन्न करने के लिये धमनाड का सिरा ज्वाला के प्रान्त के पास रख कर धीरे धीरे फूँक दी जाती है। इससे ज्वाला केवल व्याकुञ्चित (deflected) हो जाती है और उसमें तीनों क्षेत्र पूर्ववत् बने रहते हैं। ज्वाला के मध्य भाग के निकट प्रह्रसन होता है क्योंकि उसमें जारक की मात्रा अपर्याप्त होने से वह पदार्थ में से जारक का अपहरण कर लेती है। इसमें तपाने से जारेयों के धातु बन जाते हैं ॥

बाईसवाँ अध्याय

भूयाति (nitrogen)

भूयाति का आविष्कार वि. सं. १८२९ में स्कॉट्लैंड् के रसायनज्ञ रुथर्फोर्ड् (Rutherford) ने किया था। उसके पीछे शेल (Sheele) ने दर्शाया कि भूयाति वायु में अत्यधिक मात्रा में पाई जाती है। इसका नाम 'भूयाति' भी इसीलिये रखा गया है। यह नाम भूयः (=अधिक) और वाति से बना है।

प्राप्ति-स्थान—स्वतन्त्ररूप में भूयाति वायु के अन्दर अत्यधिक मात्रा में मिलती है। वायु की पाँच परिमाओं में चार परिमाएँ भूयाति की होती हैं। संयुक्त अवस्था में यह तिक्ताति (ammonia), पाक्य (nitre) अथवा दहातु भूयीय (potassium nitrate) और उपक्षार (Chile saltpetre) अथवा क्षारातु भूयीय (sodium nitrate) में विद्यमान होती है। भूयाति प्रोभूजिन (proteins) नाम के प्रांगारिक (organic) पदार्थों की सारभूत संघटक (essential constituent) है और अन्य कई प्रकार के उद्भिद्- और प्राणि-पदार्थों में पाई जाती है।

वायु में से भूयाति की प्राप्ति—हम देख चुके हैं कि वायु में से भूयाति लोहे के मण्डूर लगने (संपरीक्षा ४५), भास्वर के जलने (संपरीक्षा ४४) अथवा ताम्बे के तपने से प्राप्त हो सकती है। दहन नाल में ताम्बे को तपा कर उसके ऊपर से वायु का मन्थर प्रवाह ले जाया जाता है। वायु में से प्राप्त की हुई भूयाति में मन्दाति (argon), शिथिराति (neon) और इसी प्रकार की अन्य वातियाँ मिली होती हैं।

प्रयोगशाला के लिये भूयाति की प्राप्ति—प्रयोगशाला के लिये भूयाति बनाने के लिये अधिकतर तिक्तातु भूयित (ammonium nitrite), $भू उ_४ भू ज_२$, का प्रयोग किया जाता है। तपाने से इस संयोग का विबन्धन भूयाति और पानी में हो जाता है। एवं—

$$भू उ_४ भू ज_२ = भू_२ + २ उ_२ ज$$
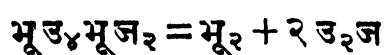
यतः तिक्तातु भूयित को शुद्ध अवस्था में सुगमता से नहीं रखा जा सकता इसलिये भूयाति को बनाने के लिये क्षारातु भूयित, $क्ष भू ज_२$, और तिक्तातु नीरेय, $भू उ_४ नी$, का मिश्र प्रयोग में लाया जाता है। इसको तपाने से क्षारातु नीरेय और तिक्तातु भूयित बन जाते हैं। एवं—

$$क्ष भूज_2 + भू उ_4 नी = क्ष नी + भू उ_4 भू ज_2$$
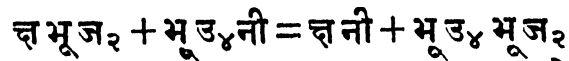
इसमें से तिक्ताति का अंश अलग करने के लिये इस वाति को अम्ल में से ले जाया जाता है और प्रदान-नाल द्वारा इसे मारुत द्रोणी में से पानी पर से इकट्ठा कर लिया जाता है, क्योंकि तिक्तातु भूयित के कुछ भाग का विबन्धन तिक्ताति और अम्ल में हो जाता है।

संपरीक्षा ६६—पलिघ के मुख में शृगाल-निवाप और मुड़ी हुई नाल लगादो। नाल का दूसरा सिरा मन्द शुल्बारिक अम्ल वाली त्रिमुखी कूपी के भीतर अम्ल में डाल दो कूपी के दूसरे मुख में अभय नाल और तीसरे में प्रदान नाल लगा दो (चित्र ३५)।

चित्र ३५

तिक्तातु नीरेय और क्षारातु भूयित को तोल कर समान मात्रा में पलिघ में डाल दो और ऊपर से पानी डाल दो। इस मिश्र को धीमी आँच पर तपाओ। जब वाति बन कर निकलने लगे तब नीचे से आँच हटा लो। प्रदान नाल में से पानी पर वाति इकट्ठी कर लो। यदि वाति अति क्षिप्रता से निकलने लगे तो ठण्डा पानी डाल कर पलिघ को ठण्डी करते जाओ।
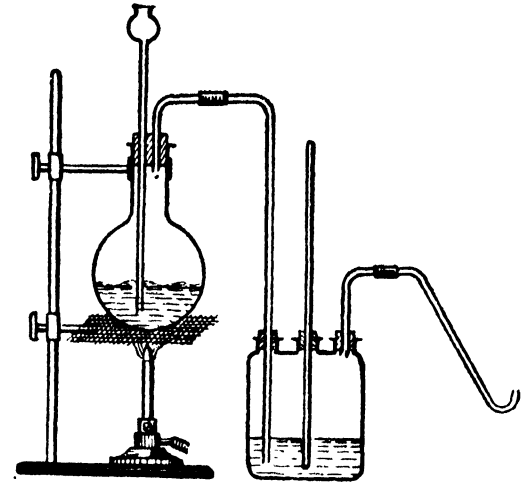
तिक्ताति, भू $उ_3$, के विलयन में नीरजी डालने से भी भूयाति अलग हो जाती है। नीरजी उदजन से संयुक्त हो कर उदनीरिक अम्ल बना देती है। पुनः उदनीरिक अम्ल बची हुई तिक्ताति से मिल कर तिक्तातु नीरेय बना देता है। एवं—

$$(क)\ २\ भू उ_3 + ३\ नी_2 = भू_2 + ६\ उनी$$

$$(ख)\ ६\ उनी + ६\ भू उ_3 = ६\ भू उ_4 नी$$
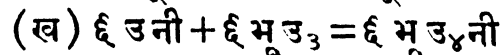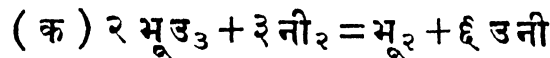
किन्तु यह रीति भयावह है क्योंकि यदि नीरजी की मात्रा आवश्यकता से अधिक डल जाए तो उत्स्फोट-संयोग (explosive compound) बन जाता है।

भूयाति के गुण—भूयाति रंग, स्वाद और गन्ध हीन होती है। जारक और वायु से यह थोड़ी सी हलकी होती है। इसके एक प्रस्थ का भार १.२५०७ धा. होता है। उदजन के समान यह पानी में बहुत थोड़ी घुलती है। प्रमाप परिस्थितियों (standard conditions) में पानी के एक प्रस्थ में इसके केवल २० घ. शि.मा. घुलते हैं। इसका तरलन बड़ी कठिनाई से होता है। तरल रंगहीन होता है और −१९६° श. पर उबलने लगता है। बुद्बुदांक पर उसकी घनता ०·८ होती है। इससे अधिक नीचे ताप पर वह तरल हिम के समान सान्द्र बन जाता है, जो कि −२१०·५° श. पर पिघलने लगता है। उदजन की अपेक्षा भूयाति की घनता १४·० है। अतः व्यूहाणु-भार २८·० और व्यूहाणु-सूत्र $भू_2$ हैं।

भूयाति वायु में नहीं जलती और न ही दहन की पोषक है।

भूयाति के रसायनिक गुण—यह वाति बहुत अक्रिय (inactive) है और साधारण ताप पर प्रायः दूसरे तत्त्वों के साथ संयुक्त नहीं होती। ऊँचे ताप पर यह भ्राँजातु, लघ्वातु (lithium), रंजातु (titanium) तथा अन्य कुछ तत्त्वों के साथ संयुक्त हो कर उनके भूयेय (nitrides) बना देती है। यदि भूयाति और जारक के मिश्र में से विद्युत्स्फुलिंगों का लगातार संचार किया जाए तो दोनों वातियाँ

सीधी संयुक्त हो कर भूयाति के जारेय बना देती हैं। विद्युत् के मूक मोच (silent discharge) द्वारा भूयाति और उद्जन का संयोजन कर के तिक्ताति, भू $उ_3$, बनाई जा सकती है।

भूयाति के परमाणुओं की स्वभाविक प्रवृत्ति एक दूसरेसे मिल कर व्यूहाणु बनाने की होती है। अतः उत्स्फोटों में से, जो कि भूयाति के संयोग होते हैं, प्रायः भूयाति अलग हो जाती है।

भूयाति और जीवन—हम दिन रात भूयाति के साँस लेते हैं इसलिये भूयाति विषैली वाति नहीं हो सकती। तथापि शुद्ध भूयाति में जीवित रहना असंभव है, क्योंकि जारक का होना जीवन के लिये आवश्यक है। केवल मात्र जारक में भी जीवन संभव नहीं क्योंकि इससे फेफड़ों में दहन क्रिया बड़ी क्षिप्रता से होने लगेगी। वायु में भूयाति जारक के इस गुण को मन्द कर देती है इसलिये वायु जीवन के लिये हानिकर नहीं होती।

जीवत् शरीर के पोषण के लिये उद्भिदों और प्राणियों दोनोंको ही भूयाति की आवश्यकता है। यह भूयाति मुख्यतः वायु में से प्राप्त होती है। वायुमण्डलिक भूयाति भूयिक अम्ल के समान कई भूयाति के संयोग बनाती रहती है जो वर्षा के साथ पृथिवी पर गिर कर मिट्टी में मिल जाते हैं। मिट्टी में इनके विलेय संयोग (भूयीय) बन जाते हैं। पौदों की जड़ें इनको चूस लेती हैं। कई पौदे भूयाति को वायु में से सीधा ले लेते हैं। ऐसे पौदों के ऊपर ग्रन्थाएँ (nodules) होती हैं जिनमें शाकाणु (bacteria) होते हैं। ये शाकाणु भूयाति के विलेय संयोग बना देते हैं जो पौदों के काम में आते हैं।

प्राणियों को खाद्य पौदों और शाकों में से पर्याप्त भूयाति मिल जाती है। उद्भिद्- और प्राणि-पदार्थों के विबन्धन से भी भूयाति के संयोग बन जाते हैं जो मिट्टी में मिल कर पुनः पौदों के काम आते हैं॥

तेईसवाँ अध्याय

तिक्ताति (ammonia)—तिक्तातु (ammonium) और उसके लवण

तिक्ताति का जलीय विलयन (aqueous solution) पुराने रसायनज्ञों को ज्ञात था। वे इसे 'मृगशृंग-प्रासव' (spirit of hartshorn) कहते थे क्योंकि यह मृग आदि वन्य पशुओं के खुरों और सींगों का नाशक आसवन (destructive distillation) करके बनाया जाता था।

प्राप्ति-स्थान—अल्प मात्रा में तिक्ताति (भू $उ_3$) वायु और प्राकृत जलों के अन्दर पाई जाती है। भूयाति वाले (उद्भिद्- और प्राणि-) पदार्थों के गलने सड़ने से तिक्ताति बन कर वायु, मिट्टी और जल में मिल जाती है। मूत्र-स्थानों (urinals) और मन्दुराओं (stables) के पास जो तीखी दुर्गन्ध उठती है वह तिक्ताति के कारण ही उत्पन्न होती है। तिक्तातु भूयीय (ammonium nitrate) और तिक्तातु नीरेय के रूप में यह मिट्टी के अन्दर पाई जाती है।

तिक्ताति विशेषतः पत्थर के कोयले से निकाली जाती है। युगयुगान्तरों से दबे हुए उद्भिदों का पत्थर का कोयला बन जाता है। इसलिये इसमें भूयाति अधिक होती है। वायु के अभाव में पत्थर के कोयले को तपाने से उसका विबन्धन हो कर तिक्ताति, अंगार-वाति तथा अन्य पदार्थ बन जाते हैं। इस

विधा को 'नाशक आसवन' कहते हैं। पत्थर के कोयले के आसवन से जो विराल जैसा तरल (tarry liquid) प्राप्त होता है उसमें कई अम्लों के साथ मिली हुई तिक्ताति भी होती है।

भ्राजातु और भूयाति को मिला कर तपाने से भ्राजातु भूयेय बनता है जिसमें पानी मिला देने से तिक्ताति प्राप्त हो सकती है।

तिक्ताति बनाने की रीति—प्रयोगशाला में तिक्तातु नीरेय और चूर्णातु उदजारेय (शान्त चूर्णाक) के मिश्र को तपाने से तिक्ताति बनाई जाती है। संभवतः इस प्रकार से द्विगुण विबन्धन (double decomposition) होता है। पहले तिक्तातु उदजारेय और चूर्णातु नीरेय बनते हैं। एवं—

$$२ \text{ भू उ}_{४}\text{नी} + \text{चू (जउ)}_{२} = २ \text{ भू उ}_{४}\text{जउ} + \text{चूनी}_{२}$$
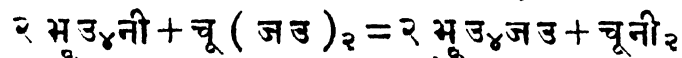
फिर तिक्तातु उदजारेय का विबन्धन होकर पानी और तिक्ताति बन जाते हैं। एवं—

$$२ \text{ भू उ}_{४}\text{जउ} = २ \text{ भू उ}_{३} + २ \text{ उ}_{२}\text{ज}$$
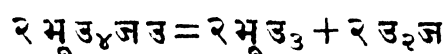
इस समस्त प्रतिक्रिया को नीचे दिये एक ही समीकार में प्रकट कर सकते हैं—

$$२ \text{ भू उ}_{४}\text{नी} + \text{चू (जउ)}_{२} = २ \text{ भू उ}_{३} + २ \text{ उ}_{२}\text{ज} + \text{चूनी}_{२}$$
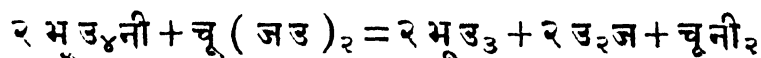
यतः तिक्ताति शुल्बारिक अम्ल तथा साधारण शोषणकर्त्ताओं (drying agents) के साथ संयुक्त हो जाती है इसलिये इसको जीव चूर्णाक से सुखाना चाहिये। इसको उपरि-निरसन द्वारा इकट्ठी किया जाता है। प्रदान नाल के मुख पर वायु से भरा हुआ घड़ा औंधा कर के रख दिया जाता है। तिक्ताति हलकी होने के कारण वायु में से प्रसृति कर के घड़े में भरती जाती है और वायु भारी होने के कारण नीचे बैठ कर निकलती जाती है। तिक्ताति को पारे के ऊपर से भी इकट्ठी किया जा सकता है।

संपरीक्षा ७०—पलिध में पिसे हुए तिक्तातु नीरेय और शान्त चूर्णाक की समान मात्राएँ डाल कर उसके मुख में प्रदान नाल लगा दो। मिश्र को धीमी आँच पर तपाओ। वाति बनने लगेगी। प्रदान नाल के मुख पर रम्भ को उलटा रख कर वाति को इकट्ठी कर लो (चित्र ३६)। रक्त शेवल-पत्र को गीला कर के कलश के मुख के पास ले जाओ। यदि पत्र नीला हो जाए तो समझ लो कलश वाति से भर गया है।

चित्र ३६

तिक्ताति के गुण—तिक्ताति रंगहीन होती है, किन्तु इसकी गन्ध बहुत तीखी और स्वाद विशेष प्रकार का होता है। यह वायु में स्वयं भी नहीं जलती और न ही दहन की पोषक है।

वायु से यह हलकी होती है। प्रमाप परिस्थितियों में एक प्रस्थ तिक्ताति का भार ० ७७०८ धा. होता है जो कि वायु का ०·५६ गुणा है। −३४° श. से नीचे ताप पर यह रंगहीन तरल बन जाती है। यह तरल −३३·५° श. पर उबलने लगता है। तरल तिक्ताति का क्षिप्र उद्वाष्पण ताप को इतना घटा देता है कि कृत्रिम हिम बनाने के लिये इसका विशेष प्रकार के यन्त्रों में प्रयोग किया जाता है। −७७° श. पर तरल तिक्ताति सान्द्र बन जाती है जो −७५·५° श. पर पिघलने लगती है। तरल तिक्ताति न केवल अत्युत्तम विलायक है किन्तु अत्यधिक अयनकर्त्री (ionising) भी है।
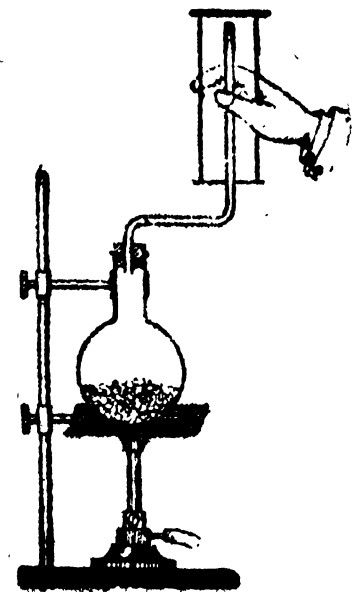
तिक्ताति पानी में अत्यधिक विलेय होती है। साधारण ताप पर पानी की एक परिमा में तिक्ताति

की लगभग ८०० परिमाएँ प्रविलीन हो जाती हैं। इतनी अधिक मात्रा के प्रविलीन होने से पानी फैल जाता है इसलिये विलयन की घनता पानी की घनता से न्यून होती है। अधिक से अधिक संकेन्द्रित वाणिजिक विलयन की घनता ०.८८ होती है और उसमें भार के अनुसार ३५.६ प्रतिशत वाति होती है।

भूयाति के रसायनिक गुण—साधारण ताप पर तिक्ताति स्थायी संयोग है, किन्तु चण्ड ताप पर अथवा विद्युत् मोच की क्रिया से इसका विबन्धन तत्त्वों में हो जाता है। जारक के वायुमण्डल में तिक्ताति जलने लगती है और उससे पानी, भूयाति और कुछ भूयाति जारेय बन जाते हैं।

धातुएँ तिक्ताति में से उदजन का निरसन कर के भूयेय (nitrides) बना देती हैं। एवं भ्राजातु से श्वेत रंग का सान्द्र भ्राजातु भूयेय, $भ्र_3भू_2$, बन जाता है—

$$३ भ्र + २ भूउ_3 = भ्र_3भू_2 + ३उ_2$$
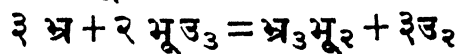
पानी पर तिक्ताति की क्रिया (तिक्तातु उदजारेय)—पानी और तिक्ताति के विलयन को जलीय तिक्ताति (aqueous ammonia) कहते हैं। इसके गुण अतिमात्र पैठिक (basic) होते हैं। यह रक्त शेवल को नीला कर देता है, स्पर्श में चिकना होता है, और अम्लों का क्लीबन (neutralisation) कर के उनके लवण बना देता है। इसलिये जब तिक्ताति पानी में घुलती है तब अवश्यमेव इसका कुछ भाग रसायनिक क्रिया से पानी के साथ संयुक्त हो कर क्षारिय पदार्थ, तिक्तातु उदजारेय (ammonium hydroxide), बना देता है जिसके गुण पैठिक होते हैं। समीकार यह है—

$$भूउ_3 + उ_2ज = (भूउ_4).जउ$$
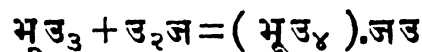
तिक्तातु उदजारेय से लवणों की एक माला बनती है जिसमें प्रत्येक लवण के अन्दर $-(भूउ_4)$ का वर्ग साधारण होता है। इस वर्ग का नाम तिक्तातु (ammonium) है। यह वर्ग संयुत मूल (compound radical) है क्योंकि यह इन संयोगों की माला में विशेषरूप से आता है और स्वतन्त्र अवस्था में नहीं पाया जाता।

अन्य क्षारकों के समान जब तिक्तातु उदजारेय को धातुओं के कई लवणों के विलयन में मिलाया जाता है तब यह धात्विक उदजारेय (metallic hydroxide) का निस्सादन कर देता है। यथा, अयसिक नीरेय (ferric chloride) के विलयन में इसे डालने से रक्त अयसिक उदजारेय नीचे बैठ जाता है। एवं—

$$अनी_3 + ३ (भूउ_4).जउ = अ (जउ)_3 + ३ (भूउ_4).नी$$
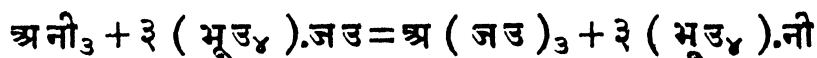
तिक्ताति रजत नीरेय को प्रविलीन कर देती है, किन्तु उसमें कोई सा अम्ल मिला देने से रजत नीरेय फिर नीचे बैठ जाता है।

तिक्तातु लवण (ammonium salts)—तीन साधारण अम्लों को तिक्तातु उदजारेय के विलयन में डालने से अम्लों का क्लीबन हो कर निम्नलिखित समीकारों के अनुसार तिक्तातु लवण बन जाएँगे—

$$भूउ_4.जउ + उनी = उ_2ज + भूउ_4नी$$

$$भूउ_4.जउ + उभूज_3 = उ_2ज + भूउ_4.भूज_3$$

$$२ भूउ_4.जउ + उ_2शुज_4 = २ उ_2ज + (भूउ_4)_2.शुज_4$$
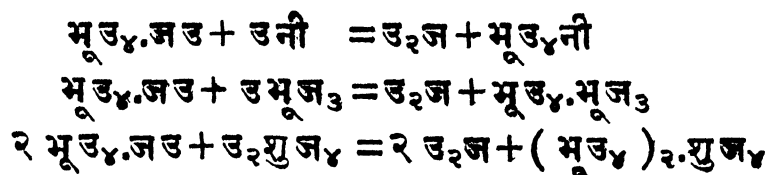
उद्वाष्पन करने से सान्द्र लवण प्राप्त हो जाएँगे। इनके नाम क्रम से तिक्तातु उदनीरेय, तिक्तातु भूयीय और तिक्तातु शुल्बीय हैं।

तिक्ताति का निबन्ध—विद्युत्स्फुलिंगों के लगातार संचार से तिक्ताति का विबन्धन भूयाति और उदजन में हो जाता है। दूसरी ओर यदि भूयाति और उदजन के मिश्र में मूक विद्युत् मोचों का संचार किया जाए तो अल्प मात्रा में तिक्ताति उत्पन्न हो जाती है। सूखी तिक्ताति को तपाए हुए ताम्र जारेय पर से ले जाने से पानी और भूयाति बनते हैं। अतः तिक्ताति भूयाति और उदजन का ही संयोग है। इसका भारिमितीय (gravimetric) निबन्ध भी इसी प्रकार ज्ञात हो सकता है।

तिक्ताति का इयत्तात्मक (quantitative) निबन्ध ऐसी प्रतिक्रियाओं से ज्ञात हो सकता है जिनसे तिक्ताति की नियत परिमा में से उदजन और भूयाति पृथक् हो जाएँ। नीरजी और तिक्ताति की प्रतिक्रियाओं से उदनीरिक अम्ल और भूयाति बनते हैं। इन दोनोंकी परिमा ज्ञात कर लेने से उदजन की परिमा निकल आएगी क्योंकि उदनीरिक अम्ल में उदजन और नीरजी की परिमाएँ समान होती हैं। संपरीक्षाओं से सिद्ध हो चुका है कि तिक्ताति की दो परिमाओं में एक परिमा भूयाति की और तीन परिमाएँ उदजन की होती हैं। उदजन की अपेक्षा इसकी घनता ८·५ है, अतः व्यूहाणु-भार १७·० है। व्यूहाणु-सूत्र भू $उ_3$ है।

तिक्ताति का उपयोग—हिम और धावन विक्षार (क्षारातु प्रांगारीय) बनाने के लिये तिक्ताति का प्रयोग किया जाता है। भैषज्य (medicine) में तिक्तातु लवणों का बहुत प्रयोग होता है। तीव्र प्रतिश्याय (bad cold) को दूर करने के लिये जो सूँघने के लवण होते हैं उनमें प्रायः तिक्तातु प्रांगारीय (ammonium carbonate) होता है जिसे वायु में खुला रखने से तिक्ताति निकल कर उड़ जाती है।

चौबीसवाँ अध्याय

भूयिक अम्ल और भूयीय (nitric acid and nitrates)

प्राचीन लोगों को भूयिक अम्ल का पता था। यह उद्योगों (industries) में काम आने वाले साधारण अम्लों में से एक है।

प्राप्ति-स्थान—स्वतन्त्र भूयिक अम्ल के लेश (traces) वायु में बहुत सूक्ष्म मात्रा में पाए जाते हैं, किन्तु भूयीय सारी प्रकृति (nature) में फैले हुए हैं। क्षारातु भूयीय अथवा विक्षार (जिसमें क्षारातु, भूयाति और उदजन होते हैं) भारतवर्ष के अनेक स्थानों में पाया जाता है।

भूयिक अम्ल बनाने की रीति—क्षारातु भूयीय अथवा दहातु भूयीय को तीव्र शुल्बारिक अम्ल के साथ तपाने से भूयिक अम्ल की उत्पत्ति होती है।

संपरीक्षा ७२—क्षारातु भूयीय का संकेन्द्रित, ठण्डे शुल्बारिक अम्ल से साधन करने से कोई रसायनिक क्रिया होती हुई प्रतीत नहीं होती, किन्तु यदि उस मिश्र को वकभाण्ड (retort) में डाल कर धीमी आँच पर रखा जाए तो भूयिक अम्ल बाष्परूप में निकलने लगेगा। इस बाष्प को हिम के पानी में रखी हुई नाल में ले जाने से संघनित होकर अम्ल तरलरूप में परिणत हो जाएगा (चित्र ३७)। वकभाण्ड में बचे हुए तरल की परीक्षा करने से ज्ञात होगा कि शुल्बारिक अम्ल में से आधी उदजन निकल गई है और उसका स्थान क्षारातु ने ले लिया है। तरल में अम्ल क्षारातु शुल्बीय (acid sodium sulphate) बन गया है। प्रतिक्रिया का समीकार यह है—

चित्र ३७

$$\text{क्ष भू ज}_3 + \text{उ}_2 \text{ शु ज}_4 = \text{क्ष उ शु ज}_4 + \text{उ भू ज}_3$$
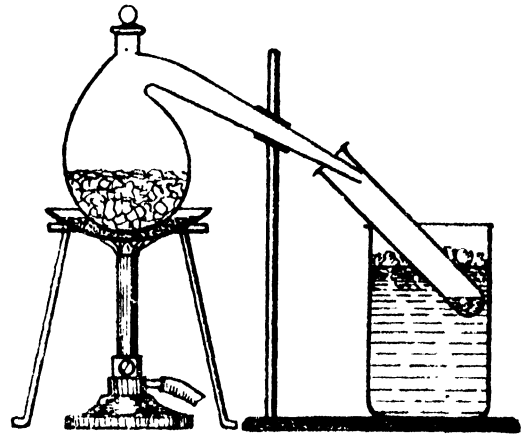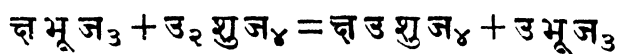
यदि शुल्बारिक अम्ल की मात्रा थोड़ी ली जाए और मिश्र को चण्ड ताप तक तपाया जाए तो ऋजु क्षारातु शुल्बीय बनेगा—

$$२ \text{ क्ष भू ज}_3 + \text{उ}_2 \text{ शु ज}_4 = २ \text{ उ भू ज}_3 + \text{क्ष}_2 \text{ शु ज}_4$$
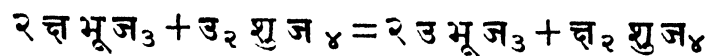
इस रीति में अधिक ताप की आवश्यकता होती है जिससे भूयिक अम्ल के कुछ भाग का विबन्धन हो जाता है। इसलिये यह रीति महँगी पड़ती है।

वाणिजिक मात्रा में भूयिक अम्ल साधारण अशुद्ध क्षारातु भूयीय से बनाया जाता है। संचायस (cast iron) के वकभाण्ड में शुल्बारिक अम्ल और क्षारातु भूयीय के मिश्र को चण्ड ताप पर तपाया जाता है। चण्ड ताप पर शुल्बारिक अम्ल की आधी मात्रा की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि ऋजु क्षारातु शुल्बीय बनता है।

भूयिक अम्ल के बहुत से भाग का विबन्धन हो जाने से भूयाति के रक्त जारेय बन जाते हैं। इन्हीं जारेयों के कारण साधारण वाणिजिक भूयिक अम्ल का रंग गहरा भूरा सा होता है।

इन जारेयों के अतिरिक्त वाणिजिक भूयिक अम्ल में नीरजी, जम्बिक अम्ल (iodic acid), अयस्, शुल्बारिक अम्ल और क्षारातु शुल्बीय भी मिले हुए हो सकते हैं। अशुद्ध क्षारातु भूयीय में जो क्षारातु नीरेय मिला होता है, उससे नीरजी बनती है; जम्बेयों में से जम्बिक अम्ल बनता है; वकभाण्ड में से लोहा मिल जाता है और शुल्बारिक अम्ल तथा क्षारातु शुल्बीय भूयिक अम्ल के साथ ही चले जाते हैं।

ऐसे भूयिक अम्ल को काच के वकभाण्ड में डाल कर पुनः आसवन कर के शुद्ध किया जा सकता है। आसुत का पहला थोड़ा सा भाग फेंक दिया जाता है क्योंकि उसमें नीरजी मिली होती है। शेष आसुत को इकट्ठा कर लिया जाता है। जब भाण्ड में अम्ल थोड़ा सा रह जाए तब आसवन समाप्त कर देना चाहिये क्योंकि फिर उसमें केवल अशुद्धताएँ मिली रह जाती हैं। उष्ण अम्ल में से वायु का प्रवाह ले जाने से भूयाति के रक्त जारेयों का अपहरण हो जाता है।

भूयिक अम्ल—शुद्ध भूयिक अम्ल (उदजन भूयीय) रंगहीन तरल होता है जो लगभग ८६° श. पर उबलने लगता है। इसकी घनता १·५६ है। वाणिजिक संकेन्द्रित अम्ल में ६८ प्रतिशत अम्ल होता है और शेष पानी। इस मिश्र की घनता १·४ होती है। गीली वायु में संकेन्द्रित अम्ल से हलका सा धूम उठता है और उसकी तीखी गन्ध से साँस घुटने लगता है।

रसायनिक गुण—भूयिक अम्ल की मुख्य प्रतिक्रियाएँ निम्नलिखित हैं—

१. अम्ल क्रिया (acid action)—भूयिक अम्ल में तीव्र (strong) अम्ल के सभी गुण पाए जाते हैं। यह नीले शेवल को रक्त कर देता है और इसके मन्द विलयन का स्वाद खट्टा होता है। यह पीठों का क्लीबन कर के उनके लवण बना देता है। इसकी क्रिया से अधिकांश धातुओं के जारेयों के लवण और पानी बन जाते हैं। एवं—

$$\text{ताज} + २\ \text{उभूज}_3 = \text{ता}(\text{भूज}_3)_2 + \text{उ}_2\text{ज}$$
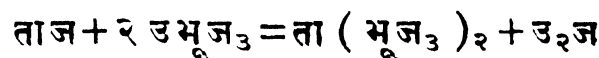
२. तपाने से विबन्धन—यदि भूयिक अम्ल को उबाला जाए अथवा इसे धूप में खुला रख दिया जाए तो निम्नलिखित समीकार के अनुसार इसका थोड़ा सा विबन्धन हो जाता है—

$$४\ \text{उभूज}_3 = २\ \text{उ}_2\text{ज} + ४\ \text{भूज}_2 + \text{ज}_2$$
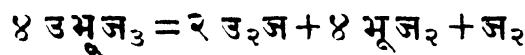
इसमें भूज$_2$ अर्थात् भूयाति द्विजारेय नाम का पदार्थ एक भूरे से रंग की वाति है जो पानी और भूयिक अम्ल में सरलता से घुल जाती है। इसलिये यह अविबद्ध (undecomposed) अम्ल में घुल कर उसका रंग आपीत (yellowish) अथवा आरक्त (reddish) कर देती है। जिस संकेन्द्रित भूयिक अम्ल में यह वाति अत्यधिक मिली हुई हो उसे धूमायमान (fuming) भूयिक अम्ल कहते हैं।

३. जारण-कर्तृत्व (oxidizing action)—यत: भूयिक अम्ल का विबन्धन सरलता से हो जाता है इसलिये यह अच्छा जारणकर्ता है। साधारण परिस्थितियों में जारण करते समय इसका विबन्धन नीचे लिखे समीकार के अनुसार होता है—

$$२\ \text{उभूज}_3 = \text{उ}_2\text{ज} + २\ \text{भूज} + ३\ [\text{ज}]$$
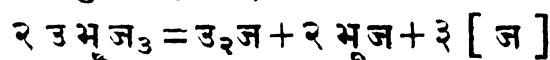
जारक उन्मुक्त नहीं होती किन्तु जिस पदार्थ का जारण होता है उसके साथ मिल जाती है। इसीलिये समीकार में जारक को कोणाभिवारों (square brackets) में दिखाया है। इसी प्रकार यदि प्रांगार का भूयिक अम्ल से जारण करेंगे तो जारक प्रांगार के साथ मिल कर प्रांगार द्विजारेय बना देगी। एवं—

$$\text{प्र} + २\ [\text{ज}] = \text{प्रज}_2$$
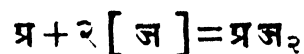
अम्लराज (aqua regia)—उत्तम जारयिता होने के कारण भूयिक अम्ल उदजन नीरेय में से नीरजी का उन्मोचन कर देता है। १ भाग भूयिक अम्ल और ३ भाग उदनीरिक अम्ल के मिश्र को अम्लराज कहते हैं। यह एक प्रबल (strongest) विलायक है। इसकी विलायक शक्ति अम्लिक गुणों के कारण से नहीं प्रत्युत जायमान नीरजी के उन्मोचन के कारण से है। स्वर्ण और महातु के समान जो धातुएँ किसी भी साधारण अम्ल में प्रविलीन नहीं होतीं, अम्लराज में सरलता से प्रविलीन हो जाती हैं और जायमान नीरजी द्वारा उनके नीरेय बन जाते हैं।

भूयिक अम्ल के लवण—भूयिक अम्ल के लवणों को 'भूयीय' कहते हैं। एकपैठिक होने के कारण इस अम्ल का कोई अम्ल लवण (acid salt) नहीं होता, केवल ऋजु लवण होता है। भूयीय लवण दो प्रकार से बनते हैं। एक तो भूयिक अम्ल पर धातुओं की क्रिया से और दूसरे इसपर पीठों अथवा प्रांगारीयों की क्रिया से। जब भूयिक अम्ल पर धातुओं की क्रिया होती है तब इसके जारण गुण के कारण उद्‌जन उन्मुक्त नहीं होती। उद्‌जन सबसे पहले बनती है और बनते ही शेष भूयिक अम्ल द्वारा जारित हो कर पानी बना देती है और भूयिक अम्ल का प्रह्रसन हो कर भूयाति के नाना संयोग बन जाते हैं। इन संयोगों का निबन्ध धातु, अम्ल की तीव्रता और प्रतिक्रिया के तापांश पर निर्भर होता है।

नीचे दिये समीकार भूयिक अम्ल के प्रह्रसन में पहले पीछे होने वाली दो प्रतिक्रियाओं को दिखाते हैं—

२ उ भू ज$_3$ + २ उ (परमाण्विक) = २ भू ज$_२$ + २ उ$_२$ ज

२ उ भू ज$_3$ + ४ उ (परमाण्विक) = भू ज + भू ज$_२$ + ३ उ$_२$ ज
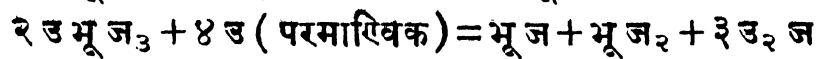
अम्ल का और अधिक प्रह्रासन कर के भूयिक जारेय, भू ज (nitric oxide), भूय्य जारेय, भू$_२$ ज (nitrous oxide), अथवा भूयाति बनाए जा सकते हैं। भूयाति का और आगे प्रह्रासन करने से तिक्ताति बन सकती है। एवं जब किसी विशेष तीव्रता का मन्द भूयिक अम्ल लोहे अथवा कुप्यातु पर क्रिया करता है तब धातु के भूयीय के साथ साथ तिक्तातु भूयीय (ammonium nitrate) भी बन जाता है।

संपरीक्षा ७४—भूयिक अम्ल को शराव में डाल कर उसमें ताम्बे को तपाओ। तरल नीला हो जाएगा और भूयाति के रक्त जारेय बन जाएँगे। विलयन में से ताम्र भूयीय के नीले स्फट प्राप्त किये जा सकते हैं।

संपरीक्षा ७५—मन्द भूयिक अम्ल द्वारा तिक्तातु उद्‌जारेय का क्लीबन करो। उस विलयन को सावधानी से उद्बाष्पन करने से तिक्तातु भूयीय के रंगहीन स्फट प्राप्त हो जाएँगे।

संपरीक्षा ७६—दहातु प्रांगारीय में मन्द भूयिक अम्ल डालो। जब प्रबुद्‌बुदन (effervescence) शान्त हो जाए तब विलयन का उद्बाष्पन करने से दहातु भूयीय के बड़े बड़े रंगहीन स्फट बन जाएँगे।

सभी भूयीय पानी में घुल जाते हैं और चण्ड ताप पर तपाने से इनका विबन्धन हो जाता है। किसी किसी भूयीय को तपाने से जारक उत्पन्न होती है और भूयीय का भूयित बन जाता है। एवं—

२ च भू ज$_3$ = २ च भू ज$_२$ + ज$_२$
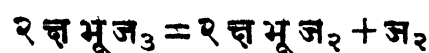
बहुशः विबन्धन इससे भी आगे हो जाता है और धातु का जारेय बन जाता है, यथा—

२ सी (भू ज$_3$)$_२$ = २ सी ज + ४ भू ज$_२$ + ज$_२$
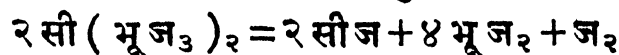
भूयीयों का विबन्धन सरलता से हो जाता है। अतः वे प्रबल जारयिता होते हैं। संवृत स्थानों (closed spaces) में पड़े हुए पदार्थ इनमें से जारक ग्रहण कर के जलने लगते हैं। अग्निचूर्ण (gun-powder) का एक संघटक दहातु भूयीय है इसीलिये वह पानी में भी जल जाता है क्योंकि प्रांगार और शुल्बारि के दहन के लिये जारक भूयीय में से प्राप्त हो जाती है। अग्नि-क्रीडनकों (fireworks) के बनाने में भूयीयों का बहुत प्रयोग होता है।

भूयीयों की परीक्षा

१. अंगार पर रख कर धमनाड ज्वाला द्वारा तपाने से भूयीयों का उद्दहन (deflgration) होने लगता है और अंगार का दहन क्षिप्रता से हो जाता है।

२. वलय परीक्षा (ring test)—भूयीय के विलयन को परीक्षण नाल में डाल कर ऊपर से उतनी ही परिमा में संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल डाल दो। नाल को नल के पानी की धारा के नीचे ठण्डी कर लो। फिर उसी समय अयस्य शुल्बीय (ferrous sulphate) का विलयन बना कर सावधानी से उस मिश्र में डाल दो। दोनों तरलों के बीचों बीच भूरे रंग का वलय बन जाएगा जो उनको पृथक् करता हुआ दिखाई देगा।

३. नाल में डाल कर तपाने से कुछ भूयीयों से भूयाति चतुर्जारेय (nitrogen tetroxide) उन्मुक्त होती है।

४. भूयीयों को शुल्बारिक अम्ल के साथ तपाने से भूयिक अम्ल बन जाता है और कुछ भूरा धूम निकलता है। उसमें ताम्र का टुकड़ा डाल देने से भूरा धूम बहुत अधिक उठने लगता है। यह धूम धातु पर भूयिक अम्ल की क्रिया से उत्पन्न होता है॥

पच्चीसवाँ अध्याय

भूयाति के जारेय—भूय्य अम्ल और भूयित (nitrous acid and nitrites)

भूयाति के मुख्य जारेय निम्नलिखित हैं—

१. भूय्य जारेय (nitrous oxide), $भू_२ ज$।

२. भूयिक जारेय (nitric oxide), भू ज।

३. भूयाति द्विजारेय (nitrogen dioxide), $भू ज_२$।

४. भूयाति त्रिजारेय (nitrogen trioxide), $भू_२ ज_3$।

५. भूयाति चतुर्जारेय (nitrogen tetroxide), $भू_२ ज_४$।

६. भूयाति पञ्चजारेय (nitrogen pentoxide), $भू_२ ज_५$।

भूय्य जारेय, ($भू_२ ज$)—वि.सं. १८२९ में पहले पहल इसे प्रीस्टली (Priestly) ने प्राप्त किया था। वि. सं. १८५७ में डेवी (Davy) ने इसके निबन्ध का निर्धारण कर के सबसे पहले इस बात का पता लगाया था कि इस वाति को सूँघ लेने से मनुष्य कुछ समय के लिये अचेत हो जाता है। इस वाति को 'हसन वाति' (laughing gas) भी कहते हैं।

इसको प्राप्त करने की सरल रीति यह है कि तपा कर तिक्ताति भूयीय (ammonium nitrate) का विबन्धन कर लिया जाता है। इससे निम्नलिखित समीकार के अनुसार यह वाति उत्पन्न हो जाती है—

$$भू उ_४.भू ज_3 = भू_२ ज + २उ_२ ज$$
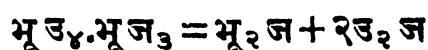
वाति को शुद्ध करने के लिये इसे पहले अयस्य शुल्बीय (ferrous sulphate) के विलयन

में से ले जाया जाता है जिससे इसमें से भूयिक जारेय के लेश निकल जाते हैं। तिक्ताति भूयीय में मिले हुए नीरेय की नीरजी के लेश निकालने के लिये वाति को दह विक्षार के विलयन पर कुछ समय तक रखा जाता है।

मन्द भूयिक अम्ल पर कई धातुओं की क्रिया से भी यह वाति उत्पन्न हो जाती है, यथा कुप्यातु और अतिमन्द भूयिक अम्ल की प्रतिक्रियाओं से।

भूय्य जारेय के गुण—यह वाति रंगहीन होती है और ठण्डे पानी में घुल जाती है। गन्ध और स्वाद में यह मीठी सी होती है। इसे सूँघने से हँसी आने लगती है और चिर काल तक सूँघते रहने से मनुष्य अचेत हो जाता है। शल्य (surgery) में पहले पहल निश्चेत (anaesthetic) के रूप में इस वाति का प्रयोग किया जाता था और दन्त-चिकित्सा (dentistry) में अब तक इसका प्रयोग किया जाता है।

यह स्वयं वायु में नहीं जलती किन्तु जो पदार्थ जारक में जल सकते हैं यह उनके दहन की पोषक है। दहकती हुई लकड़ी इसके अन्दर ले जाने से जलने लगती है। यह वाति बहुत प्रबल जारयित्री है। प्रांगार, शुल्बारि, अयस्, भास्वर, आदि पदार्थ इसमें प्राय: उतनी ही चमक से जलते हैं जितनी से जारक में। इनके जलने से जारेय बन जाते हैं और भूयाति उन्मुक्त हो जाती है। एवं—

$$प्र + २भू_२ज = प्रज_२ + २भू_२$$

$$शु + २भू_२ज = शुज_२ + २भू_२$$
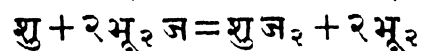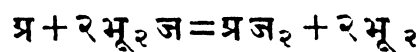
भूय्य जारेय वायु से भारी होती है। उदजन की अपेक्षा इसकी घनता २२.० और व्यूहाणु-भार ४४.० है। इसका तरलन भी हो सकता है और सान्द्रीभाव भी।

भूय्य जारेय और जारक की एक दूसरेसे पहचान—(१) वाति में से भूयिक जारेय को ले जाओ। यदि जारक होगी तो भूयाति चतुर्जारेय का भूरा धूम उठने लगेगा, और यदि भूय्य जारेय होगी तो कोई परिवर्तन नहीं होगा, क्योंकि भूयिक जारेय की भूय्य जारेय पर कोई क्रिया नहीं होती।

(२) यदि क्षारातु को भूय्य जारेय में जलाया जाए तो भूयाति बच रहती है। यदि जारक में जलाया जाए तो भूयाति सर्वथा नहीं बचती।

(३) दह सर्जि (caustic potash) और अग्निविशल्कव (pyrogallol) के विलयन में वाति को डाल कर भली भाँति हिलाने से पता लग जाता है कि वाति जारक और भूय्य जारेय का मिश्र है अथवा नहीं। विलयन जारक का प्रचूषण कर लेता है किन्तु भूय्य जारेय का नहीं करता।

भूय्य जारेय का निबन्ध—इस वाति में क्षारातु को तपाने से भूयाति अलग हो जाती है। मापने से ज्ञात होगा कि वाति की दो परिमाओं से भूयाति की दो परिमाएँ प्राप्त होती हैं, अर्थात् वाति के एक व्यूहाणु से भूयाति का एक व्यूहाणु निकलता है। वाति की सापेक्ष घनता २२.० है और व्यूहाणु-भार ४४.०। भूयाति का व्यूहाणु भार २८.० है। अत: वाति के व्यूहाणु में जारक का भार ४४.०–२८.० = १६.० है, जो कि जारक के एक परमाणु का भार है। इसीलिये इसका व्यूहाणु-सूत्र $भू_२ज$ है।

भार के अनुसार जारक के १६ भाग एक परिमा के तुल्य हैं। अत: वाति की दो परिमाओं में दो परिमाएँ भूयाति की और एक परिमा जारक की होती है।

भूयिक जारेय (भू ज)—यह वाति भूयिक अम्ल के प्रह्रसन से प्राप्त होती है। अशुद्ध अवस्था में यह वाति बड़ी सुगमता से प्राप्त हो सकती है। धात्विक ताम्र और मन्द भूयिक अम्ल की शीत में प्रतिक्रियाओं से इसका उद्भव होता है। प्रतिक्रिया दुहरी होती है। पहले परमाण्विक (nascent) उदजन उन्मुक्त होती है। एवं—

$$२ उभूज_3 + ता = ता (भूज_3)_२ + २ उ \text{ (परमाण्विक)}$$
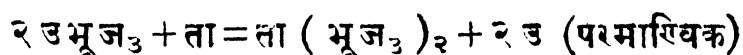
उन्मुक्त उदजन फिर भूयिक अम्ल का प्रह्रसन करती है जिससे भूयिक जारेय और पानी बनते हैं। एवं—

$$२ उभूज_3 + ६ उ = २ भूज + ४ उ_२ज$$
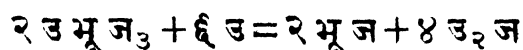
सम्पूर्ण प्रतिक्रिया को नीचे लिखे समीकार से दिखा सकते हैं—

$$३ ता + ८ उभूज_3 = ३ ता (भूज_3)_२ + २ भूज + ४ उ_२ज$$
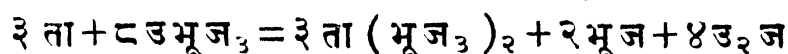
भूयाति के अन्य जारेय भी बनते हैं किन्तु उनकी मात्रा ताप और भूयिक अम्ल की तीव्रता पर निर्भर है। इसके साथ साथ ताम्र भूयीय भी बन जाता है।

संपरीक्षा ७७—द्विमुखी कूपी में ताम्र के टुकड़े डाल कर उन्हें पानी से ढक दो। कूपी के एक मुख में शृगाल-निवाप लगा कर निवाप का सिरा पानी के अन्दर कर दो। दूसरे मुख में प्रदान नाल लगा कर उसका सिरा मारुत द्रोणी में मधुच्छत्र निधाय के नीचे ले जाओ (देखो चित्र २०)। संकेन्द्रित भूयिक अम्ल की एक परिमा पानी की दो परिमाओं में मिला कर निवाप में से कूपी के अन्दर डाल दो। क्रिया तुरन्त आरम्भ होजाएगी और उद्भूयमान भूयिक जारेय और कूपी के भीतर की वायु की जारक की प्रतिक्रियाओं से उठने वाले धूम से कूपी भर जाएगी। धूम को निकल जाने दो। जब धूम सर्वथा निकल जाए तब भूयिक जारेय को पानी पर से इकट्ठी कर लो।

भूयिक जारेय के भौतिक गुण—यह रंगहीन वाति वायु से कुछ भारी है। यह पानी में नहीं घुलती। इसका तरलन हो सकता है।

भूयिक जारेय के रसायनिक गुण—यह वायु में नहीं जलती किन्तु यदि चण्डता से जलते हुए पदार्थ इसके अन्दर ले जाए जाएँ तो यह उनके दहन की पोषक है। भास्वर को जला कर झटपट इसके अन्दर ले जाने से वह बुझ जाएगी किन्तु यदि पहले भास्वर को भली भाँति जलाकर और प्रचण्ड ज्वालाएँ निकाल कर इसके अन्दर ले जाएँ तो बड़ी चमक के साथ उसका दहन होता रहेगा। इसका कारण यह है कि चण्डता से जलते हुए पदार्थों का ताप भूयिक जारेय का विच्छेद भूयाति और जारक में कर देता है जिससे वास्तव में उन्मुक्त जारक दहन का पोषण करती है।

जब भूयिक जारेय जारक के संस्पर्श में आती है तब साधारण ताप पर भी झट उससे मिल जाती है और भूरे रंग की वाति बना देती है। इस वाति को 'भूयाति चतुर्जारेय' (भू $_२$ ज$_४$) कहते हैं। एवं—

$$२ भूज + ज_२ = भू_२ज_४$$
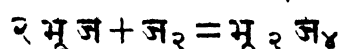
भूयिक जारेय का निबन्ध—नाल में भूयिक जारेय की नियत परिमा डालो और उसमें क्षारातु डाल कर तपाओ। क्षारातु का जारेय बन जाएगा और भूयाति उन्मुक्त हो जाएगी। मापने से पता लगेगा कि वाति की दो परिमाओं में भूयाति की एक परिमा है।

वाति की सापेक्ष घनता १५.० और व्यूहाणु-भार ३०.० है। व्यूहाणु वाति की दो परिमाओं का

द्योतक है। भूयाति की एक परिमा अर्थात् आधे व्यूहाणु (परमाणु) का भार १४·० होता है। अतः शेष भार १६·० जारक की एक परिमा का है। अतः भार के अनुसार भूयिक जारेय भूयाति और जारक के १४·० : १६·० के अनुभाग से बनी है और परिमा के अनुसार वाति की दो परिमाएँ भूयाति और जारक की एक एक परिमा के संयोग से बनती हैं। अतः व्यूहाणु-सूत्र भू ज है।

भूयाति द्विजारेय (भू ज$_२$)—हम देख चुके हैं कि साधारण ताप पर भूयिक जारेय और जारक के मिलने से भूयाति चतुर्जारेय (भू$_२$ ज$_४$) बन जाती है। अधिक ताप पर ले जाने से इसके व्यूहाणु दो भागों में विभक्त हो जाते हैं जिनका सूत्र भू ज$_२$ है। इस वाति को 'भूयाति द्विजारेय' कहते हैं। सीस भूयीय आदि भूयीयों को तपाने से भी यह वाति उत्पन्न हो जाती है।

इस वाति का रंग आरक्त-बभ्रु (reddish brown) होता है और इसमें से अरुचिकर गन्ध आती है। सूँघ लेने से यह हानिकारक होती है क्योंकि विषैली है। यह जारयित्री है। अतः इसमें जलने वाले पदार्थ जारक के कुछ भाग का अपहरण कर लेते हैं। एवं—

$$\text{भू ज}_२ = \text{भू ज} + [\text{ज}] \; (\text{जायमान})$$

भूयाति चतुर्जारेय (भू$_२$ ज$_४$)—कई भारी धातुओं के भूयीयों को तपाने से यह जारेय उत्पन्न होती है। सीस भूयीय को नाल में तपाने से यह वाति साधारण रीति से पानी पर से इकट्ठी की जा सकती है। सीस भूयीय के विबन्धन का समीकार यह है—

$$\text{२ सी (भू ज}_३\text{)}_२ = \text{२ सी ज} + \text{४ भू ज}_२ + \text{ज}_२$$

यदि भूयाति चतुर्जारेय को ठण्डे पानी में घोलें तो भूय्य अम्ल और भूयिक अम्ल बन जाते हैं, और यदि उष्ण पानी में घोलें तो भूयिक अम्ल और भूयिक जारेय बनते हैं।

थोड़े ताप पर भूयाति द्विजारेय (भू ज$_२$) ही संघनित हो कर भूयाति चतुर्जारेय (भू$_२$ ज$_४$) बन जाती है।

यह वाति बहुत प्रबल जारयित्री है और शुल्बारिक अम्ल बनाने के बहुत काम आती है।

अम्ल अजलेय (acid anhydrides)—भूयाति त्रिजारेय (भू$_२$ ज$_३$) और पञ्च-जारेय (भू$_२$ ज$_५$) का वर्णन करने की अधिक आवश्यकता नहीं क्योंकि इनका प्रयोग बहुत थोड़ा होता है। भूयाति के अम्लों के साथ इनका घना सम्बन्ध है। पानी में घुल कर इनके अम्ल बन जाते हैं, यथा—

$$\text{भू}_२\text{ ज}_३ + \text{उ}_२\text{ ज} = \text{२ उ भू ज}_२$$

$$\text{भू}_२\text{ ज}_५ + \text{उ}_२\text{ ज} = \text{२ उ भू ज}_२$$

कई और जारेय भी ऐसे हैं जो पानी के साथ मिलकर अम्ल बना देते हैं। ऐसे जारेयों को 'अम्ल अजलेय' कहते हैं।

भूय्य अम्ल और भूयित (nitrites)—भूय्य अम्ल का सूत्र उ भू ज$_२$ है किन्तु इसका जारण हो कर बड़ी सरलता से भूयिक अम्ल बन जाता है। नीच (low) तापों पर इसका तरल रूप में अजलेय (भू$_२$ ज$_३$) बनाया जा सकता है जो पूर्णतया शुष्क हो जाने पर वातिरूप में परिणत किया जा सकता है।

भूय्य अम्ल के लवणों को 'भूयित' कहते हैं। दहातु भूयीय को तपाने से दहातु भूयित (द भू ज$_२$) बनाया जा सकता है। एवं—

$$\text{२ द भू ज}_३ = \text{२ द भू ज}_२ + \text{ज}_२$$

क्षारातु भूयित भी इसी भाँति बनाया जाता है।

यदि भूयितों को मन्द अम्लों के साथ तपाया जाए तो भूय्य अम्ल बन जाता है जो पुनः विभक्त हो कर भूयिक जारेय, भूयाति चतुर्जारेय और पानी में परिणत हो जाता है। एवं—

$$२द\,भूज_२ + २\,उ_२\,शु\,ज_४ = २\,द\,उ\,शु\,ज_४ + भू\,ज + भू\,ज_२ + उ_२\,ज$$
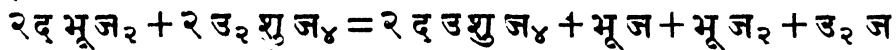
इस प्रकार के भूयिक जारेय और चतुर्जारेय के मिश्र को क्षारक के विलयन में से ले जाने से भूयित बन जाता है।

भूय्य अम्ल जारयिता और प्रह्सिता दोनों का काम करता है। दहातु जम्बेय का जारण कर के जम्बुकी का उन्मोचन करता है और अयस्य लवणों का जारण कर के अयसिक लवण बना देता है। यदि भूय्य अम्ल में दहातु अतिलोहकीय (potassium permanganate) मिला दिया जाए तो उसका रक्त रंग उड़ जाता है और भूय्य अम्ल का जारण होकर भूयीय बन जाता है।

भूयितों की परीक्षा

(१) मन्द अम्लों में डाल कर तपाने से भूयितों में से भूयाति अतिजारेय का भूरा धूम अत्यधिक मात्रा में निकलने लगता है।

(२) मन्द शुल्बारिक अम्ल की उपस्थिति में ये से दहातु जम्बेय में से जम्बुकी का उन्मोचन करते हैं। उसमें मण्ड-लेपी मिलाने से रंग नीला हो जाता है॥

छब्बीसवाँ अध्याय

प्रांगार—अपरावर्तना

प्राप्ति-स्थान—सब तत्त्वों से अधिक परिचित तत्त्व प्रांगार है जो प्रकृति (nature) में बहुत से पदार्थों के अन्दर संयुक्त तथा स्वतन्त्ररूप में पाया जाता है। हीरा शुद्ध प्रांगार ही है और काष्ठांगार, पत्थर का कोयला और लिखाश्म (graphite) भी अधिकांश स्वतन्त्र प्रांगार के ही बने हुए हैं। प्रांगार द्विजारेय इसका सामान्य वाति संयोग है जो प्राणियों के श्वास और दहन से उत्पन्न होता है। प्राकृतिक वाति (natural gas) और मृत्तैल (petroleum) अधिकांश में प्रांगार और उदजन के संयोग हैं। शैलों में प्रांगारीयों के बहुत से स्तृत (strata) होते हैं जिनमें से मुख्य चूर्णातु प्रांगारीय (चूर्ण प्रस्तर) है जो संसार के सभी भागों में पाया जाता है। उद्भिद्- और प्राणि-पदार्थों के शरीरों में भी इसकी मात्रा बहुत अधिक होती है और इसके अगिनत ही ऐसे संयोग हैं जो प्राणिमात्र के भरण पोषण में सहायता देते हैं। किं बहुना प्रांगार जीवत् शरीरों (living matter) का सारभूत संघटक है।

प्रांगार के अपरावर्तिक रूप (allotropic modifications)—जारक की भाँति इस तत्त्व के भी कई भिन्न रूप हैं जिनका निबन्ध एकसा है। ऐसे तीन रूपों में से दो स्फटात्मक (crystalline) हैं और एक अस्फटात्मक (amorphous) है। हीरा और लिखाश्म स्फटात्मक हैं और साधारण प्रांगार अस्फटात्मक।

हीरा—प्रांगार का अत्यन्त शुद्ध रूप हीरा है। हीरा भारतवर्ष, ब्राज़ील (Brazil), दक्षिण

कालद्वीप (South Africa) और दक्षमहाद्वीप (Australia) में पाया जाता है। मद्रास में गोलकुण्डा की खानों से निकलने वाले हीरे अपनी शुद्धता और चमक के कारण अधिक मूल्यवान् होते हैं। शुद्ध हीरा रंगहीन और पारदर्श होता है किन्तु अशुद्धताओं की मिलावट से इसके कई रंग होते हैं, यथा पीला, आपद्म (pink), नीला, हरा, काला आदि। कृत्रिम हीरा अंगार से बनाया जाता है। शुद्ध अंगार को प्रचण्ड ताप पर पिघले हुए अयस् में प्रविलीन करके सारे पुञ्ज को एक साथ क्षिप्रता से ठण्डा कर देने से हीरे के स्फट बन जाते हैं। कठिनतम पदार्थ होने के कारण यह अन्य कठिन पदार्थों के काटने और प्रमार्जन (polish) करने के प्रयोग में लाया जाता है। काच काटने और शैल-छिद्रण (rock-boring) के उपकरणों (instruments) के आगे भी हीरा लगाया जाता है। यह पानी से साढ़े तीन गुणा भारी होता है और विद्युत् का असंवाहक (non-conductor) है। हीरा अद्राव्य (infusible) है किन्तु जब इसे जारक के अभाव (absence) में चण्ड ताप पर तपाया जाता है तब फूल कर इसका लिखाश्म का काला पुञ्ज बन जाता है। यदि जारक भी उपस्थित हो तो हीरा जलने लगता है और जल कर इसकी प्रांगार द्विजारेय बन जाती है। स्फटिक (quartz) और हीरे में यही पहचान है कि स्फटिक जारक में नहीं जलता।

लिखाश्म (graphite)—लिखाश्म अधिकतर लंका, साइबेरिया, केलिफ़ोर्निया और केनेडा में पाया जाता है। वाणिजिक लिखाश्म अधिकांश पत्थर के कठोर कोयले (hard coal) को जारक की अनुपस्थिति में प्रचण्ड ताप में तपा कर भी बनाया जाता है। साधारण अयश्चूर्ण को, जिसमें प्रांगार की मात्रा होती है, उदनीरिक अम्ल में डालने से घुलकर उसका लोहे का अयो नीरेय (iron chloride) बन जाता है और शेष लिखाश्म बच जाता है। लिखाश्म काले रंग का चमकता हुआ और कोमल पदार्थ है। स्पर्श में चिकना होने के कारण इसे उपस्नेह (lubricant) के रूप में भी काम में लाते हैं। हीरे से यह हलका होता है। इसकी घनता लगभग २·१५ है। इससे अंकनियाँ (pencils) और मूषाएँ भी बनती हैं। लोहे की वस्तुओं की रक्षा के लिये इसका बना हुआ रंगलेप (paint) अथवा प्रमार्ज (polish) वरता जाता है। लिखाश्म ऊष्मा और विद्युत् का सुसंवाहक है।

अस्फटात्मक प्रांगार (amorphous carbon)—शुद्ध अस्फटात्मक प्रांगार शर्करा (sugar) से प्राप्त किया जाता है। शुद्ध शर्करा को दहातु के पात्र में वायु के अभाव में तपाया जाता है। शर्करा का विबन्धन हो कर पानी और प्रांगार बन जाते हैं। संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल द्वारा भी शर्करा में से पानी का अपहरण करने से शेष काले रंग का प्रांगार रह जाता है। अनेक प्रकार के निम्नलिखित पदार्थों से प्रांगार प्राप्त हो सकता है।

पत्थर का कोयला और न्यंगार (coke)—युगों से दबे हुए उद्भिदों के नाना प्रकार के पत्थर के कोयले बने हुए मिलते हैं। पत्थर के कोयले के मुख्य दो भेद हैं जिनमें प्रांगार की प्रतिशतता अधिक होती है—(१) मृदु अथवा जतुक्य (bituminous), और (२) कठोर अथवा विद्यामाश्म (anthracite)। कठोर पत्थर के कोयले अथवा विद्यामाश्म में लगभग सारा का सारा प्रांगार असंयुक्त (uncombined) अवस्था में होता है, किन्तु मन्द अथवा जतुक्य पत्थर के कोयले में प्रांगार के साथ उदजन, जारक, भूयाति और शुल्बारि मिले हुए होते हैं। वायु के अभाव में मृदु पत्थर के कोयले को जलाने से बड़े जटिल परिवर्तन हो जाते हैं, जिनसे प्रांगार के कई

उपयोगी बाष्प- और वाति-संयोग उन्मुक्त हो कर शेष न्यंगार रह जाता है। न्यंगार में स्वतन्त्र प्रांगार और खनिज पदार्थ मिले होते हैं। अंगार-वाति बनाने वाले वक-भाण्डों में भी न्यंगार पाया जाता है और पत्थर के कोयले के बड़े बड़े ढेरों को जला कर भी न्यंगार बनाया जाता है। पत्थर के कोयले को जलाने मे जो पदार्थ निकल कर उड़ जाता है उसे 'उत्पत' कहते हैं। खनिज पदार्थ की राख बन जाती है। कठिन पत्थर के कोयले में उत्पत पदार्थ की मात्रा ५ से ८% होती है और मृदु में ३० से ३५%।

काष्ठांगार (charcoal)—काष्ठांगार लकड़ी से बनता है। प्राय: लकड़ियों की चिति बना कर उसे मिट्टी से लीप दिया जाता है। वह एक प्रकार की भट्टी बन जाती है जिसमें वायु के लिये छोटा सा मार्ग रख दिया जाता है। उस छिद्र से वायु की अल्प मात्रा ही अन्दर जा सकती है इसलिये लकड़ी के अपूर्ण दहन (incomplete combustion) से काष्ठांगार (कोयला) बन जाता है। इस रीति से सारे उपयोगी उत्पत पदार्थ व्यर्थ में नाश हो जाते हैं। आजकल काष्ठांगार लकड़ी के नाशक आसवन से भी बनाया जाता है जिससे काष्ठ सुषव (wood alcohol), शुक्तिक अम्ल (acetic acid) आदि बहुमूल्य उत्पत पदार्थ संघनन द्वारा इकट्ठे कर लिये जाते हैं।

काष्ठांगार को पानी में फेंकने से वह तैरता रहता है क्योंकि इसके रन्ध्रों में वायु भरी होती है। वास्तव में काष्ठांगार पानी से भारी है। इसको पानी के पात्र में डाल कर छोटे से पत्थर के नीचे दबा दो और पानी को उबालो। काष्ठांगार में से वाति के बुलबुले बन कर निकल जाएँगे। फिर पत्थर उठा लेने से भी काष्ठांगार नहीं तैरेगा।

काष्ठांगार में, विशेष कर सद्य: प्रज्वलित काष्ठांगार में, वातियों का प्रचूषण करने की शक्ति बहुत है। मल प्रणालों (sewers) की दुर्गन्धिमती वातियों का प्रचूषण करवाने के लिये इसका प्रयोग होती किया जाता है।

वायु में काष्ठांगार सरलता से जल जाता है और प्रांगार द्विजारेय उत्पन्न होती है। जल जाने से पीछे खनिज भस्म (mineral ash) रह जाती है। काष्ठांगार और न्यंगार दोनों ही इन्धन के काम में आते हैं और विशेष कर जारेयों के प्रह्रासन के लिये बहुत उपयोगी हैं।

शुष्क प्रांगार सर्वथा शुष्क जारक में नहीं जलता। साधारण ताप पर सब प्रकार का प्रांगार बहुत जड़ (inert) होता है। दूसरे तत्त्वों के साथ संयुक्त होने के लिये इसे ऊष्मा की आवश्यकता होती है।

अस्थ्यंगार (animal charcoal) अथवा अस्थि-काल (bone-black)—अस्थियों को वायु के अभाव में वकभाण्डों में डाल कर तपाने से अस्थ्यंगार बनाया जाता है। अस्थ्यंगार में चूर्णातु भास्वीय आदि अशुद्धताएँ बहुत होती हैं। प्रांगार केवल १०% होता है। इस प्रांगार में रंजक पदार्थ को प्रचूषण करने की शक्ति बहुत होती है इसलिये इसको शर्करा के संस्कार (refining) के लिये प्रयोग में लाया जाता है। रंजक पदार्थ के अपहरण से शर्करा के रंगहीन स्फट बन जाते हैं। सूक्ष्मता से पिसे हुए अस्थ्यंगार को 'अस्थि-काल' कहते हैं।

---

* लकड़ी, अंगार, अस्थि आदि पदार्थों को वायु के अभाव में जला कर उनका विबन्धन करने की विधा को 'नाशक आसवन' (destructive ditillation) कहते हैं (देखो पृष्ठ ६५)।

दीप-काल (lampblack)—दीप-काल में अस्फटात्मक प्रांगार अपेक्षया शुद्धतर रूप में होता है। यह तैल, वाति, उद्यास (resin), सरल-तैल (turpentine) आदि प्रांगार वाले इन्धनों के अपूर्ण दहन से प्राप्त होता है। यह मुद्रण-मसी (printer's ink) बनाने के प्रयोग में आता है। कज्जल (soot) भी अशुद्ध दीप-काल ही होता है।

वाति-प्रांगार (gas-carbon)—वाति-प्रांगार अंगार-वाति बनाने वाले वकभाण्डों आदि के अन्दर पार्श्वों में जम जाता है। यह बहुत कठिन होता है और ऊष्मा और विद्युत् का सुसंवाहक है। इससे विद्युत्समूहाओं के प्रांगार-ध्रुव (carbon poles) और चापदीपों (arc-lamps) की प्रांगार शलाकाएँ (carbon rods) बनती हैं।

प्रांगार प्रह्रसिता के रूप में—प्रांगार के साथ कई धातुओं के जारेयों को तपाने से उनका प्रह्रसन हो कर धातुएँ बन जाती हैं। प्राय: प्रांगार एकजारेय भी साथ साथ बन जाती है। अयस्कों (ores) में से धातु निकालने के लिये पहले उनका जारेय बना लिया जाता है। फिर जारेय में से पत्थर के कोयले (अर्थात् प्रांगार) द्वारा धातु प्राप्त कर ली जाती है। सीस, कुप्यातु और लोहे के जारेयों में से प्रांगार द्वारा धातु निकल आती है।

संपरीक्षा ७८—सीस के जारेय को प्रांगार में मिला कर चीनमृत्सा मूषा में तपाओ। सीस धातु-रूप में निकल आएगा और प्रांगार जारक से संयुक्त हो जाएगा।

प्रांगार के भिन्न भिन्न रूप रसायनिक दृष्टि से एक हैं—यह बात निम्नलिखितरूप से सिद्ध होती है—

(१) प्रांगार को एक रूप से दूसरे में परिणत कर सकते हैं। हीरा और पत्थर का कोयला बड़ी सरलता से लिखाश्म में परिणत हो जाते हैं।

(२) यदि भिन्न भिन्न प्रकार के प्रांगारों को तोल कर समान मात्रा में जलाया जाए तो प्रांगार द्विजारेय की उत्पत्ति समान मात्रा में होती है। अन्य कोई वाति उत्पन्न नहीं होती। प्राय: अल्प मात्रा में खनिज भस्म शेष रह जाती है। दहन का समीकार यह है—

$$प्र + ज_२ = प्रज_२$$
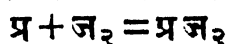
प्रांगार को चाहे किसी रूप में ले लो भार के अनुसार प्रांगार के १२ भाग जारक के ३२ भागों से संयुक्त हो कर ४४ भाग प्रांगार द्विजारेय के बना देंगे। इस रीति से न केवल प्रांगार के भिन्न भिन्न रूपों की एकता ही सिद्ध होती है किन्तु प्रांगार द्विजारेय का निबन्ध भी ज्ञात हो जाता है।

संपरीक्षा ७९—छोटे से चीन-मृत्सा पोत (boat) में प्रांगार का टुकड़ा डाल कर दोनों को तोल लो। पोत को दहन नाल में रख दो। नाल के एक सिरे से संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल वाली द्विमुखी कूपी जोड़ दो और दूसरेसे कन्दों का कुलक (set) जिनमें पहले सर्जि डाल कर उन्हें तोल लिया हो। दहन नाल के अन्दर पोत और सर्जि-कन्दों के बीचों बीच ताम्र जारेय का स्कन्ध (column) बना दो जिसे छोटे से वाति भ्राष्ट्र से तपाए रखो (चित्र ३८)। इस ताम्र जारेय से यह लाभ होगा कि जो मात्रा प्रांगार एकजारेय की बनेगी यह उसका
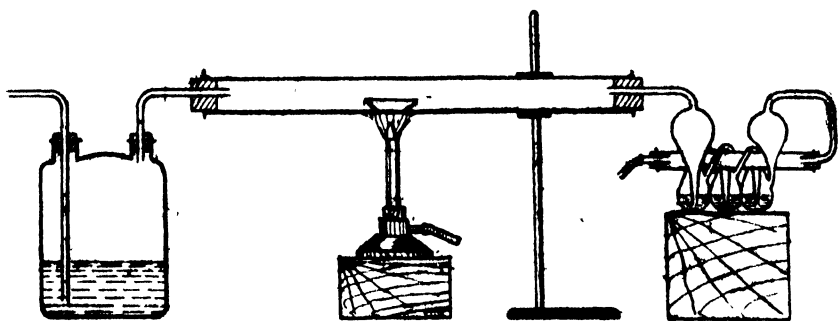
चित्र ३८

पूर्णतया जारण करता जाएगा। अब प्रांगार को पिनाल ज्वाला से तपाओ और शुल्बारिक अम्ल में से लँघा कर सुखाई हुई जारक का मन्थर प्रवाह प्रांगार के ऊपर से ले जाओ। जब तक सभी कन्दों में से समान गति से वाति के बुलबुले न उठने लगें तब तक प्रांगार को तपाते और उसके ऊपर से शुष्क जारक ले जाते जाओ। सर्जि-कन्दों में से वाति के बुलबुले उठना इस बात का द्योतक है कि सर्जि वाति का प्रचूषण करने से हट गई है। साधित्र के ठण्डा हो जाने पर पोत को फिर तोलो। भार में जितनी न्यूनता होगी वह उस प्रांगार का भार होगा जो जल चुकी है। सर्जि-कन्दों को भी फिर से तोलो। उनके भार में जितनी वृद्धि होगी वह उस प्रांगार द्विजारेय के भार के तुल्य होगी जो इस विधा से बन कर सर्जि द्वारा प्रचूषित हुई।

इससे ज्ञात होगा कि प्रांगार द्विजारेय बनने में भार के अनुसार जारक के ८·० भाग प्रांगार के ३·० भागों से संयुक्त हुए हैं। अतः प्रांगार का समसंयुज भार ३·० है॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

प्रांगार द्विजारेय (carbon dioxide)

प्रांगारिक अम्ल (carbonic acid) और प्रांगारीय (carbonates)

सतरहवीं-अठारहवीं शताब्दी विक्रमी में इस बात का ज्ञान हुआ कि जो वाति लकड़ी जलाने अथवा खटी (chalk) पर अम्ल की क्रिया से उत्पन्न होती है वह वायु से सर्वथा भिन्न है क्योंकि वह दहन की पोषक नहीं। तत्पश्चात् यह भी पता लगा कि यह वाति खटी का संघटक है। इसका नाम स्थायी वायु (fixed air) रख दिया गया। कुछ वर्षों के पीछे फ्राँस देश के रसायनज्ञ लावाज़्येर् (Lavoisier) ने इस वाति को प्रांगार और जारक से उत्पन्न करके दिखा दिया कि यह प्रांगार का द्विजारेय है।

प्राप्ति-स्थान—प्रांगार द्विजारेय अथवा प्रांगारिक अजलेय, $प्रज_2$ (carbonic anhydride), वायु में होती है और कुओं और गुफाओं में भी पाई जाती है। यह प्राकृत जलों में घुली हुई भी मिलती है। धातुओं के साथ संयुक्तरूप में यह अधिकतर चूर्ण प्रस्तर, $चूप्रज_3$, भ्राजिय चूर्ण प्रस्तर (dolomite) तथा अन्य शैलों में पाई जाती है। यह वाति प्रांगारिक अम्ल का अजलेय है और अम्ल से इसकी पहचान करने के लिये इसको 'प्रांगारिक अम्ल' भी कह देते हैं। पत्थर के कोयले की खानों में उत्स्फोटन होने से भी यह उत्पन्न हो जाती है और इसे 'काल-निवाति' अथवा 'पश्च-निवाति' (chloke-damp or after-damp) कहते हैं।

प्रांगार द्विजारेय की प्राप्ति—प्रयोगशाला में प्रांगार द्विजारेय को उदनीरिक अम्ल और चूर्णातु प्रांगारीय, $चूप्रज_3$, की प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न किया जाता है। प्रकृति (nature) में चूर्णातु प्रांगारीय खटी, चूर्ण-प्रस्तर, प्रवाल और शुक्ति आदि अनेकों पदार्थों में पाई जाती है। राजाश्म (marble) तो प्रायः शुद्ध चूर्णातु प्रांगारीय का ही रूपान्तर है। इससे प्राप्त की हुई वाति अपेक्षया अधिक शुद्ध होती है। प्रतिक्रिया का समीकार यह है—

$$चूप्रज_3 + २ उनी = चूनी_2 + प्रज_2 + उ_2ज$$
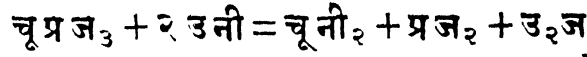
श्वेत सान्द्र लवण, चूर्णातु नीरेय ($चूनी_2$), पानी में घुला रहता है और अविलेय वाति अलग हो जाती है। इसको अधोनिरसन द्वारा अथवा पानी पर से इकट्ठी कर सकते हैं।

चूर्णातु प्रांगारीय के विबन्धन के लिये मन्द शुल्बारिक अम्ल का प्रयोग नहीं किया जाता क्योंकि ऐसा करने से अविलेय चूर्णातु शुल्बीय बन कर प्रांगारीय की डलियों पर जम जाता है और अम्ल की क्रिया को रोक देता है। यदि मन्द शुल्बारिक अम्ल द्वारा शुद्ध वाति प्राप्त करनी हो तो शुद्ध क्षारातु प्रांगारीय को प्रयोग में लाना चाहिये। प्रतिक्रिया का समीकार यह है—

$$क्षा_2प्रज_3 + उ_2शुज_4 = क्षा_2शुज_4 + प्रज_2 + उ_2ज$$
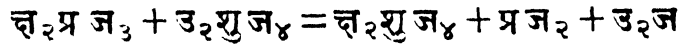
संपरीक्षा ८०—द्विमुखी कूपी में राजाश्म डाल कर उसमें शृगाल-निवाप और मुड़ी हुई नाल लगा दो। नाल का दूसरा सिरा रम्भ के भीतर डाल कर तले तक ले जाओ (चित्र ३९)। निवाप में से समान मात्रा में पानी मिला कर मन्द किया हुआ उदनीरिक अम्ल डाल दो। वाति बन कर अधोनिरसन द्वारा रम्भ में इकट्ठी होती जाएगी। यदि वाति में से उदनीरिक अम्ल का लेश दूर करना चाहो तो दूसरी द्विमुखी कूपी में पानी डाल कर वाति को पानी में से ले जाओ।

चित्र ३९
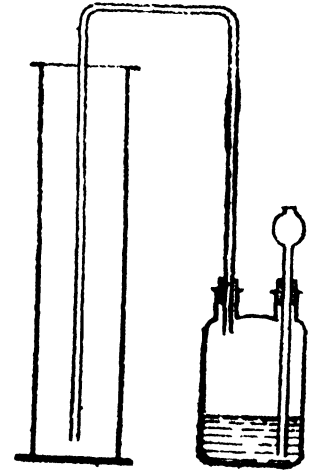
प्रांगारीयों और द्विप्रांगारीयों के तपाने से वाति की प्राप्ति—जीव चूर्णक, चूज, को बनाते समय प्रांगार द्विजारेय अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होती है। चूर्णातु प्रांगारीय (चूर्ण प्रस्तर) को भट्टियों में प्रचण्ड अग्नि से जलाते हैं और निम्नलिखित प्रतिक्रिया होती है—

$$चूप्रज_3 = चूज + प्रज_2$$
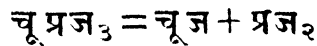
अधिकांश धातुओं के प्रांगारीयों को तपाने से उनका इसी प्रकार से विबन्धन हो जाता है। यदि क्षारातु अथवा दहातु का प्रयोग करना हो तो केवल उनके अम्ल प्रांगारीय को तपाने से ही प्रांगार द्विजारेय बनेगी। एवं—

$$२ क्षाउप्रज_3 = क्षा_2प्रज_3 + प्रज_2 + उ_2ज$$
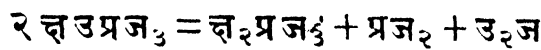
हम जान चुके हैं कि श्वास से, प्रांगार के संयोगों के वायु में दहन से और उद्भिद्- और प्राणि-पदार्थों के गलने सड़ने से प्रांगार द्विजारेय की प्रचुर मात्रा उत्पन्न होती रहती है। किण्वन विधा (process of fermentation) में भी जब शर्करा सुपव (alcohol) में परिणत होती है तब यह वाति अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होती है। अतः यवासवनियों (breweries) में से इस वाति की प्राप्ति बहुत होती है। संपरीक्षा के लिये गन्ने की खाँड के विलयन को पलिघ में डाल कर तपाओ और उसमें थोड़ा सा किण्व (yeast) डाल दो और प्रदान नाल द्वारा वाति इकट्ठी कर के उसकी परीक्षा कर लो।

प्रांगार द्विजारेय के भौतिक गुण—यह वाति रंगहीन होती है और इसमें से धीमी सी गन्ध आती है। इसका स्वाद हलका खट्टा होता है। यद्यपि यह वाति विषैली नहीं तथापि इसमें प्राणी

जीवित नहीं रह सकते क्योंकि जारक के अभाव मे साँस घुट जाता है। यह चूर्णक-जल को दूधिये रंग का बना देती है और नीले शेवल को रक्त कर देती है।

प्रांगार द्विजारेय वायु से भारी होती है। इसकी घनता २२.० और व्यूहाणु-भार २४.० है। यही कारण है कि यह अन्धे कुओं और गहरे गढ़ों में इकट्ठी हो जाती है। प्राण रक्षा के हित ऐसे स्थानों में प्रवेश करने से पहले वहाँ जलती हुई बत्ती लटका कर परीक्षा कर लेनी चाहिये। यदि बत्ती जलती रहे तो कोई भय नहीं।

यह वाति पानी में पर्याप्त मात्रा में घुल जाती है। साधारण निपीड में यह उसमें उसकी परिमा के तुल्य घुल जाती है, किन्तु निपीड जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक इसकी मात्रा पानी में घुलेगी। विक्षार-जल (soda water) में अत्यधिक निपीड के अन्दर प्रांगार द्विजारेय ही घुली होती है। उष्ण करने से सारी वाति निकल कर उड़ जाती है। पानी की अपेक्षा सुपव में यह और भी अधिक घुल जाती है।

इसका तरलन बड़ी सरलता से हो सकता है। इसका संकट ताप ३१° श. है। यवासवनियों में इसका तरल बना कर लोहे के रम्भों में मूँद कर विक्षार-जल बनाने के लिये बेचा जाता है। इसका सान्द्र भी बन सकता है।

प्रांगार द्विजारेय के रसायनिक गुण—यह वाति वायु में नहीं जलती और साधारणतया जीवन और दहन की पोषक भी नहीं है। किन्तु भ्राजातु, क्षारातु और दहातु के समान जो धातु उच्च ताप में जलते हैं, वे इसका विबन्धन प्रांगार और जारक में कर देते हैं। जारक की सहायता से वे इसमें जलते रहते हैं और प्रांगार को अलग कर देते हैं। एवं—

$$२ भ्र + प्र ज_२ = २ भ्र ज + प्र$$
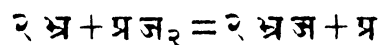
संपरीक्षा ८९—प्रांगार द्विजारेय से भरे हुए कलश में जलती हुई बत्ती ले जाओ। बत्ती बुझ जाएगी। पुनः उसमें भ्राजातु की जलती हुई पट्टिका डाल दो। वह बुझेगी नहीं, जलती रहेगी। कलश में श्वेत भ्राजातु जारेय और प्रांगार के काले लवों का मिश्र रह जाएगा। इस मिश्र को मन्द उदनीरिक अम्ल में डाल कर उबालने से भ्राजातु जारेय घुल जायगा और पावन द्वारा प्रांगार अलग हो सकेगा। प्रांगार की परीक्षा उसको जला कर द्विजारेय बनाने से हो सकती है। इस संपरीक्षा से सिद्ध हुआ कि प्रांगार द्विजारेय में प्रांगार होता है। क्षारातु और दहातु को इसमें जलाने से उनके प्रांगारीय और प्रांगार बनेंगे।

विद्युत्स्फुलिंगों के लगातार संचारों से प्रांगार द्विजारेय का विबन्धन प्रांगार और जारक में हो सकता है। ऊष्मा से इसका विबन्धन प्रांगार एकजारेय और जारक में हो जाता है। रक्तोष्ण प्रांगार पर से ले जाने से इसका प्रहसन होकर प्रांगार एकजारेय बन जाती है। वायु से भारी होने और दहन की पोषक न होने के कारण आग को बुझाने के लिये यह बहुत उपयोगिनी है। ऐसे साधित्र बने हुए हैं जिनको आग में फेंक देने से वे टूट जाते हैं और उनमें से प्रांगार द्विजारेय उत्पन्न हो कर वायु का प्रवेश रोक देती है और आग को बुझा देती है।

प्रांगारिक अम्ल और प्रांगारीय—पानी में घुल जाने से प्रांगार द्विजारेय का प्रांगारिक अम्ल बन जाता है। एवं—

ता (भू ज$_3$)$_2$.३ उ$_2$ ज है। उन्हें तपाने से हरे रंग का पैठिक लवण बन जाता है और बहुत अधिक तपाने से काला जारेय बन जाता है।

ताम्र (ताम्रिक) शुल्बीय, ताशुज$_4$—यह लवण ताम्र की उष्ण संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल पर क्रिया से उत्पन्न होता है। शुल्बारिक अम्ल की ताम्रिक प्रांगारीय अथवा जारेय पर क्रिया होने से भी यह बन जाता है। उद्वाष्पन से कठिन, नीले रंग के तिर्यग्वर्गरूप स्फट बन जाते हैं जिन्हें 'नील काचर' अथवा नीला थोथा कहते हैं। इनका निबन्ध ताशुज$_4$. ५ उ$_2$ज होता है। ये स्फट शीत जल की अपेक्षा उष्ण जल में अधिक विलेय होते हैं। इन्हें १००° श. तक तपाने से ताशुज$_4$. उ$_2$ज बन जाता है और २४०° श. तक तपाने से श्वेत रंग का क्षोद, जिसे 'अजल ताम्र शुल्बीय', ताशुज$_4$, कहते हैं, प्राप्त हो जाता है। यह शुल्बीय बड़ी सरलता से पानी को ग्रहण कर के नीले रंग का संयोग बना देता है और यह तिक्ताति से भी संयुक्त हो जाता है। इसका पैठिक लवण, ताशुज$_4$. ताज, भी बनता है। शुल्बीय को चण्ड ताप पर तपाने से जारेय बन जाता है।

ताम्र के अन्य संयोग—रक्त जारेय, ता$_2$ज, हरा प्रांगारीय (पैठिक), तथा शुल्बेय, ताशु, ताम्र के कुछ अन्य संयोग हैं। शुल्बेय तप्त ताम्र और शुल्बारि के संयोजन से अथवा ताम्र लवण के विलयन में से शुल्बारीयित उदजन को ले जाने से बनता है। ताज जैसे ताम्रिक संयोगों में ताम्र का एक परमाणु उदजन के दो परमाणुओं का स्थान लेता है और ताम्रय (cuprous) संयोगों में, जिनमें से ता$_2$ज पीठ है, ताम्र का एक परमाणु उदजन के एक परमाणु का प्रतिस्थापन करता है।

अयस् (लोहा)

अयस्, अ—यह आधूसर श्वेत (greyish white) धातु है जिसका प्रमार्जन हो सकता है। ...था में लोहा बहुत दृढ (tenacious) और कुट्टय होता है। अपेक्षया यह धातु कोमल होती ... इसके तन्तु भी खिंच सकते हैं। लोहा चुम्बकित भी हो जाता है। भिन्न भिन्न प्रकार के लोहे के ...ण भी उसमें मिली हुई अशुद्धताओं के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। लोहे के शुद्धतम रूपों में से एक ...अंगारित अयस् (wrought iron) है। यह दृढ और तन्तुमत् (fibrous) होता है। वज्रायस में, जो कि कई बार बहुत कठोर होता है, थोड़ा सा प्रांगार मिला होता है। संचायस (cast iron) भिदुर होता है। उसमें प्रांगार अधिक होता है और इसके अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी मिले होते हैं। शुद्ध अयस् की सापेक्ष घनता लगभग ७.८ है। शुद्ध लोहे के दो टुकड़ों को रक्तोष्ण कर के यदि हथौड़ों से पीटा जाए तो उनका संधान (welding) हो जाता है। लोहा पानी में नहीं घुलता।

जल-बाष्प और प्रांगार द्विजारेय वाली वायु में लोहे को मण्डूर लग जाता है, किन्तु जिस वायु में ये संयोग न हों उसमें इसे मण्डूर नहीं लगता। मण्डूर मुख्यत: अयसिक उदजारेय, अ (ज उ)$_3$, होता है। इसे वायु अथवा जारक में तपाने से काला जारेय, अ$_3$ज$_4$, बन जाता है। उष्ण लोहे पर से भाप को ले जाने से भी यह जारेय बन जाता है (देखो पृष्ठ ५६)। प्राकृत अवस्था में यह चुम्बायस अयस्क अथवा अयस्कान्त (magnetic iron ore or loadstone) के रूप में भी पाया जाता है। लोहे की क्रिया प्राय: सामान्य अम्लों पर हो जाती है किन्तु मन्द अम्लों पर

अधिक सरलता से होती है। उष्ण शुल्बारिक अम्ल पर इसकी क्रिया मन्थर होती है किन्तु अति संकेन्द्रित भूयिक अम्ल पर इसकी कोई क्रिया नहीं होती और यदि होती है तो नाममात्र को।

इसके जारेयों को उद्जन अथवा प्रांगार एकजारेय के प्रवाह में तपा कर उनका प्रह्रासन करने से लोहा प्राप्त हो जाता है (देखो पृष्ठ २५, ११६)। लोहे के संयोगों को अंगार पर रख कर प्रह्रासक धमनाड ज्वाला में तपाने से भी लोहे के लव प्राप्त हो जाते हैं।

अयस् के जारेय—काले जारेय के अतिरिक्त लोहे के दो पैठिक जारेय भी होते हैं। वायु के अभाव में अयस्य शुल्बीय के विलयन में त्तारक मिलाने से श्वेत जलीयित रूप में अयस्य जारेय, अ ज, नीचे बैठ जाता है। इसका शीघ्रता से जारण हो कर अयसिक उद्जारेय, अ (ज उ)$_3$, अथवा मण्डूर बन जाता है। अयसिक लवण के विलयन में त्तारक मिलाने से भी मण्डूर बन जाता है। इसे तपा कर रक्त करने से अयसिक जारेय, अ$_२$ज$_3$, बन जाता है। प्राकृत अवस्था में यह रक्त अयोरुचा (red haematite) के रूप में मिलता है और अयस्य शुल्बीय के स्फटों को अथवा जलीयित अयसिक नीरेय को चण्ड ताप पर तपाने से बन जाता है। अयोलवणों के दो वर्ग हैं—

१. पीठ अ ज के तत्संवादी अयस्य लवण। जलीयित अवस्था में ये हरे होते हैं।

२. पीठ अ$_२$ज$_3$ के तत्संवादी अयसिक लवण। जलीयित अवस्था में ये लाल अथवा पीले होते हैं।

अयस्य शुल्बीय, अ शु ज$_४$—यह लवण, जिसे प्राय: 'हरा काचर' (green vitriol) कहते हैं, मन्द शुल्बारिक अम्ल पर अयस् की क्रिया से प्राप्त होता है। जब गीले अयो-मात्तीक के ढेर वायु में खुले पड़े रहें तब भी शुल्बेय का जारण हो कर शुल्बीय बन जाता है। स्फटन हो कर इसके हरे स्फट, अ शु ज$_४$.७ उ$_२$ ज, बन जाते हैं जो पानी में विलेय होते हैं और उष्ण पानी में अत्यधिक विलेय होते जब वायु में चण्ड ताप पर इन्हें तपाया जाए तब धूमायमान शुल्बारिक अम्ल और आकुंकुम (r बन जाते हैं। तिक्तातु शुल्बीय के साथ मिल कर यह द्विलवण (double salt) (भू उ$_४$)$_२$ शु ज$_४$.६ उ$_२$ ज बनाता है।

अयसिक शुल्बीय, अ$_२$ (शु ज$_४$)$_3$—अयस्य शुल्बीय के विलयनों का वायु में धीरे धीरे जार होने से अयसिक शुल्बीय बन जाता है किन्तु अयस्य शुल्बीय को शुल्बारिक अम्ल तथा भूयिक अम्ल जैसे किसी जारजिता के साथ तपाने से यह अधिक शीघ्रता से बन जाता है। एवं—

$$६ \text{ अ शु ज}_४ + ३ \text{ उ}_२ \text{ शु ज}_४ + २ \text{ उ भू ज}_3 = २ \text{ भू ज} + ३ \text{ अ}_२ (\text{शु ज}_४)_3 + ४ \text{ उ}_२ \text{ ज}$$
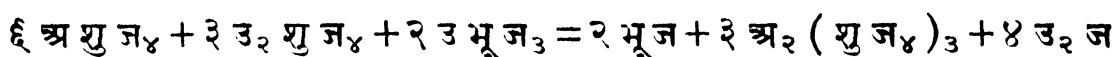
अयसिक शुल्बीय का विलयन पीला होता है। परमाण्विक उद्जन (देखो पृष्ठ ७६) अथवा शुल्बारीयित उद्जन आदि प्रह्रसन-कर्ताओं की क्रिया से प्रह्रसित हो कर अयसिक शुल्बीय पुन: हरे अयस्य शुल्बीय में परिणत हो जाता है। एवं—

$$२ \text{ अ}_२ (\text{शु ज}_४)_3 + २ \text{ उ}_२ \text{ शु} = ४ \text{ अ शु ज}_४ + २ \text{ उ}_२ \text{ शु ज}_४ + \text{शु}_२$$
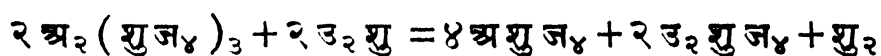
अयो-नीरेय—वातिय उद्नीरिक अम्ल पर लोहे की क्रिया से अजल अयस्य नीरेय, अ नी$_२$, प्राप्त होता है। उद्नीरिक अम्ल के विलयन पर लोहे की क्रिया से अयस्य नीरेय हरे जलीयित स्फटों के रूप में प्राप्त होता है। अयस्य नीरेय के विलयन पर भूयिक अम्ल की क्रिया से रक्त रंग का संयोग, अयसिक नीरेय, अ नी$_3$, बन जाता है। यह बहुत विलेय है और चण्ड ताप पर इसका विबन्धन हो कर अयसिक जारेय बन जाता है। तप्त अयस् और नीरजी के संयोग से अजल अयसिक नीरेय बनता है।

$$प्र ज_2 + उ_2 ज = उ_2 प्र ज_3$$
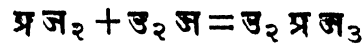
प्रांगार द्विजारेय का विलयन शेवल को रक्त कर देता है। इससे इसमें अम्ल का होना सिद्ध होना है। अम्ल की उपस्थिति का अन्य प्रमाण इसके तत्संवादी लवणों की माला है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पूर्णतया शुष्क प्रांगार द्विजारेय की शेवल-पत्र पर कोई क्रिया नहीं होती। प्रांगारिक अम्ल का विबन्धन बड़ी सरलता से हो जाता है और यह केवल मन्द विलयनों के रूप में ही ठहर सकता है। यह द्विपैठिक अम्ल है और इससे लवणों की दो मालाएँ बनती हैं, एक ऋजु लवणों की और दूसरी अम्ल लवणों अथवा द्विलवणों (bi-salts) की।

प्रांगारीय मुख्यतया दो रीतियों से बनाए जाते हैं—

१. वाति और पीठ के संयोजन से।

२. द्विगुण विबन्धन से। यह रीति अविलेय प्रांगारीय बनाने के लिये बहुत महत्त्व रखती है।

क्षारिय पीठों के प्रांगारीय और द्विप्रांगारीय (bicarbonates)—क्षारातु, दहातु, चूर्णातु, हर्यातु और शोणातु (strontium) के उदजारेयों की प्रतिक्रिया निम्नलिखित है—

$$२ क्ष ज उ + प्र ज_2 = क्ष_2 प्र ज_3 + उ_2 ज$$
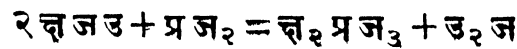
यदि ऋजु प्रांगारीय, $क्ष_2 प्र ज_3$, के विलयन में, जो कि क्षारिय होता है, प्रांगार द्विजारेय की और अधिक मात्रा डाल दी जाए तो द्विप्रांगारीय बन जाता है जो उतना विलेय नहीं होता। एवं—

$$क्ष_2 प्र ज_3 + उ_2 ज + प्र ज_2 = २ क्ष उ प्र ज_3$$
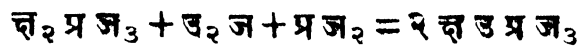
इसी प्रकार दहातु के प्रांगारीय भी बनाए जा सकते हैं। जब क्षारातु द्विप्रांगारीय अथवा इसके विलयन को तपाया जाता है तब प्रांगार द्विजारेय निकल जाती है और ऋजु लवण शेष रह जाता है।

संपरीक्षा ८२—क्षारातु उदजारेय के विलयन में से कुछ समय तक प्रांगार द्विजारेय ले जाते जाओ। विलयन को उबालने से ऋजु प्रांगारीय के स्फट बन जाएँगे। अम्ल से साधन करने से इस प्रांगारीय में से प्रांगार द्विजारेय निकल जाएगी।

संपरीक्षा—८३—ऋजु दहातु प्रांगारीय के अति संकेन्द्रित विलयन में से प्रांगार द्विजारेय ले जाओ। कुछ समय के पश्चात् द्विप्रांगारीय के स्फट बनने लगेंगे। ऋजु प्रांगारीयों की अपेक्षा क्षारातु और दहातु के द्विप्रांगारीय अल्पतर विलेय होते हैं।

यदि हर्यातु, शोणातु अथवा चूर्णातु के उदजारेयों के विलयनों में इसी प्रकार प्रांगार द्विजारेय का संचारण किया जाए तो निस्साद प्राप्त होता है। चूर्णातु उदजारेय की प्रतिक्रिया का समीकार यह है—

$$चू (ज उ)_2 + प्र ज_2 = चू प्र ज_3 + उ_2 ज$$
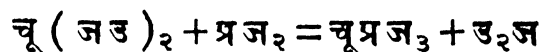
ऋजु प्रांगारीय अविलेय होता है, इसीलिये प्रांगारीय द्विजारेय चूर्णक-जल को दूधिये रंग का बना देती है। यदि उस दूधिये तरल में से और अधिक प्रांगार द्विजारेय ले जाई जाए, तो निस्साद पुनः घुल जाता है और विलेय अम्ल प्रांगारीय बन जाता है। एवं—

$$चू प्र ज_3 + उ_2 ज + प्र ज_2 = चू उ_2 (प्र ज_3)_2$$
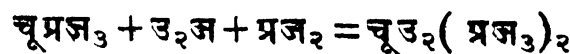
इस विलयन को उबालने से द्विप्रांगारीय का विबन्धन हो कर ऋजु प्रांगारीय निस्सादित हो जाता है और प्रांगार द्विजारेय उत्पन्न हो जाती है। इससे अस्थायी कठोर जल (जो कि अम्ल चूर्णातु

प्रांगारीय का विलयन होता है) की प्रतिक्रिया की व्याख्या हो जाती है। द्विप्रांगारीय के विलयन में पीठ (उद्जारेय) की और अधिक मात्रा मिला देने से ऋजु प्रांगारीय बन जाता है। एवं—

$$चूउ_२(प्रज_3)_२ + चू(जउ)_२ = २चूप्रज_3 + २उ_२ज$$
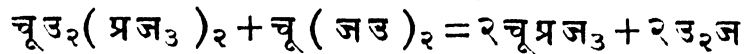
संपरीक्षा ८४—चूर्णांक-जल में प्रांगार द्विजारेय का प्रवेश कराओ। वह दूधिये रंग का हो जाएगा। यदि उस विलयन में और अधिक वाति ले जाओगे तो तरल पुनः स्वच्छ हो जाएगा। इसको उबालने से अथवा इसमें चूर्णांक-जल और मिला देने से इसका रंग पुनरपि दूधिया हो जाएगा।

द्विगुण विबन्धन द्वारा प्रांगारीयों की प्राप्ति—अधिकांश धातुओं के लवणों के विलयनों को क्षारातु प्रांगारीय के साथ उबालने से धातु का अविलेय प्रांगारीय नीचे बैठ जाता है, यथा चूर्णातु नीरेय का अविलेय प्रांगारीय निम्नलिखितरूप से बनता है—

$$चूनी_२ + क्षा_२प्रज_3 = चूप्रज_3 + २\,क्षानी$$
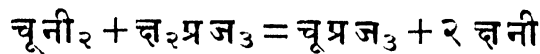
संपरीक्षा ८५—चूर्णातु नीरेय और क्षारातु प्रांगारीय के विलयनों को मिला कर उबालो और निस्सादित चूर्णातु प्रांगारीय को पाव में डाल दो। फिर पाव में उष्ण पानी डाल डाल कर निस्साद में से क्षारातु नीरेय और प्रांगारीय के लेश सर्वथा निकाल दो। पाव में जो श्वेत पदार्थ रह जाएगा उसका यदि अम्ल से साधन करोगे तो प्रांगार द्विजारेय उन्मुक्त हो जाएगी और उस अम्ल का चूर्णातु लवण बन जाएगा।

अन्य संयोगों के बनाने में प्रांगारीयों का महत्त्व—दहातु और क्षारातु के अतिरिक्त प्रायः सभी धातुओं के प्रांगारीयों को तपाने से जारेय बन जाते हैं। चूर्णातु जारेय इसी प्रकार बनाया जाता है। भ्राजातु प्रांगारीय का विबन्धन दिखाने के लिये उसको नाल में तपा कर उसमें से निकलने वाली वाति को चूर्णांक-जल में ले जाओ।

प्रांगारीय को अम्ल में प्रविलीन कर के लवण बनाए जा सकते हैं। इससे उत्पन्न प्रांगार द्विजारेय निकल जाएगी और लवण का विलयन शेष रह जायगा। एवं चूर्णातु नीरेय से चूर्णातु भूयीय बनाने के लिये पहले नीरेय में क्षारातु प्रांगारीय मिला कर चूर्णातु प्रांगारीय का निस्साद प्राप्त करेंगे और फिर निस्साद को धो कर भूयिक अम्ल में घोल लेंगे।

प्रांगारीयों की परीक्षा

प्रांगारीय में प्रांगार द्विजारेय की मात्रा का आगणन (estimate)—

१. प्रांगारीयों को नाल में डाल कर तपाने से प्रांगार द्विजारेय उत्पन्न होती है जिसको उलटी करके चूर्णांक-जल की नाल में डाल सकते हैं। क्षारातु और दहातु के ऋजु प्रांगारीयों का विबन्धन इस विधा से नहीं होता।

२. सभी प्रांगारीयों में अम्ल मिलाने से प्रांगार द्विजारेय उन्मुक्त होती है जो चूर्णांक-जल को दूधिये रंग का बना देती है।

धातु के ऋजु और अम्ल प्रांगारीय (acidic carbonate) को एक दूसरेसे पहचानने के लिये प्रांगारीय की मात्रा तोल कर उसमें से निकली हुई प्रांगार द्विजारेय की परिमा माप ली जाती है। ऋजु प्रांगारीय की अपेक्षा द्विप्रांगारीय से निकली हुई प्रांगार द्विजारेय की मात्रा दुगुनी होती है॥

अठाईसवाँ अध्याय

प्रांगार एकजारेय (carbon monoxide)

प्राप्ति-स्थान—प्रांगार एकजारेय ज्वालामुखी पर्वतों में से निकलने वाली वातियों में पाई जाती है। इसे कई रीतियों से प्राप्त किया जा सकता है, जिनमें से कुछ नीचे दी जाती हैं—

प्रांगार द्विजारेय के अपूर्ण (partial) प्रह्रसन से एकजारेय की प्राप्ति—जब प्रांगार द्विजारेय को रक्तोष्ण प्रांगार पर से ले जाया जाता है तब वह प्रह्रसित हो कर एकजारेय बन जाती है। एवं—

$$प्र ज_2 + प्र = २ प्र ज$$
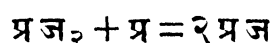
जब अंगीठी में प्रांगार खुली वायु में जलता है तब पहले प्रांगार द्विजारेय बनती है। किन्तु जब निचले स्तर (layer) से द्विजारेय उठ कर जलते हुए अंगारों के ऊपर के स्तर में से जाती है तब प्रह्रसित हो कर एकजारेय बन जाती है। यह वायु में आग के शिखर पर नीली ज्वाला से जलती है और जारक के साथ मिल कर पुनः प्रांगार द्विजारेय बना देती है। प्रतिक्रियाओं के समीकार ये हैं—

$$प्र ज_2 + प्र = २ प्र ज$$

$$२ प्र ज + ज_2 = २ प्र ज_2$$
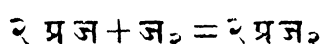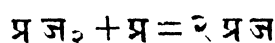
संपरीक्षा ८६—काच की लम्बी दहन नाल में काष्ठांगार के टुकड़े ठोंस कर भर दो। नाल को वाति भ्राष्ट्र में तपाओ और उसमें से जारक का मन्थर प्रवाह ले जाओ। उससे उद्गत वाति को दह विक्षार के तीव्र विलयन में से ले जा कर पानी पर से इकट्ठी कर लो। पहले जो प्रांगार द्विजारेय बनी वही लम्बी नाल में जलते हुए प्रांगार पर से नाँघते हुए प्रह्रसित हो कर एकजारेय बन गई। दह विक्षार के विलयन ने उसमें से प्रांगार द्विजारेय का बचाखुचा लेश भी प्रचूषित कर लिया।

वम्रिक (formic) अम्ल तथा तिग्मिक (oxalic) अम्ल से प्रांगार एकजारीय की प्राप्ति—प्रयोगशाला में प्रांगार एकजारेय प्रायः वम्रिक अम्ल ($प्र उ_2 ज_2$) अथवा इसके क्षारातु लवण को शुल्बारिक अम्ल के साथ तपाने से प्राप्त की जाती है। एवं—

$$प्र उ_2 ज_2 = उ_2 ज + प्र ज$$
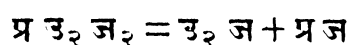
वम्रिक अम्ल के स्थान पर तिग्मिक अम्ल ($प्र_2 उ_2 ज_4$) का प्रयोग भी कर सकते हैं। एवं—

$$प्र_2 उ_2 ज_4 = प्र ज + प्र ज_2 + उ_2 ज$$
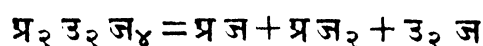
वाति को क्षारातु उदजारेय के संकेन्द्रित विलयन में से ले जाने से उसमें से प्रांगार द्विजारेय के लेश निकल जाते हैं। प्रांगार एकजारेय पानी में विलेय नहीं होती इसलिये इसे पानी पर से इकट्ठी किया जा सकता है।

इन दोनों विधाओं में शुल्बारिक अम्ल प्रांगार के संयोगों में से पानी का अपहरण करता है, अतः इसकी क्रिया केवल विजलीयन-कर्त्ता (dehydrating agent) की है।

प्रांगार और भाप से प्रांगार एकजारेय की प्राप्ति—जब रक्तोष्ण किये हुए प्रांगार पर से भाप को ले जाया जाता है तब प्रांगार एकजारेय और उद्जन उत्पन्न होती हैं। एवं—

$$उ_2ज + प्र = प्रज + उ_2$$
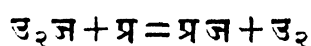
इस मिश्र को जल-वाति (water gas) कहते हैं और इससे प्राय: इन्धन का काम लिया जाता है, क्योंकि इसमें अत्युष्ण और धूम-रहित ज्वाला निकलती है।

जब जारेयों को प्रांगार द्वारा प्रह्वसित किया जाए तब प्राय: प्रांगार एकजारेय उत्पन्न हो जाती है।

प्रांगार एकजारेय के भौतिक गुण—यह रंग, स्वाद और गन्ध हीन वाति है। यह बहुत विषैली होती है। वायु में १% मात्रा में भी यह मनुष्य के लिये हानिकारक है। इस के प्रति पक्षियों की हृपता (sensitiveness) बहुत अधिक होती है।

वायु से यह थोड़ी सी हलकी होती है क्योंकि इसका भार वायु की अपेक्षा ०·९६७ है। इसकी सापेक्ष घनता १४·० है। अत: व्यूहाणु-भार २८·० है। पानी में यह नहीं घुलती। बहुत नीचे ताप पर इसका तरलन हो सकता है।

प्रांगार एकजारेय के रसायनिक गुण—यह वायु अथवा जारक में जल कर द्विजारेय बनाती है। उद्जन के समान इसकी ज्वाला भी नीली होती है किन्तु जिस पात्र में प्रांगार एकजारेय जलाई गई हो उसमें चूर्णांक-जल डालने से दूधिये रंग का हो जाता है।

प्रांगार एकजारेय क्लीब जारेय है। गीले शेवल-पत्र पर इसकी कोई क्रिया नहीं होती और न ही चूर्णांक-जल पर होती है।

जारक के साथ इसकी बन्धुता होने के कारण यह अच्छी जारणकर्त्री है। यदि इसे तपे हुए ताम्र जारेय पर से ले जाया जाए तो नीचे दिये समीकार के अनुसार जारक का अपहरण हो जाता है और ताम्बा बच रहता है—

$$ताज + प्रज = ता + प्रज_2$$
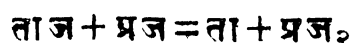
इसी प्रकार तपे हुए अयसिक जारेय पर से इसे ले जाने से जारेय प्रह्वसित होकर लोहा रह जाता है। एवं—

$$अ_2ज_3 + ३\ प्रज = ३\ प्रज_2 + २\ अ$$
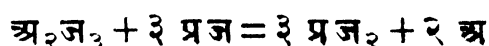
प्रांगार एकजारेय अननुविद्ध संयोग (unsaturated compound) है। नीरजी से यह सीधी मिल कर भाज (phosgene) अथवा प्रांगारल नीरेय, प्रज नी$_2$ (carbonyl chloride), और जारक से मिल कर प्रांगार द्विजारेय बनाती है। अयस और रूपक (nickel) आदि धातुओं के साथ संयुक्त हो कर यह अय: प्रांगारल, अ (प्रज)$_5$ (iron carbonyl) तथा रूपक प्रांगारल, रू (प्रज)$_4$ (nickel carbonyl) बनाती है।

प्रांगार एकजारेय का मिबन्ध—वाति-परिमा-मान में प्रांगार एकजारेय की मापी हुई परिमा डाल कर उसमें माप कर उससे अधिक परिमा में जारक मिला दी जाती है। फिर उस मिश्र का उत्स्फोटन किया जाता है। इससे जो प्रांगार द्विजारेय बनती है उसे वह विकार में ले जा कर प्रचूषित करा दिया जाता है। परिमा में जितनी न्यूनता हो उसे प्रांगार द्विजारेय की परिमा समझना चाहिये। अब

यदि बची हुई जारक की परिमा मूल जारक की परिमा से घटा दी जाए तो उस जारक की परिमा का ज्ञान हो जाएगा जो मापी हुई एकजारेय के साथ मिल गई है।

इससे ज्ञात हुआ कि प्रांगार एकजारेय की दो परिमाओं में जारक की एक परिमा मिलने से प्रांगार द्विजारेय की दो परिमाएँ प्राप्त हुईं। किन्तु प्रांगार द्विजारेय की दो परिमाओं में जारक की भी दो परिमाएँ होती हैं। अत: प्रांगार एकजारेय की दो परिमाओं में जारक की एक परिमा हुई, अर्थात् वाति के एक व्यूहाणु में आधा व्यूहाणु जारक का है। अत: व्यूहाणु-सूत्र प्र ज हुआ।

यदि प्रांगार एकजारेय और जारक का मिश्र सर्वथा शुष्क हो तो उसमें विद्युत्स्फुलिंगों का संचार करने से उत्स्फोटन नहीं होता ॥

उनतीसवाँ अध्याय

शुल्बारि—अपरावर्तना

शुल्बारि संस्कृत भाषा का नाम है जिस का अर्थ है 'ताम्र का शत्रु'। आंगल शब्द सल्फ़र (sulphur) इसीका अपभ्रष्ट रूप है। मनुष्य को इस तत्त्व का ज्ञान अनादि काल से ही था। इसका प्रसिद्ध नाम गन्धक भी है।

प्राप्ति-स्थान—जिन प्रदेशों में ज्वालामुखी पर्वत अधिक होते हैं वहाँ शुल्बारि असंयुक्त रूप में पाई जाती है। इसीलिये जापान और सिसिली (sicily) से प्राकृत गन्धक (native sulphur) बहुत आती है।

शुल्बेयों से भी, जो शुल्बारि के धात्विक संयोग होते हैं, शुल्बारि प्राप्त की जाती है। उनमें से मुख्य अयो माक्षीक, $अ शु_२$ (iron pyrites), ताम्र माक्षीक, $ता_२ शु . अ_२ शु_३$ (copper pyrites) और सीस रूचा, सी शु (galena) हैं। संयुक्तरूप में शुल्बारि आचूर्ण (gypsum = calcium sulphate, चूर्णातु शुल्बीय) और अपिकटु लवण (Epsom salts = magnesium sulphate, भ्राजातु शुल्बीय) आदि पदार्थों में पाई जाती है।

शुल्बारि को प्राप्त करने की रीति—वायु के सीमित वाह में ढलवान चूल्हे (hearth) पर अशुद्ध प्राकृत शुल्बारि को तपाने से शुल्बारि प्राप्त की जाती है। शुल्बारि का कुछ भाग जल जाता है और उसके दहन की ऊष्मा से शेष शुल्बारि पिघल कर ढलवान चूल्हे से नीचे बह आती है और मिट्टी आदि की मिलावट पीछे रह जाती है।

वायु के अभाव में कई शुल्बेयों को वकभाण्डों में तपाने से भी गन्धक अलग निकल आती है। सामान्यत: अयो माक्षीक में से गन्धक निकाली जाती है किन्तु तपाने से इनमें से सारी की सारी गन्धक नहीं निकलती। एवं—

$$३ अ शु_२ = अ_३ शु_४ + शु_२$$
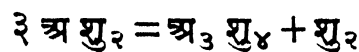
शुल्बारि का शोधन (purification)—शुद्ध शुल्बारि आसवन द्वारा निकाली जाती है। मिट्टी के वकभाण्डों में प्राकृत शुल्बारि को तपाया जाता है। उबलती हुई शुल्बारि से उठने वाले

बाष्पों को ईंटों के बड़े बड़े वेश्मों (chambers) में संघनित कर लिया जाता है। क्षिप्रता से ठण्डे होने के कारण बाष्पों के शीन (snow) के समान सूक्ष्म स्फट बन जाते हैं। उन स्फटों को 'शुल्बारि-पुष्प' (flowers of sulphur) कहते हैं। जब संघनन वेश्म (condensing chamber) उष्ण हो जाता है तब शुल्बारि तरल के रूप में इकट्ठी होने लगती है। उसे निकाल निकाल कर साँचों में उसके वेल्लन बना लिये जाते हैं जिन्हें 'वेल्लन गन्धक' (roll sulphur) कहते हैं।

शुल्बारि के गुण—शुल्बारि पीले रंग का भिदुर सान्द्र पदार्थ है। इसका स्वाद कोई विशेष नहीं होता किन्तु इसकी गन्ध हलकी सी होती है। पानी में यह नहीं घुलती। तपाने से ११५° श. से नीचे ही पिघल कर आपीत तरल बन जाती है। १६२° श. के लगभग तरल बहुत आलग (viscid) और रंग में काला हो जाता है। १८०° श. पर पिघली हुई शुल्बारि अर्ध-सान्द्र हो जाती है और पात्र को टेढ़ा अथवा उलटा करने से बह कर बाहर नहीं गिरती। इससे अधिक ताप पर वह फिर पतली हो जाती है। ४४८° श. पर यह उबलने लगती है और इसमें से पीले रंग के बाष्प उठने लगते हैं। ठण्डी करने पर इसमें विपरीत क्रम से वही परिवर्तन होते हैं जो पहले हुए थे।

शुल्बारि के अपरावर्तिक रूप—जारक और प्रांगार की भाँति शुल्बारि के भी कई रूप होते हैं। दो रूप इसके स्फटात्मक होते हैं, एक अस्फटात्मक और एक अभिघट्य (plastic) होता है।

१. तिर्यग्वर्गरूप स्फट (rhombic crystals)—तरलों में प्रविलीन शुल्बारि का स्फटन होने से आठ पार्श्वों वाले निबिड (compact) स्फट बनते हैं जिनको 'तिर्यग्वर्गरूप स्फट' कहते हैं। शुल्बारि और प्रांगार द्विजारेय के विलयन में से ये स्फट बड़ी सरलता से बनते हैं। इनकी घनता २.०६ होती है और ये ११२.८° श. पर पिघल जाते हैं। प्रकृति में प्रायः शुल्बारि इन्हीं स्फटों के रूप में पाई जाती है। शुल्बारि का यह रूप अधिक स्थायी है और इसके दूसरे रूप भी बड़ी सरलता से इसी रूप में परिणत हो जाते हैं।

२. सांक्षेत्रिक (prismatic) अथवा सूच्याकार (needle shaped) स्फट—जब पिघली हुई शुल्बारि को ठण्डा करने से इसका कुछ भाग सान्द्र बन जाए तब शेष तरल को दूसरे पात्र में उँडेल लेने से सान्द्र शुल्बारि के आरक्त-पीत सूच्याकार पारदर्श स्फट बन जाते हैं। इनकी घनता १.९६ होती है और ये ११९.२° श. पर पिघल जाते हैं। शुल्बारि के इस रूप को 'एकप्रवणिक' (monoclinic) शुल्बारि कहते हैं क्योंकि इसके स्फट एकप्रवणिक संविधा (monoclinic system) की कोटि में आते हैं। कुछ दिन पड़े रहने से सूच्याकार स्फट भी स्थायी रूप (तिर्यग्वर्गरूप स्फटों) में परिणत हो जाते हैं। ये स्फट प्रांगार द्विशुल्बेय में घुल जाते हैं किन्तु विलयन के नीचे शुल्बारि अपने स्थायी रूप में बैठ जाती है।

३. अभिघट्य शुल्बारि (plastic sulphur)—मूषा में गन्धक को पिघला कर तरल को चण्ड ताप पर तपा कर उबाला जाता है। उबलता हुआ तरल गहरे भूरे रंग का हो जाता है। फिर उसे पतली धार बाँध कर ठण्डे पानी में डाला जाता है। घृषि के समान शुल्बारि का चीढ़ा (tough), प्रत्यास्थ (elastic) पदार्थ बन जाता है जो प्रांगार द्विशुल्बेय में नहीं घुलता। धीरे धीरे इसका भी स्थायी रूप बन जाता है। इसको मलने, घड़ी घड़ी खेंचने और तपाने से इसका स्थायी रूप शीघ्रता से बन जाता है।

४. अस्फटात्मक शुल्बारि—अस्फटात्मक शुल्बारि गन्धशुल्बीय अथवा क्षारिय पुरुशुल्बेय (alkaline polysulphide) में अम्ल मिलाने से प्राप्त होती है। हलके पीले और श्वेत रंगों के बीच बीच इसके कई रूप होते हैं। प्रांगार द्विशुल्बेय में यह थोड़ी सी घुल जाती है। शुल्बारि-दुग्ध (milk of sulphur) शुल्बारि का एक सूक्ष्म अस्फटात्मक रूप है। यह चूर्णातु गन्धशुल्बीय (calcium thiosulphate) और पुरुशुल्बेय के विलयन में उदनीरिक अम्ल डालने से प्राप्त होता है। यह विलयन शुल्बारि और चूर्णाक के मिश्र को पानी में उबालने से बनता है।

संपरीक्षा ८७—पीत तिक्तातु शुल्बेय में उदनीरिक अम्ल डालने से शुल्बारि का इतना सूक्ष्म निस्साद बैठ जाता है कि वह साधारण पाव-पत्र में से छन जाता है। इसी संपरीक्षा को क्षारातु गन्ध-शुल्बीय के साथ भी कर के देखो।

शुल्बारि के रसायनिक गुण—कई तत्त्वों के साथ शुल्बारि का सीधा संयोग हो जाता है। वायु में जलने से इसकी ज्वाला पाण्डुर-नील रंग की होती है और इससे शुल्बारि द्विजारेय बन जाती है। पानी में गीली की हुई शुल्बारि भी वायु में से जारक के साथ सीधी मिल जाती है और पानी की क्रिया केवल पर अम्लवत् हो जाती है। यदि पिघली हुई गन्धक पर से जारक के प्रवाह को ले जाया जाए तो दोनों के संयोग से शुल्बारीयित उदजन, उ₂शु (sulphuretted hydrogen) बन जाती है, जो सीस शुक्तीय (lead acetate) के विलयन में भिगोए हुए पत्र को काला कर देती है।

धातुओं के साथ सीधी मिल कर यह धात्विक शुल्बेय बनाती है। यदि ताम्र-पत्र (copper leaf) को शुल्बारि के बाष्प में जलाया जाए तो ताम्रस शुल्बेय, ता₂शु (cuprous sulphide) बन जाता है। इसी प्रकार क्षारातु को जलाने से क्षारातु शुल्बेय, क्ष₂शु, बन जाता है।

शुल्बारि के भिन्न भिन्न रूप रसायनिक दृष्टि से एक ही हैं—निम्नलिखित बातों से सिद्ध होता है कि शुल्बारि के सभी रूपों में एक ही प्रकार की प्रकृति (matter) है—

१. शुल्बारि के एक रूप की नियत मात्रा ले कर उसे उसी मात्रा में दूसरे रूप में परिणत किया जा सकता है। इसके सभी रूपों को तिर्यग्वर्गिक रूप में परिणत करने के लिये उन्हें पिघला कर ठण्डा करलो। सान्द्र होजाने पर प्रांगार द्विशुल्बेय में घोल कर विलयन में से स्फटन द्वारा शुल्बारि को तिर्यग्वर्गिक रूप में निकाल लो।

२. शुल्बारि के प्रत्येक रूप को समान मात्रा में जलाने से शुल्बारि द्विजारेय की समान मात्रा उत्पन्न होती है। प्रतिक्रिया का समीकार यह है—

$$\text{शु}_2 + २\ \text{ज}_2 = २\ \text{शु ज}_2\ ॥$$
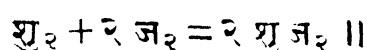
तीसवाँ अध्याय

शुल्बारीयित उदजन और शुल्बेय (sulphuretted hydrogen and sulphides)

प्राप्ति-स्थान—शुल्बारीयित उदजन, उ₂ शु, कई खनिज जलों में घुली हुई मिलती है और ज्वाला-मुखी पर्वतों में से निकलने वाली वातियों में भी मिली हुई होती है। उद्भिद्- और प्राणि-पदार्थों के

गलने सड़ने से भी यह उत्पन्न होती है और इसकी गन्ध सड़े हुए अण्डों के समान होती है। अंगार-वाति बनाते हुए भी यह पर्याप्त मात्रा में बन जाती है।

धात्विक शुल्बेयों पर अम्लों की क्रिया से शुल्बारीयित उदजन की प्राप्ति—प्रयोगशाला में यह वाति अयस्य शुल्बेय पर मन्द उदनीरिक अथवा शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त की जाती है। समीकार नीचे दिये जाते हैं—

$$\text{अ शु} + \text{उ}_{२}\,\text{शु ज}_{४} = \text{उ}_{२}\,\text{शु} + \text{अ शु ज}_{४} \ (\text{अयस्य शुल्बीय})$$

$$\text{अ शु} + \text{२ उ नी} = \text{उ}_{२}\,\text{शु} + \text{अ नी}_{२} \ (\text{अयस्य नीरेय})$$
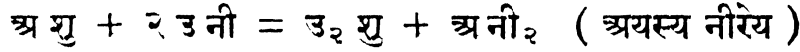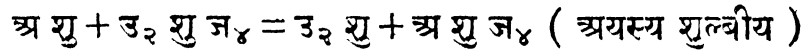
यत: अय: शुल्बेय में लोहा प्राय: धातुरूप में भी होता है इसलिये साथ साथ उदजन भी उत्पन्न होती है। वाति को उष्ण पानी पर से इकट्ठी कर सकते हैं।

संपरीक्षा ८८—द्विमुखी कूपी में अयस्य शुल्बेय को डाल कर एक मुख में शृगाल-निवाप और दूसरे में प्रदान नाल लगा दो (देखो चित्र २०)। निवाप में से मन्द उदनीरिक अम्ल डाल कर वाति को प्रदान नाल द्वारा मिट्टी की बनी द्रोणी में रखे हुए उष्ण जल पर से इकट्ठी कर लो। ध्यान रहे कि द्रोणी धातु की बनी हुई न हो।

वाति की लगातार प्राप्ति के लिये पिवाति-जनित्र (Kipp's apparatus) का प्रयोग किया जाता है (चित्र ४०)। इसमें एक कन्द सबसे ऊपर होता है और नीचे दो कन्द होते हैं जो आपसमें जुड़े हुए होते हैं। ऊपर के कन्द के नीचे एक लम्बा सुषिर स्तम्भ (stem) बना होता है जो नीचे से खुला होता है। यह वृन्त मध्य के कन्द के घृष्ट (ground) मुख में फँस कर आ जाता है और सबसे निचले कन्द के मुख में से ढीला लाँघ जाता है। मध्य वाले कन्द में अयस्य शुल्बेय डाल दिया जाता है। इस कन्द के पार्श्व में शिखिपिधा लगी होती है। शिखिपिधा को खुली रख कर ऊपर के कन्द में से अम्ल की उतनी मात्रा डाली जाती है जिससे सबसे निचले कन्द को भर कर अम्ल बीच वाले कन्द में रखे हुए शुल्बेय को ढक लेता है। वाति उत्पन्न हो कर शिखिपिधा से निकलने लगती है। शिखिपिधा को मूँद देने से वाति के निपीड से अम्ल बाहर की ओर धकेला जाता है। अत: वह अयस्य शुल्बेय वाले कन्द से निकल कर निचले कन्द से होता हुआ सबसे ऊपर वाले कन्द में लौट जाता है। अम्ल के निकल जाने से क्रिया थम जाती है और वाति बनने से रुक जाती है।
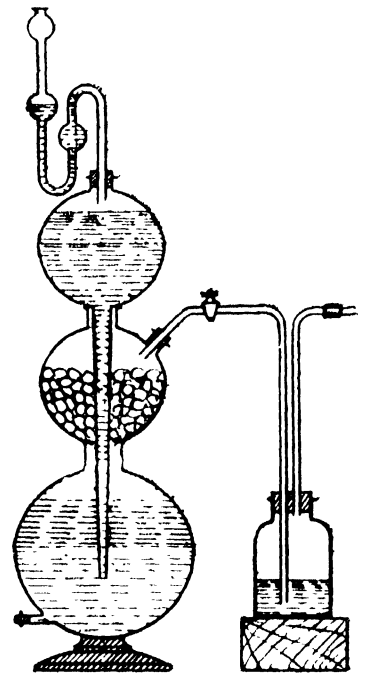
चित्र ४०

शुद्ध शुल्बारीयित उदजन की प्राप्ति—अंजन शुल्बेय को संकेन्द्रित उदनीरिक अम्ल के साथ तपाने से शुद्ध शुल्बारीयित उदजन बनती है। इसमें से उदनीरिक अम्ल के लेश दूर करने के लिये इसे पानी में से ले जाया जाता है। समीकार यह है—

$$\text{अं}_{२}\text{शु}_{३} + \text{६ उ नी} = \text{३ उ}_{२}\text{शु} + \text{२ अं नी}_{३} \ (\text{अंजन त्रिनीरेय})$$
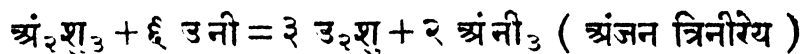
शुल्बारीयित उदजन के भौतिक गुण—यह वाति रंगहीन होती है। इसकी गन्ध गले हुए अण्डों

के समान होती है और स्वाद भी बहुत बुरा होता है। यह बहुत विषैली वाति है। सीस लवण के विलयन को यह काला कर देती है।

यह वाति ठण्डे पानी में घुल जाती है और विलयन में से इसीकी दुर्गन्ध आने लगती है। विलयन को उबालने से यह उसमें से निकल जाती है। विलयन चिर तक नहीं ठहरता क्योंकि वायु में जारक द्वारा वाति का धीरे धीरे जारण होता रहता है। जारण से पानी और श्वेत अस्फटात्मक शुल्बारि बन जाते हैं।

यह वाति वायु से भारी होती है। इसकी सापेक्ष घनता १७·० और व्यूहाणु-भार ३४·० है। नीच ताप और अधिक निपीड में इसका तरलन हो सकता है।

शुल्बारीयित उदजन के रसायनिक गुण—यह साधारण दाह्य पदार्थों के दहन की पोषक नहीं। वायु में यह नीली ज्वाला से जलती है। यदि इस वाति को वायु के सीमित वाह में जलाया जाए तो पानी और शुल्बारि बन जाते हैं। एवं—

$$२ उ_२ शु + ज_२ = २ उ_२ज + शु_२$$
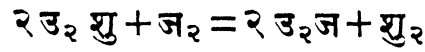
यदि वाति को वायु के खुले प्रवाह में जलाया जाए तो उदजन और शुल्बारि दोनों का जारण हो कर पानी और शुल्बारि द्विजारेय बन जाते हैं। एवं—

$$२ उ_२ शु + ३ ज_२ = २ उ_२ ज + २ शु ज_२$$
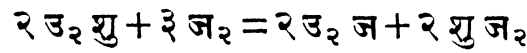
संपरीक्षा ८९—वाति से भरे हुए कलश में जलती हुई बत्ती ले जाने से वाति नीली ज्वाला से जलने लगेगी किन्तु बत्ती की ज्वाला बुझ जाएगी। कलश के पार्श्वों पर शुल्बारि जम जाएगी।

संपरीक्षा ९०—वाति के पूर्णरूप से दहन (complete combustion) को दिखलाने के लिये प्रदान नाल से निकलते ही इसका उज्ज्वालन करना चाहिये। तब इसमें से जलती हुई गन्धक की गन्ध आने लगती है और यदि ज्वाला के ऊपर ठण्डा काच पात्र रखा जाए तो उसपर पानी के बिन्दु जम जाते हैं। यदि पात्र को ज्वाला के बीच में ले जाएँ तो उसपर शुल्बारि जम जाती है।

शुल्बेयों का निर्माण—शुल्बारीयित उदजन का विलयन नीले शेवल को हलका रक्त बना देता है और धातुएँ इसकी उदजन का स्थान ले लेती हैं। यह विलयन अम्ल होता है और इसके लवणों को 'शुल्बेय' कहते हैं। यह द्विपैठिक है। क्षारातु के दो लवण ($क्ष_२शु$, क्ष उ शु) बनते हैं। क्ष उ शु जैसे अम्ल लवणों को 'उदशुल्बेय' (hydrosulphides) कहते हैं।

शुल्बेय निम्नलिखित कई प्रकार से बनते हैं—

१. शुल्बारि और तत्त्व के सीधे संयोजन से, यथा अयस्य शुल्बेय, अ शु।

२. धातु पर इस वाति अथवा इसके विलयन की क्रिया से—यह वाति चाँदी को काला कर देती है क्योंकि उसके ऊपर रजत शुल्बेय, $र_२$ शु, बन कर जम जाता है। इस वाति में तपाने से अधिकांश धातु तो उदजन का पूर्णरूप से प्रतिस्थापन कर देते हैं, किन्तु क्षारातु और दहातु उदशुल्बेय बना देते हैं। एवं—

$$२ उ_२शु + २ द = २ द उ शु + उ_२$$
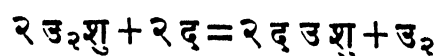
संपरीक्षा ९१—दहातु के टुकड़े को दहन नाल में रख कर तपाओ और उसपर से शुबारीयित

उदजन ले जाओ। दहातु जलेगा और उदजन प्रदान नाल से बाहर निकलेगी। जलती हुई दियासलाई से लगा कर उसकी परीक्षा करो।

३. पीठों पर वाति अथवा उसके विलयन की क्रिया से—जब शुल्बारीयित उदजन को क्षारक के विलयन में ले जाया जाता है तब शुल्बेय अथवा उदशुल्बेय बनता है। क्षारातु शुल्बेय इस भाँति बनाया जा सकता है। जब वाति को कोष्ण अयसिक जारेय पर से ले जाया जाता है तब अयस्य शुल्बेय, शुल्बारि और पानी बनते हैं। एवं—

$$२ अ_२ ज_३ + ६ उ_२ शु = ४ अ शु + शु_२ + ६ उ_२ ज$$
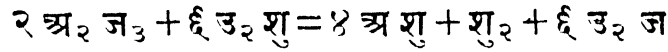
इसी भाँति वाति को चूर्णातु उदजारेय पर से ले जाने से चूर्णातु उदशुल्बेय, चू (शु उ)$_२$, बन जाता है। अयसिक जारेय और चूर्णातु उदजारेय को शुल्बारीयित उदजन में से अंगार-वाति का उन्मोचन कराने के लिये प्रयोग में लाया जाता है।

संपरीक्षा ६२—लोहे के रक्त जारेय को दहन नाल में रख कर शुल्बारीयित उदजन के प्रवाह में तपाया जाता है। जारेय काला हो कर अन्त में रक्त हो कर चमकने लगता है।

४. धात्विक लवणों पर शुल्बारीयित उदजन की क्रिया से—बड़े बड़े नगरों की वायु में जो शुल्बारीयित उदजन होती है उसकी क्रिया से तैल-चित्रों में प्रयुक्त होने वाले सीस लवण काले हो जाते हैं। लवण के विलयन में से वाति का प्रवाह ले जाने से शुल्बेय बहुत अच्छी प्रकार से बनता है। शुल्बेय द्विगुण विबन्धन हो कर बनता है। ताम्र (ताम्रिक) शुल्बेय निम्नलिखित समीकार के अनुसार बनता है—

$$ता शु ज_४ + उ_२ शु = ता शु + उ_२ शु ज_४$$
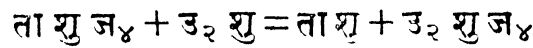
रसायनिक विश्लेषण में शुल्बारीयित उदजन का प्रयोग—शुल्बेय लवणों का वर्ग बहुत महत्त्वशाली है क्योंकि प्रकृति में कई शुल्बेय पाये जाते हैं। अधिकांश शुल्बेय पानी में नहीं घुलते और कई तो अम्लों में भी नहीं घुलते। विश्लेषण के निमित्त शुल्बेयों का विभाग निम्नलिखितरूप से किया जाता है—

१. मन्द अम्लों में अविलेय।

२. मन्द अम्लों में विलेय किन्तु क्लीब अथवा क्षारिय विलयन में अविलेय।

३. अम्ल, क्लीब अथवा क्षारिय विलयन—इन सबमें विलेय।

संपरीक्षा ६३—निम्नलिखित लवणों को अलग अलग मन्द उदनीरिक अम्ल में डाल कर उनके विलयनों में से शुल्बारीयित उदजन को ले जाओ। वे लवण पारदिक नीरेय (mercuric chloride), ताम्र शुल्बीय, अंजन नीरेय, अयस्य शुल्बीय, कुप्यातु शुल्बीय और क्षारातु नीरेय हैं।

पहले तीन लवणों के विलयनों में धात्विक शुल्बेय निस्सादित हो जाएँगे। पारद के लवण में पहले पहल श्वेत निस्साद नीचे बैठेगा जो पीला हो कर काला हो जाएगा। ताम्र शुल्बेय, ता शु, काले रंग का होगा और अंजन शुल्बेय, अं$_२$शु$_३$, नारंग वर्ण का।

अम्ल की उपस्थिति में अन्य धातुओं के शुल्बेयों के निस्साद नहीं प्राप्त होते। उनके विलयनों में से जब शुल्बारीयित उदजन को ले जा चुको तब उनमें तिक्ताति मिला देने से अयस् के लवण में काले

रंग का अयस्य शुल्बेय, अशु, नीचे बैठ जाएगा और कुप्यातु के लवण में श्वेत रंग का कुप्यातु शुल्बेय, कुशु। क्षारातु से किसी प्रकार से भी शुल्बेय का निस्साद प्राप्त नहीं हो सकता।

सामान्य धातुओं में से सीस, ताम्र और पारद के शुल्बेयों के निस्साद अम्ल विलयनों से प्राप्त होते हैं; अयस्, कुप्यातु और लोहक के शुल्बेय क्षारिय विलयनों में से निस्सादित होते हैं और चूर्णातु, शोणातु, हर्यातु, भ्राजातु, क्षारातु, दहातु और तिक्तातु के शुल्बेय उनके विलयनों में से सर्वथा निस्सादित नहीं होते।

शुल्बेय के रंग से भी धातु का पता लग जाता है। अंजन का शुल्बेय नारंग वर्ण का होता है। सीस और ताम्र के काले होते हैं।

भिन्न भिन्न विलेयता के शुल्बेयों वाली धातुओं को एक दूसरी से पृथक् किया जा सकता है, यथा एक विलयन ऐसा लो जिसमें ताम्र लवण, कुप्यातु लवण और क्षारातु लवण सभी मिले हुए हों। उस विलयन में उदनीरिक अम्ल डाल कर उसमें से शुल्बारीयित उदजन ले जाने से ताम्र शुल्बेय निस्सादित हो जाएगा। उसे पावन विधा से अलग कर लो। फिर पावित विलयन में तिक्तातिं ले जाओ। कुप्यातु शुल्बेय नीचे बैठ जाएगा। उसे भी पावन विधा से अलग कर लो। पावित विलयन में केवल क्षारातु लवण शेष रह जाएगा।

शुल्बारीयित उदजन प्रहसनकर्त्री है—जारयिताओं के संस्पर्श में आने से शुल्बारीयित उदजन का विबन्धन बड़ी सरलता से परमाण्विक उदजन और शुल्बारि में हो जाता है और उदजन झट जारक से मिल कर पानी बना देती है। शुल्बारि अस्फटात्मक रूप में अलग हो जाती है। अतः शुल्बारीयित उदजन प्रबल प्रहसनकर्त्री है।

संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल में शुल्बारीयित उदजन ले जाने से शुल्बारि और शुल्बारि द्विजारेय बन जाते हैं। एवं—

$$२\ उ_{२}शुज_{४} + २\ उ_{२}शु = २\ शुज_{२} + ४\ उ_{२}ज + शु_{२}$$

इसी प्रकार भूयिक अम्ल और भूयीयों का प्रहसन कर के यह उनके भूयित बना देती है।

नीरजी-जल पर इस वाति की क्रिया होने से उदनीरिक अम्ल और शुल्बारि बनते हैं। एवं—

$$२\ नी_{२} + २\ उ_{२}शु = ४\ उनी + शु_{२}$$

शुल्बारीयित उदजन रक्त अयसिक लवणों को प्रहसित कर के हरे अयस्य लवण बना देती है। अयसिक नीरेय का प्रहसन निम्नलिखितरूप से होता है—

$$४\ अनी_{३} + २\ उ_{२}शु = ४\ अनी_{२} + ४\ उनी + शु_{२}$$

शुल्बेयों की परीक्षा

१. शुल्बेयों को उदनीरिक अम्ल के साथ तपाने से शुल्बारीयित उदजन उत्पन्न होती है। वाति की पहचान इसकी गन्ध से और सीस शुक्तीय पत्र (lead acetate paper) पर इसकी क्रिया से हो सकती है।

२. विलेय शुल्बेयों में सीस शुक्तीय मिलाने से काला निस्साद बैठ जाता है।

३. खुली नाल में तपाने से शुल्बारि जलने लगती है और शुल्बारि द्विजारेय बन जाती है।

शुल्बारीयित उदजन का निबन्ध—वाति में कुप्यातु डाल कर उन्हें मुँदी हुई नाल में इकट्ठा तपाया

जाता है कुप्यातु शुल्बेय और उद्‌जन उत्पन्न होते हैं। उद्‌जन की परिमा मौलिक उद्‌जन शुल्बेय की परिमा के तुल्य होती है। इसलिये शुल्बेय के एक व्यूहाणु में उद्‌जन का एक व्यूहाणु होता है। शुल्बारीयित उद्‌जन की सापेक्ष घनता १७·० है और व्यूहाणु-भार ३४·० है। उद्‌जन के व्यूहाणु का भार इसमें से घटाने से शेष ३२·० भाग शुल्बारि के एक परमाणु का भार है। अतः इसका सूत्र शु $उ_२$ है॥

इकतीसवाँ अध्याय

शुल्बारि द्विजारेय

शुल्बार्य अम्ल (sulphurous acid) और शुल्बित (sulphites)

प्राप्ति-स्थान—शुल्बारि द्विजारेय अथवा शुल्बार्य अजलेय, शु $ज_२$, नाम की वाति शुल्बारि के दहन से उत्पन्न होती है। ज्वालामुखी पर्वतों की वातियों में, झरनों के जलों में तथा वायु में भी यह वाति पाई जाती है। अंगार तथा अशुद्ध अंगार-वाति के जलने से यह उत्पन्न हो कर वायु में मिल जाती है।

शुल्बारि द्विजारेय का निर्माण—शुल्बारि द्विजारेय बनाने की तीन साधारण रीतियाँ हैं—

१. शुल्बारि, माक्षीक अथवा धात्विक शुल्बेयों के दहन से—वाणिजिक मात्रा में और विशेषकर शुल्बारिक अम्ल बनाने के लिये शुल्बारि द्विजारेय को इसी विधि से प्राप्त किया जाता है। शुद्ध शुल्बारि को जलाने से शुद्ध द्विजारेय बनती है। शुल्बारि, माक्षीक अथवा धात्विक शुल्बेयों को वायु अथवा जारक में जलाया जाता है। इन्हें जारक में जलाने से अल्प मात्रा में शुल्बारि त्रिजारेय भी बन जाती है। प्रतिक्रियाओं के समीकार निम्नलिखित हैं—

$$शु + ज_२ = शु ज_२$$

$$४ अ शु_२ + ११ ज_२ = ८ शु ज_२ + २ अ_२ ज_३$$

$$२ कु शु + ३ ज_२ = २ शु ज_२ + २ कु ज$$
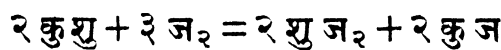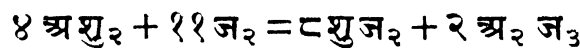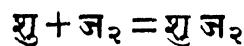
२. शुल्बारिक अम्ल के प्रह्रसन से—जब संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल को ताम्र, सीस, पारद आदि धातुओं के साथ तपाया जाता है तब अम्ल का कुछ भाग प्रह्रसित हो कर शुल्बार्य अम्ल बन जाता है। फिर शुल्बार्य अम्ल का विबन्धन हो कर शुल्बारि द्विजारेय और पानी बन जाते हैं। ताम्र की प्रतिक्रिया का सम्पूर्ण समीकार यह है—

$$ता + २ उ_२ शु ज_४ = शु ज_२ + २ उ_२ ज + ता शु ज_४$$
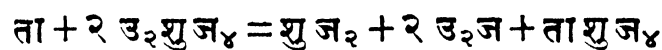
शुल्बारिक अम्ल का और आगे प्रह्रसन हो कर शुल्बारीयित उद्‌जन बन जाती है जिससे काले रंग का ताम्र शुल्बेय नीचे बैठ जाता है। इससे यह पता लगा कि रसायनिक समीकार पदार्थों के संयोग से होने वाली सभी प्रतिक्रियाओं के द्योतक नहीं होते, केवल मुख्य प्रतिक्रियाओं का निर्देश करते हैं।

कई बार शुल्बारिक अम्ल के साथ शुल्बारि अथवा प्रांगार को तपा कर भी द्विजारेय प्राप्त की जाती है। उनकी प्रतिक्रियाओं के समीकार ये हैं—

$$२ शु + ४ उ_२ शु ज_४ = ६ शु ज_२ + ४ उ_२ ज$$

$$प्र + २ उ_२ शु ज_४ = २ शु ज_२ + प्र ज_२ + २ उ_२ ज$$
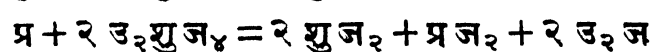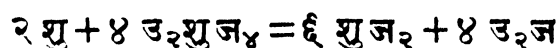
संपरीक्षा ६४—पलिघ में ताम्बा डाल कर उसके मुख में शृगाल-निवाप और मुड़ी हुई नाल लगा दो। नाल का दूसरा सिरा त्रिमुखी कूपी में रखे हुए संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल में डाल दो। कूपी के दूसरे मुख में अभय नाल और तीसरे में वाति प्रदान नाल लगा दो (चित्र ४१)। पलिघ में निवाप द्वारा संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल डाल दो जिससे ताम्बा और निवाप का दूसरा सिरा दोनों ही अम्ल में डूब जाएँ। अब पलिघ को तपाओ। जब क्रिया आरम्भ हो जाए तब पलिघ के नीचे से आँच हटा लो अन्यथा अम्ल में झाग उठ कर उबाल आने लगेगा। त्रिमुखी कूपी में संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल में से हो कर जाने से शुल्बारि द्विजारेय शुष्क हो जाएगी। अब उसे प्रदान नाल से अधोनिरसन द्वारा इकट्ठी कर लो।
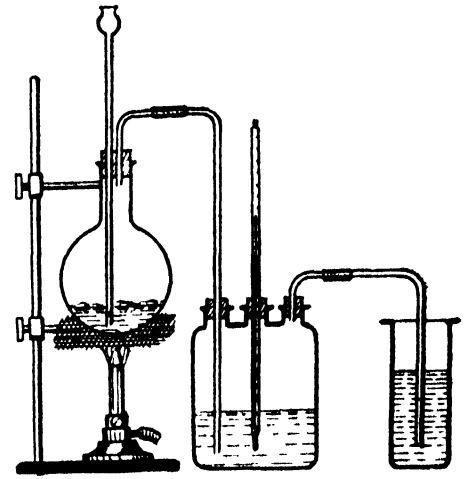
चित्र ४१

३. शुल्बितों (sulphites) पर अम्लों की क्रिया से—
शुल्बित शुल्बार्य अम्ल, $उ_2 शु ज_3$, के लवण होते हैं। जब अम्ल शुल्बित में डाला जाता है तब बिना तपाए ही शुल्बारि द्विजारेय बन जाती है। वास्तव में क्रिया दुहरी होती है। पहले शुल्बार्य अम्ल बनता है। फिर उसका विबन्धन होकर शुल्बारि द्विजारेय और पानी बन जाते हैं। क्षारातु शुल्बित और उदनीरिक अम्ल के प्रयोग से प्रतिक्रिया निम्नलिखित समीकारों के अनुसार होती है—

$$क्ष_2 शु ज_3 + २ उनी = २ क्ष नी + उ_2 शु ज_3$$

$$उ_2 शु ज_3 = शु ज_2 + उ_2 ज$$
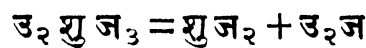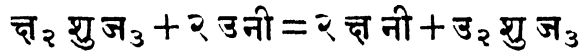
वाति बनाने की सरल विधि यह है कि पलिघ में अम्ल शुल्बित का विलयन डाल कर उसके मुख में बिन्दुपाति-निवाप और प्रदान नाल लगा दो (देखो चित्र २८)। निवाप में संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल डाल कर विलयन में बूँद बूँद कर के टपकाते जाओ।

शुल्बारि द्विजारेय के भौतिक गुण—यह वाति रंगहीन होती है। इसकी गन्ध जलती हुई गन्धक के समान होती है जिससे साँस घुटने लगता है। यह वायु से दुगुनी से भी अधिक भारी है। इसकी सापेक्ष घनता ३२·० है और व्यूहाणु-भार ६४·० है।

यह वाति पानी में अत्यधिक विलेय है। साधारण ताप पर पानी की एक परिमा में इसकी लगभग ५० परिमाएँ घुल जाती हैं। विलयन में से वाति की गन्ध आती है और उसमें शुल्बार्य अम्ल होता है जो नीले शेवल को पहले रक्त बना देता है और फिर उसका श्वेतन कर देता है। शुष्क शुल्बारि द्विजारेय की शेवल पर कोई क्रिया नहीं होती। विलयन को उबालने से शुल्बारि द्विजारेय सारी की सारी निकल जाती है।

इसका तरलन बड़ी सरलता से हो सकता है। -१०° श. ताप पर साधारण निपीड में इसका रंगहीन तरल बन जाता है। तरल के उद्बाष्पन से शीत अत्यधिक बढ़ जाता है इसलिये कृत्रिम हिम बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है।

शुल्बारि द्विजारेय के रसायनिक गुण—यह वाति न तो स्वयं वायु में जलती है और न ही साधारण दाह्यों के दहन की पोषक है। कई एक अतिजारेयों के साथ सीधी मिल कर इससे ऊष्मा और

प्रकाश का उद्भव होता है और शुल्बीय बन जाते हैं। क्षारातु अतिजारेय के साथ मिलने का समीकार यह है—

$$\text{क्षा}_2\text{ज}_2 + \text{शु ज}_2 = \text{क्षा}_2\text{ शु ज}_4$$
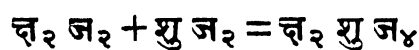
और सीस द्विजारेय के साथ मिलने का निम्नलिखित है—

$$\text{सी ज}_2 + \text{शु ज}_2 = \text{सी शु ज}_4$$
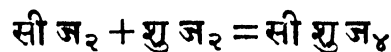
संपरीक्षा ६५—सीस द्विजारेय को उद्दहन स्रुव (deflagrating spoon) में तपा कर वाति में ले जाओ। श्वेत सीस शुल्बीय वन जाएगा और सारा पुञ्ज तप कर रक्त हो जाएगा। क्षारातु अति-जारेय के क्षोद को वाति के कलश में डालने से उसे आग लग जाती है।

शुल्बारि द्विजारेय अम्लकर जारेय है और शुल्बार्य अम्ल $\text{उ}_2\text{ शु ज}_3$, का अजलेय है। यह गीले रंजक पदार्थ का श्वेतन कर देती है और रोगाणुघ्न के रूप में भी बरती जाती है।

शुल्बार्य अम्ल ($\text{उ}_2\text{ शु ज}_3$)—जब शुल्बारि द्विजारेय को पानी में ले जाया जाता है तब वाति का कुछ भाग पानी से मिल कर शुल्बार्य अम्ल ($\text{उ}_2\text{ शु ज}_3$) बना देता है और शेष भाग विलयन में मिला रहता है, जो उष्ण करने से निकल जाता है। अस्थायी होने के कारण शुल्बार्य अम्ल मन्द विलयन के रूप में ही प्राप्त हो सकता है। इस मन्द विलयन के गुण निम्नलिखित हैं—

१. अम्ल गुण—शुल्बार्य अम्ल में मन्द अम्ल के सभी गुण पाए जाते हैं। पीठों द्वारा इसका क्लीबन करने से शुल्बित नाम के लवणों की माला प्राप्त होती है जिनमें से अधिकतर पानी में अविलेय हैं।

२. प्रह्रसन क्रिया—शुल्बार्य अम्ल उत्तम प्रह्रसन-कर्त्ता है क्योंकि यह वायु से अथवा जारक-युक्त पदार्थों से जारक को ग्रहण कर के झटपट शुल्बारिक अम्ल में परिणत हो जाता है। वायु में पड़ा रहने से इसकी प्रतिक्रिया का समीकार यह है—

$$2\ \text{उ}_2\text{शु ज}_3 + \text{ज}_2 = 2\ \text{उ}_2\text{ शु ज}_4$$
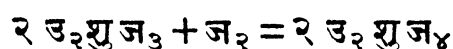
इसका विलयन बनाने से यह पानी में से जारक ले कर शुल्बारिक अम्ल बना देता है। प्रतिक्रिया निम्नलिखितरूप से होती है—

$$\text{उ}_2\text{शु ज}_3 + \text{उ}_2\text{ज} = \text{उ}_2\text{शु ज}_4 + 2\ \text{उ (परमाण्विक)}$$
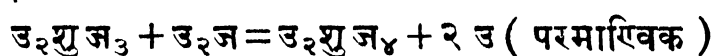
शुल्बार्य अम्ल शुल्बारीयित उदजन के समान अयसिक संयोग का प्रह्रसन कर के हरा अयस्य संयोग बना देता है किन्तु शुल्बारि निस्सादित नहीं होती।

नीरजी-जल शुल्बार्य अम्ल का जारण कर के शुल्बारिक अम्ल बना देता है और साथ ही उ रिक अम्ल भी बन जाता है। एवं—

$$\text{शु ज}_2 + \text{नी}_2 + 2\ \text{उ}_2\text{ ज} = \text{उ}_2\text{शु ज}_4 + 2\ \text{उ नी}$$
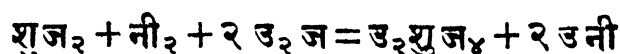
शुल्बार्य अम्ल धातु के रक्त द्विवर्णीय (red dichromate) को हरे वर्णातु लवण (green chromium salt) में परिणत कर देता है।

शुल्बारि द्विजारेय और शुल्बारीयित उदजन की प्रतिक्रियाओं से शुल्बारि और पानी बन जाते हैं। इस अवस्था में शुल्बारि द्विजारेय जारयित्री का काम करती है। ज्वालामुखी प्रदेशों में गन्धक इसी प्रकार बनती होगी। एवं—

$$2\ \text{शु ज}_2 + 4\ \text{उ}_2\text{शु} = 4\ \text{उ}_2\text{ज} + 3\ \text{शु}_2$$
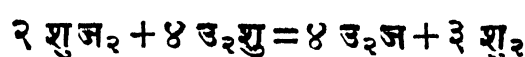
३. श्वेतन क्रिया—शुल्बार्य अम्ल शेवल का श्वेतन कर देता है। पानी में से जो परमाण्विक उद्‌जन निकलती है वही रंजक पदार्थ का श्वेतन करती है। किन्तु शुल्बारि द्विजारेय द्वारा किया हुआ श्वेतन अस्थायी (temporary) होता है, क्योंकि रंजक पदार्थ का सर्वथा नाश नहीं होता। उद्‌जन के साथ मिल कर उसका श्वेत रंग का संयोग बन जाता है। उद्‌जन का जारण हो जाने से श्वेतिमा उड़ जाती है। यही कारण है कि शुल्बारि द्विजारेय द्वारा श्वेत किये हुए छिद्रिष्ठों (sponges) और तृण की टोपियों (straw hats) की श्वेतिमा उड़ जाती है।

संपरीक्षा ९६—नील (indigo) के विलयन में शुल्बारि द्विजारेय ले जाओ। वह रंगहीन हो जाएगा। तब उसमें पाव-पत्र भिगो कर वायु में खुला रख दो। कुछ समय के पीछे पाव-पत्र नीला हो जाएगा।

शुल्बित (sulphites)—जब शुल्बार्य अम्ल की उद्‌जन का स्थान धातु ले लेती है तब उस धातु का शुल्बित बन जाता है। इस अम्ल में उद्‌जन के दो प्रतिस्थाप्य परमाणु होते हैं इसलिये यह द्विपैठिक है और इससे लवणों की दो मालाएँ बनती हैं, एक ऋजु और दूसरी अम्ल लवणों की। अम्ल क्षारातु शुल्बित (acid sodium sulphite) अथवा क्षारातु द्विशुल्बित, $क्ष उ शु ज_3$, बनाने के लिये क्षारातु उद्‌जारेय में शुल्बारि द्विजारेय को तब तक डालते जाना चाहिये जब तक वाति प्रचूषित होने से हट न जाए। इस विलयन में और अधिक क्षारातु उद्‌जारेय डालने से ऋजु क्षारातु शुल्बित बन जाएगा। इन प्रतिक्रियाओं के समीकार निम्नलिखित हैं—

$$क्ष ज उ + उ_2 शु ज_3 = क्ष उ शु ज_3 + उ_2 ज$$

$$क्ष ज उ + क्ष उ शु ज_3 = क्ष_2 शु ज_3 + उ_2 ज$$
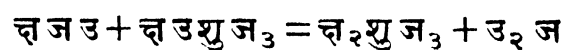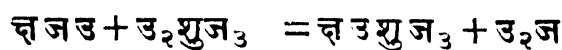
साधारणतया प्रांगारीय अथवा उद्‌जारेय के विलयन में शुल्बारि द्विजारेय को ले जाने से शुल्बित बन जाते हैं। चूर्णातु शुल्बित सरीखे शुल्बितों को चूर्णातु लवण के विलयन में क्षारातु शुल्बित डालने से निस्सादन द्वारा प्राप्त किया जाता है।

संपरीक्षा ९७—क्षारातु प्रांगारीय के तीव्र विलयन को माप कर उसमें शुल्बारि द्विजारेय को तब तक डालते जाओ जब तक वाति प्रचूपित होने से रुक न जाए। क्षारातु द्विशुल्बीय के स्फट निस्सादित हो जाएँगे।

इस प्रकार से बने हुए द्विशुल्बीय के विलयन में उतना ही क्षारातु प्रांगारीय का विलयन डाल देने से ऋजु लवण प्राप्त हो जाता है। विलयन का सावधानी से उद्वाष्पन करने से उसके स्फट बन जाते हैं। यह लवण रंगहीन होता है और शेवल-पत्र पर इसकी क्रिया क्षारिय होती है। द्विशुल्बीय की प्रतिक्रिया अम्लिक होती है।

शुल्बार्य अम्ल तथा शुल्बितों की परीक्षा

१. जब इन्हें उद्‌नीरिक अम्ल में डाल कर तपाया जाता है तब शुल्बारि द्विजारेय उत्पन्न हो कर निकलने लगती है। इसकी पहचान इसकी गन्ध से तथा दहातु द्विवर्णीय के विलयन में भिगोए हुए पत्र को हरा कर देने से हो सकती है।

२. कुप्यातु और उद्‌नीरिक अम्ल द्वारा शुल्बितों का प्रह्रसन हो कर शुल्बेय बन जाते हैं और शुल्बारीयित उद्‌जन का उद्भव होता है।

३. विलेय शुल्बितों के विलयन में हर्यातु नीरेय डालने से श्वेत रंग का हर्यातु शुल्बित निस्सादित हो जाता है। हर्यातु शुल्बित उदनीरिक अम्ल में घुल जाता है॥

बत्तीसवाँ अध्याय

शुल्बारि त्रिजारेय—शुल्बारिक अम्ल और शुल्बीय

शुल्बारि त्रिजारेय अथवा शुल्बारिक अजलेय, शु ज$_3$, की प्राप्ति—जब शुल्बारि को जारक में जलाया जाता है तब शुल्बारि द्विजारेय के साथ साथ सूक्ष्म मात्रा में शुल्बारि त्रिजारेय भी बन जाता है। इसी प्रकार जब शुल्बारि द्विजारेय और जारक को इकट्ठे तपाया जाता है तब प्रतिक्रिया की गति इतनी मन्थर होती है कि शुल्बारि त्रिजारेय के लेशमात्र ही बनते हैं। किन्तु यदि महातु के सूक्ष्म क्षोद जैसे आवेजक (catalytic agents) उपस्थित हों तो प्रतिक्रिया की गति बहुत तीव्र हो जाती है और शुल्बारि त्रिजारेय प्रचुर मात्रा में बनने लगता है। एवं—

$$२ शु ज_२ + ज_२ = २ शु ज_३$$
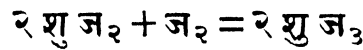
यदि यह प्रतिक्रिया ४००° श. के लगभग ताप पर हो तो त्रिजारेय की मात्रा बहुत अधिक बनेगी क्योंकि इस ताप पर शुल्बारि द्विजारेय का ६८ % भाग जारक के साथ संयुक्त हो जाएगा।

संपरीक्षा ६८—कठिन दहन नाल के कन्द को महातूयित अदह अर्थात् महातु के सूक्ष्म क्षोद से रोपित अदह (platinised asbestos, i.e., asbestos coated with finely divided platinum) से भर दो। संपरीक्षा ६४ द्वारा बनाई हुई शुल्बारि द्विजारेय को त्रिमुखी कूपी में रखे हुए संकेन्द्रित अम्ल में ले जाओ और कूपी के बीच वाले मुख की नाल में से जारक को भी अम्ल में ले जाओ। अब दोनों वातियों के मिश्र को उध्वबाहु नाल में से ले जाओ जिसमें संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल में भिगोया हुआ झामक (pumice) भरा हो। तत्पश्चात् उस मिश्र को दहन नाल में रखे हुए महातु वाले अदह पर से ले जाओ (चित्र ४२)। जब तक महातु तपेगा नहीं तब तक कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। महातु के तपने पर त्रिजारेय का श्वेत धूम उठने लगेगा। उस धूम को श्यान मिश्र में रखी हुई ऊध्वबाहु नाल में ले जा कर संघनित कर लो। सान्द्र त्रिजारेय बन जाएगा जो देखने में कौशेय (silk) के समान कोमल दिखाई देगा।
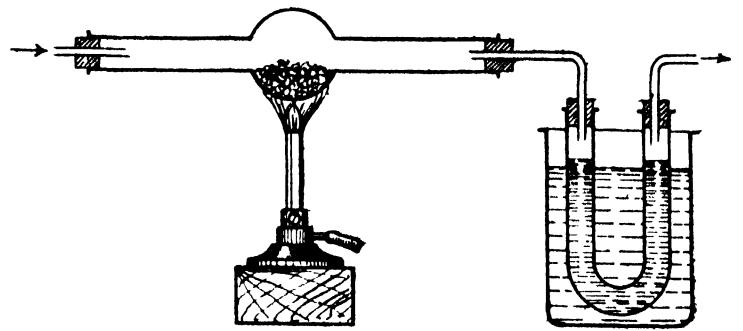
चित्र ४२

शुल्बारि त्रिजारेय के गुण—यह श्वेत रंग का कौशेय के समान दिखाई देने वाला स्फटात्मक सान्द्र है। यह १५° श. पर पिघल जाता है और ४६° श. पर उबलने लगता है। शुष्क त्रिजारेय की शेवल पर कोई क्रिया नहीं होती। रक्तोष्ण कर देने वाले ताप पर इसका विबन्धन शुल्बारि द्विजारेय और जारक में हो जाता है। यह पानी के साथ झटपट मिल जाता है और सीसी शब्द से बड़ी ऊष्मा को उत्पन्न करता हुआ शुल्बारिक अम्ल बना देता है। एवं—

$$शु ज_३ + उ_२ज = उ_२ शु ज_४$$
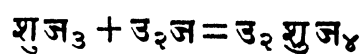
संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल में घुल कर यह धूमायमान (fuming) शुल्बारिक अम्ल बना देता है जिसे गीली वायु में रखने से उसमें से धूम उठने लगता है। एवं—

$$शु ज_3 + उ_2 शु ज_4 = उ_2 शु_2 ज_7$$
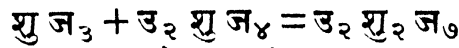
शुल्बारि त्रिजारेय अम्लकर जारेय है और कई पैठिक जारेयों के साथ सीधा मिल कर यह शुल्बीय बना देता है, यथा—

$$त्र_2 ज + शु ज_3 = त्र_2 शु ज_4$$
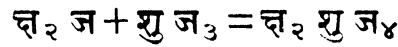
इसके बाष्प को तपे हुए चूर्णातु जारेय पर से ले जाने से चूर्णातु शुल्बीय बन जाता है। एवं—

$$चू ज + शु ज_3 = चू शु ज_4$$
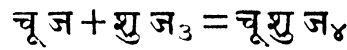
शुल्बारिक अम्ल, $उ_2 शु ज_4$—शुल्बारिक अम्ल बड़ा महत्त्वशाली प्रतिकर्ता (reagent) है। रसविद् (alchemists) इसका चिरकाल से प्रयोग करते आए हैं। अम्लों में से सबसे अधिक इसी अम्ल का प्रयोग होता है। प्रयोगशाला में ही नहीं किन्तु बड़े बड़े उद्योगों (industries) में भी यह बड़े काम की वस्तु है। उर्वरकों (fertilizers) के बनाने, मृत्तैल के संस्कार (refining) तथा लोहे और वज्रायस (steel) से मण्डूर के शल्क (scale) उतारने में इसका विशेषरूप से प्रयोग होता है। साधारणतया इसे 'काचर तैल' (oil of vitriol) भी कहते हैं क्योंकि पहले इसे अयस्य शुल्बीय अथवा हरे काचर को तपा कर बनाया जाता था।

शुल्बारिक अम्ल शुल्बार्य अम्ल के मन्थर जारण से बन जाता है। शुल्बारि त्रिजारेय और पानी के संयोग से भी यह बन जाता है और इसके बनाने की संस्पर्श-विधा (contact process) का आधार यही प्रतिक्रिया है (देखो पृष्ठ १३१)।

वेश्म-विधा (chamber process) द्वारा शुल्बारिक अम्ल की प्राप्ति—जब शुल्बारि द्विजारेय और जारक (वायु) को बाष्प (steam) की उपस्थिति में बड़े बड़े सीस-वेश्मों (leaden chambers) में भूयाति अतिजारेय के साथ मिलाया जाता है तब बहुत सी प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं जिनसे अन्त में शुल्बारिक अम्ल बन जाता है।

शुल्बारि द्विजारेय यद्यपि जारक के साथ सीधी संयुक्त नहीं होती तथापि भाप की उपस्थिति में भूयाति अतिजारेय से जारक ग्रहण कर के शुल्बारि त्रिजारेय, $शु ज_3$, बना देती है। तब वह शुल्बारि त्रिजारेय पानी के साथ मिल कर शुल्बारिक अम्ल, $उ_2 शु ज_4$, बना देती है। भूयाति अतिजारेय का प्रह्रसन हो कर उसकी भूयाति जारेय बन जाती है। एवं—

$$भू ज_2 + शु ज_2 = शु ज_3 + भू ज$$

$$शु ज_3 + उ_2 ज = उ_2 शु ज_4$$

अथवा एक समीकार में—

$$शु ज_2 + भू ज_2 + उ_2 ज = उ_2 शु ज_4 + भू ज$$
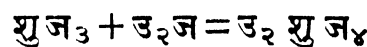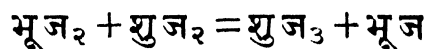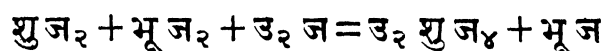
इस रीति से बनी हुई भूयाति जारेय, भू ज, वायु में से जारक को ले कर पुनः भूयाति अतिजारेय, $भू ज_2$, बना देती है जो भाप के अन्दर शुल्बारि द्विजारेय का जारण कर के पुनः त्रिजारेय बना देती है। शुल्बारि त्रिजारेय और पानी के मेल से और अधिक शुल्बारिक अम्ल बन जाता है।

$$२ भू ज + ज_2 = २ भू ज_2$$
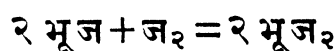
इस प्रकार भूयाति जारेय की क्षति नहीं होती और ऊपर लिखी प्रतिक्रियाओं का चक्र चलता रहता है। सिद्धान्तरूप से भूयाति जारेय की अपेक्षया थोड़ी सी मात्रा शुल्बारि द्विजारेय की बहुत सी मात्रा का अम्ल बना देती है। भूयाति जारेय वायु में से जारक ग्रहण कर के शुल्बारि द्विजारेय में मिलाती जाती है। अत: यह केवल वोढा (carrier) का काम देती है।

यदि भाप का वाह थोड़ा होगा तो सीस-वेश्मों में स्फट बन जाएँगे। इन स्फटों को 'वेश्म-स्फट' (chamber crystals) कहते हैं और इनका निबन्ध निम्नलिखित होता है—

$$\left.\begin{matrix} \text{उ ज} \\ \text{भू ज}_2 \end{matrix}\right\rangle \text{शु ज}_2$$
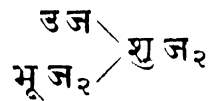
जब भाप को अधिक मात्रा में अन्दर भेजा जाएगा तब शुल्बारिक अम्ल और भूयाति के जारेय निम्नलिखित समीकार के अनुसार बनेंगे—

$$२ \left.\begin{matrix} \text{उ ज} \\ \text{भू ज}_2 \end{matrix}\right\rangle \text{शु ज}_2 + \text{उ}_2 \text{ ज} = २ \text{ उ}_2 \text{ शु ज}_4 + \text{भू ज}_2 + \text{भू ज}$$
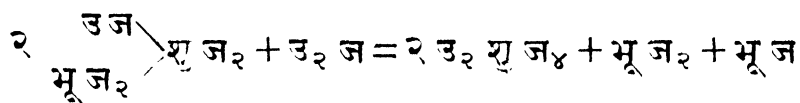
इस संपरीक्षा में काम आने वाली वातियाँ निम्नलिखित रीतियों से बनाई जाती हैं—

शुल्बारि द्विजारेय—शुल्बारि अथवा अयो माक्षीकों को खुली वायु में भ्राष्ट्रों के अन्दर जलाने से शुल्बारि द्विजारेय बनाई जाती है। इस द्विजारेय को वायु की आवश्यक मात्रा के साथ मिला कर सीस-वेश्मों में ले जाया जाता है। अयो माक्षीकों के जलने से नीचे लिखी प्रतिक्रिया होती है—

$$४ \text{ अ शु}_2 + ११ \text{ ज}_2 = २ \text{ अ}_2\text{ज}_3 + ८ \text{ शु ज}_2$$
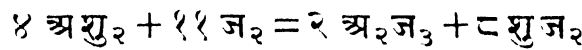
भूयाति अतिजारेय—पहले उपक्षार को शुल्बारिक अम्ल के साथ इकट्ठे तपा कर भूयिक अम्ल बनाया जाता है। फिर उससे भूयाति अतिजारेय प्राप्त की जाती है। जब भूयिक अम्ल वेश्म में प्रवेश करता है तब वह शुल्बारि द्विजारेय का त्रिजारेय बना देता है और स्वयं प्रह्रसित हो कर भूयाति अतिजारेय बन जाता है। एवं—

$$२ \text{ उ भू ज}_3 + \text{शु ज}_2 = \text{उ}_2 \text{ ज शु}_4 + २ \text{ भू ज}_2$$
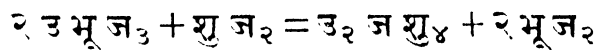
सिद्धान्तरूप से तो बहुत थोड़ी भूयाति अतिजारेय की आवश्यकता होती है, किन्तु व्यवहार में अधिक लग जाती है क्योंकि उसका कुछ भाग वायु में से उन्मुच्यमान भूयाति अपने साथ ले जाती है।

वेश्म में भाप छोटे छोटे बाष्पित्रों (boilers) द्वारा भेजी जाती है।

संपरीक्षा ६६—बड़े पलिघ 'क' में पाँच नालें लगाओ (चित्र ४३)। शुल्बारि द्विजारेय पलिघ 'ख' से जाती है, भूयिक जारेय कूपी 'ग' से, जारक पलिघ 'घ' से और बाष्प की अल्प मात्रा पलिघ 'ङ' से। पलिघ 'घ' में क्षारातु अतिजारेय और पानी डालने से जारक बड़ी सरलता से प्राप्त हो जाएगी। यदि बाष्प के वाह का सावधानी से यमन करोगे तो बड़े पलिघ के पार्श्वों पर वेश्म-स्फट
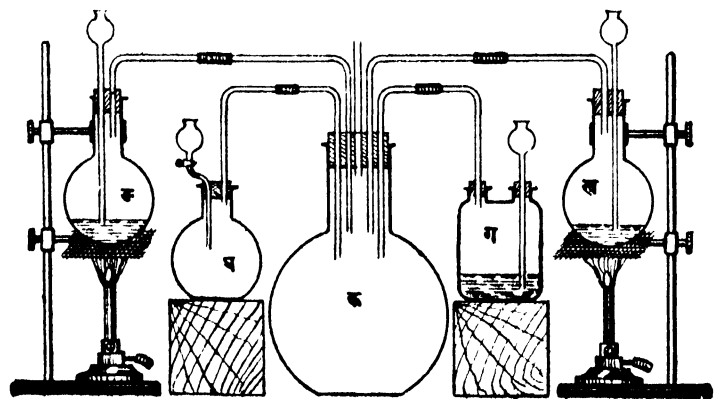
चित्र ४३

जम जाएँगे। यदि बाष्प अधिक मात्रा में अन्दर भेज दोगे तो स्फट लुप्त हो कर शुल्बारिक अम्ल और भूयाति के रक्त जारेय बनेंगे।

इस रीति से प्राप्त किया हुआ शुल्बारिक अम्ल थोड़ा मन्द होता है। इसमें वास्तविक अम्ल ६० से ७० प्रतिशत होता है। इस मन्द अम्ल को सीस अथवा काच के भाजनों में संकेन्द्रित करने से तीव्र अम्ल प्राप्त हो सकता है। सैकजा पात्रों (silica vessels) में तपाने से इसे और भी अधिक संकेन्द्रित किया जा सकता है। इस प्रकार ६८ प्रतिशत वास्तविक अम्ल प्राप्त किया जा सकता है। साधारण शुल्बारिक अम्ल में सीस शुल्बीय, नेपाली और भूयाति के जारेय ही मुख्य अशुद्धताएँ होती हैं। नेपाली कई प्रकार के माक्षीकों में मिला होता है जो शुल्बारि द्विजारेय बनाने के लिये बरते जाते हैं। आसवन विधा से अम्ल को शुद्ध किया जा सकता है। अम्ल में क्षारातु नीरेय मिला कर वकभाण्ड में तपाने से नेपाली और भूयाति के जारेय आसुत (distillate) के पहले भाग में निकल जाते हैं जिन्हें फेंक दिया जाता है और वकभाण्ड में सीस शुल्बीय रह जाता है। अति शुद्ध अम्ल बनाने के लिये शुल्बारि द्विजारेय शुद्ध शुल्बारि से प्राप्त करनी चाहिये, माक्षीकों से नहीं।

संस्पर्श-विधा (contact process) से शुल्बारिक अम्ल की प्राप्ति—इस विधा में होने वाली प्रतिक्रियाओं के समीकार निम्नलिखित हैं—

$$\text{शु} + \text{ज}_2 = \text{शुज}_2 \quad (१)$$
$$२\text{शुज}_2 + \text{ज}_2 = २\,\text{शुज}_3 \quad (२)$$
$$\text{शुज}_3 + \text{उ}_2\text{ज} = \text{उ}_2\,\text{शुज}_4 \quad (३)$$

समीकार (१) के अनुसार शुल्बारि अथवा अयो माक्षीक (अशु$_2$) के सदृश किसी शुल्बेय को वायु में जला कर शुल्बारि द्विजारेय प्राप्त की जाती है। फिर इस शुल्बारि द्विजारेय में जारक की आवश्यक मात्रा मिलाने के लिये उसे पर्याप्त वायु के साथ मिला कर लोहे की नालों में से ले जाया जाता है। लोहे की नालों में अदह अथवा क्षारातु शुल्बीय जैसे रन्ध्री पदार्थ भरे होते हैं, जिन में महातु का सूक्ष्म क्षोद अथवा अयसिक जारेय के समान आवेजक डाले हुए होते हैं। इनको ३००° श. ताप तक तपाया जाता है। तब समीकार (२) के अनुसार शुल्बारि त्रिजारेय बन जाता है (देखो संपरीक्षा ६८)। तत्पश्चात् शुल्बारि त्रिजारेय को पानी के संस्पर्श में लाया जाता है जिससे मिल कर समीकार (३) के अनुसार शुल्बारिक अम्ल बन जाता है।

शुल्बारि द्विजारेय और वायु को बड़ी सावधानी से धूलि, नेपाली और शुल्बारिक अम्ल के लेशों से मुक्त कर लेना चाहिये अन्यथा कुछ समय के पीछे महातु की आवेजनिक शक्ति नष्ट हो जायगी है।

वेश्म-विधा सस्ती है और संस्पर्श-विधा महँगी, किन्तु इससे प्राप्त अम्ल अधिक शुद्ध होता है।

शुल्बारिक अम्ल के भौतिक गुण—शुद्ध अजल शुल्बारिक अम्ल, जिसे उदजन शुल्बीय कहना अधिक ठीक होगा, रंगहीन तेल जैसा तरल होता है जो पानी से दुगुना भारी होता है। साधारण संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल में लगभग २ % पानी होता है। इसकी सापेक्ष घनता १.८४ होती है और यह ३३८° श. पर उबलने लगता है। शुल्बारिक अम्ल का आसवन करने से शुल्बारि त्रिजारेय और पानी अलग अलग हो जाते हैं, किन्तु ठण्डे होने पर फिर संयुक्त हो जाते हैं।

शुल्बारिक अम्ल के रसायनिक गुण—रसायनिक गुणों के कारण रसायन में शुल्बारिक अम्ल का बहुत भारी महत्त्व है। इसकी प्रतिक्रियाएँ निम्नलिखितरूपों में अभिव्यक्त होती हैं—

१. विजलीयन-कर्ता, २. जारण-कर्ता और ३. अम्ल।

१. शुल्बारिक अम्ल विजलीयन-कर्ता के रूप में—शुल्बारिक अम्ल सरलता से पानी के साथ संयुक्त हो जाता है। वायु में से आर्द्रता (moisture) का प्रचूषण कर लेने के कारण यह कई वातियों को सुखाने के प्रयोग में लाया जाता है। इसको पानी में डालने से बहुत अधिक ऊष्मा का उद्भव होता है।

यह अम्ल कई संयोगों में से जल के तत्त्वों का अपहरण कर लेता है। इसी कारण प्रांगार एकजारेय बनाते समय तिग्मिक अम्ल (oxalic acid) में से पानी का अपहरण करने के लिये इसका प्रयोग किया गया था (देखो संपरीक्षा ८६)। यह शर्करा में से पानी का अपहरण कर के प्रांगार को शेष छोड़ देता है। इसी कारण से यह पत्र को भी जला देता है।

२. शुल्बारिक अम्ल जारण-कर्ता के रूप में—शुल्बारिक अम्ल में जारक की प्रतिशतता बहुत होती है। इसलिये भूयिक अम्ल के समान यह भी एक अच्छा जारणकर्ता है। शुल्बारिक अम्ल को रक्तोष्ण ईंटों पर से ले जाने से इसका विबन्धन शुल्बारि द्विजारेय, पानी और जारक में हो जाता है। एवं—

$$२\ उ_{२}शुज_{४} = २\ उ_{२}ज + २\ शुज_{२} + ज_{२}$$
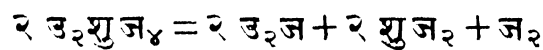
जब संकेन्द्रित अम्ल के साथ प्रांगार, शुल्बारि अथवा अन्य कई पदार्थों को तपाया जाता है तब उनका जारण हो जाता है और प्रांगार द्विजारेय, शुल्बारि द्विजारेय आदि बन जाते हैं (देखो पृष्ठ १२४)। एवं—

$$प्र + २\ उ_{२}शुज_{४} = प्रज_{२} + २\ शुज_{२} + २\ उ_{२}ज$$
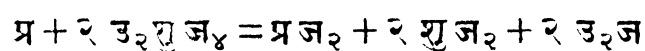
३. अम्ल के रूप में—यह द्विपैठिक अम्ल है क्योंकि इसके व्यूहाणु में उदजन के दो प्रतिस्थाप्य परमाणु होते हैं। इसके क्षारातु लवण ये हैं—

$क्ष\,उशुज_{४}$, क्षारातु उदजन अथवा द्विशुल्बीय

$क्ष_{२}शुज_{४}$, ऋजु क्षारातु शुल्बीय

ऋजु क्षारातु लवण क्षारातु उदजारेय का शुल्बारिक अम्ल द्वारा क्लीबन करने से बनता है (देखो संपरीक्षा ६४)। ऋजु लवण में और अधिक अम्ल डाल देने से अम्ल लवण बन जाता है।

शुल्बारिक अम्ल के लवण (शुल्बीय)—वाणिज्य में शुल्बीय बहुत अधिक प्रयोग में आते हैं। ऋजु लवण सभी सान्द्र होते हैं और हर्यातु, शोणातु और सीस के लवणों को छोड़ कर शेष सभी लवण पानी में घुल जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कई शुल्बीय, विशेष कर चूर्णातु और रजत के शुल्बीय, पानी में किञ्चिन्मात्र ही घुलते हैं। कई शुल्बीय काचरों (vitriols) के नाम से प्रसिद्ध हैं, यथा—

अयस्य शुल्बीय, $अ\,शुज_{४}.७\,उ_{२}ज$, को 'हरा काचर' कहते हैं।

ताम्र शुल्बीय, $ता\,शुज_{४}.५\,उ_{२}ज$ को 'नीला काचर' कहते हैं।

कुप्यातु शुल्बीय, $कु\,शुज_{४}.७\,उ_{२}ज$ को 'श्वेत काचर' कहते हैं।

शुल्बीयों को बनाने की रीतियाँ निम्नलिखित हैं—

१. शुल्बारिक अम्ल पर धातु की क्रिया से—ताम्र, कुप्यातु और लोहे आदि कई धातुओं के शुल्बीय इस रीति से बनते हैं। यदि मन्द अम्ल का प्रयोग किया जाए तो उदजन निकल जाती है और यदि संकेन्द्रित उष्ण अम्ल प्रयोग में लाया जाए तो शुल्बारि द्विजारेय बन जाती है।

२. पीठ अथवा प्रांगारीय पर अम्ल की क्रिया से—यह रीति अधिकतर प्रयोग में लाई जाती है। इस रीति से ताम्र जारेय पर शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से ताम्र शुल्बीय बनाया जाता है (देखो पृष्ठ ७०)।

३. शुल्बारिक अम्ल और उससे अधिक उत्पत अम्ल के लवण के मिलने से द्विगुण विबन्धन द्वारा—उदाहरण के लिये क्षारातु नीरेय और शुल्बारिक अम्ल को चण्ड ताप पर तपाने से क्षारातु शुल्बीय, $क्ष_2शु ज_4$, बनाया जा सकता है। एवं—

$$२ क्ष नी + उ_2शु ज_4 = क्ष_2शु ज_4 + २ उ नी$$
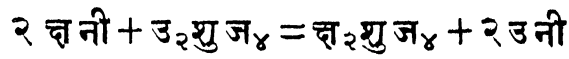
कई बार कहा जाता है कि उदनीरिक अम्ल की अपेक्षा शुल्बारिक अम्ल अधिक प्रबल (stronger) होता है क्योंकि यह इस प्रकार नीरजी को निकाल देता है। किन्तु यह बात ठीक नहीं। यह क्रिया इसलिये होती है कि अधिक उत्पत होने के कारण ज्यों ही उदनीरिक अम्ल बनता है त्यों ही उड़ जाता है। देखा गया है कि समान परिस्थितियों में यदि किसी पीठ को शुल्बारिक अम्ल और उदनीरिक अम्ल के मन्द विलयनों में डाला जाए तो शुल्बारिक अम्ल की अपेक्षा उदनीरिक अम्ल के साथ पीठ की अधिकतर मात्रा संयुक्त होती है। अत: वास्तव में उदनीरिक अम्ल अधिक प्रबल है। प्रतिक्रिया में से उत्पत पदार्थ अलग हो कर जैसे प्रतिक्रिया को पूर्ण होने में सहायता देता है वैसे ही अविलेय लवण निस्सादित हो कर प्रतिक्रिया को अग्रसर करता है (देखो नीचे)।

४. द्विगुण विबन्धन और निस्सादन द्वारा—इस रीति से अविलेय शुल्बीय बनते हैं। उदाहरणार्थ जब विलेय शुल्बीय का विलयन और हर्यातु नीरेय का विलयन आपस में मिलाए जाते हैं तव हर्यातु शुल्बीय नीचे निस्सादित हो जाता है। हर्यातु शुल्बीय निम्नलिखित समीकार के अनुसार बनता है—

$$ह नी_2 + क्ष_2शु ज_4 = ह शु ज_4 + २ क्ष नी$$
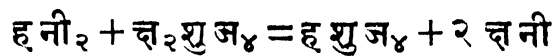
शुल्बीयों की परीक्षा

१. विलेय शुल्बीय के विलयन में हर्यातु नीरेय मिलाने से श्वेत हर्यातु शुल्बीय नीचे बैठ जाएगा। यह शुल्बीय अम्लों में प्रविलीन नहीं होता।

अविलेय शुल्बीय को क्षारातु प्रांगारीय के साथ पिघलाया अथवा उबाला जाता है। इससे द्विगुण विबन्धन द्वारा क्षारातु शुल्बीय और पानी में अविलेय प्रांगारीय बन जाते हैं। सीस शुल्बीय की प्रतिक्रिया निम्नलिखितरूप से होती है—

$$सी शु ज_4 + क्ष_2प्र ज_3 = सी प्र ज_3 + क्ष_2शु ज_4$$
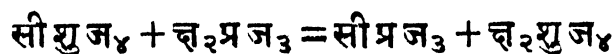
सीस प्रांगारीय को पावन विधा से पृथक् कर के विलयन में से शुल्बीय की परीक्षा कर लो।

२. क्षारातु प्रांगारीय के साथ शुल्बीयों को अंगारों पर रख कर जब प्रह्रासक धमनाड-ज्वाला में तपाया जाता है तब शुल्बेय बन जाता है। एवं—

$$क्ष_2 शु ज_4 + २ प्र = क्ष_2 शु + २ प्र ज_2$$
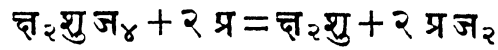
यदि अवशिष्ट पदार्थ में पानी मिला कर उसे चाँदी के टंक (coin) पर डाल दिया जाए तो काले रंग का रजत शुल्बेय बन जाएगा ॥

तेंतीसवाँ अध्याय

भास्वर

सब से पहले भास्वर की प्राप्ति रसविदों (alchemists) को हुई थी जब वे संकेन्द्रित मूत्र में रेत के मिश्र का आसवन कर रहे थे। इस के आंगल नाम फ़ॉस्फ़ोरस में फ़ॉस् संस्कृत के भास् (=प्रकाश) शब्द से बना है। अन्धेरे में चमकने के कारण ही इसका यह नाम रखा गया था।

भास्वर की प्राप्ति—यह तत्त्व मुख्यत: अस्थि-भस्म (चूर्णातु भास्वीय) से, जो कि हड्डियों को जलाने के पीछे बच रहती है, प्राप्त किया जाता है। चूर्णातु भास्वीय का शुल्वारिक अम्ल के साथ साधन करने से चूर्णातु शुल्वीय और भास्विक अम्ल बन जाते हैं। एवं—

$$चू_3 (भ ज_4)_2 + ३ उ_2 शु ज_4 = ३ चू शु ज_4 + २ उ_3 भ ज_4$$
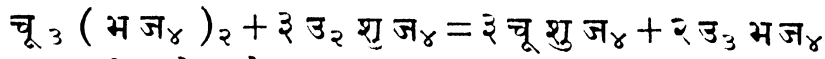
चूर्णातु शुल्बीय अविलेय होता है। इसलिये पावन विधा से अलग कर लिया जाता है। फिर विलयन में काष्ठांगार मिला कर उसे तपाया जाता है। ऊर्ध्वभास्विक अम्ल (ortho-phosphoric acid) में से पानी निकल जाने से समभास्विक अम्ल (meta-phosphoric acid) बन जाता है। एवं—

$$उ_3 भ ज_4 = उ भ ज_3 + उ_2 ज$$
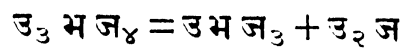
तब मिश्र को मिट्टी के वकभाण्डों में बहुत चण्ड ताप पर तपाया जाता है। इससे प्रांगार एकजारेय, उदजन और भास्वर का आसवन हो जाता है। एवं—

$$४ उ भ ज_3 + १२ प्र = २ उ_2 + १२ प्र ज + भ_4$$
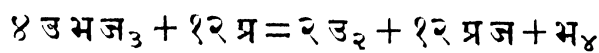
आसुत भास्वर पानी में इकट्ठा किया जाता है। उस पिघली हुई अवस्था में चमड़े के अन्दर डाल कर निचोड़ने से शुद्ध कर किया जा सकता है। आज कल इस रीति से भास्वर नहीं बनाया जाता। चूर्णातु भास्वीय को प्रांगार और रेत में मिला कर और विद्युत् चाप भ्राष्ट्र (electric arc furnace) में तपा कर भास्वर सीधा ही प्राप्त कर लिया जाता है। इस प्रकार से श्वेत भास्वर, चूर्णातु सैकतीय और प्रांगार एकजारेय बन जाते हैं।

भास्वर के भौतिक गुण—शुद्ध भास्वर श्वेत अथवा पीले रंग का पारभास अथवा अर्ध-पारदर्श (transluscent or semi-transparent) सान्द्र होता है जो ४४°श. पर पिघल जाता है और २९०° श. पर उबलने लगता है। कोष्ण जल में डाल कर इसको जिस आकार में चाहो ढाल लो। यह

छुरी से कटजाता है, किन्तु इसे सदा पानी के अन्दर ही काटना चाहिये क्योंकि अत्यधिक अभिज्वाल्य (inflammable) होने के कारण छुरी की रगड़ से ही यह वायु में जलने लगता है। पानी में यह नहीं घुलता, किन्तु प्रांगार द्विशुल्बेय आदि अन्य तरलों में घुल जाता है। इसकी घनता १·८ है। इसके व्यूहाणु में चार परमाणु होते हैं अतः इसका व्यूहाणु-सूत्र $भ_४$ है।

भास्वर के रसायनिक गुण—वायु में रखने से जारक के साथ मिल कर इसका धीरे धीरे जारण होता रहता है और इसमें से हलके पीले रंग का प्रकाश निकलता रहता है जिसे 'भासा' (phosphorescence) कहते हैं। यह प्रकाश अन्धेरे में चमकता है। भास्वर हाथ पर रखने से जलने लगता है और कई बार तो कोठे (room) की उष्णता ही इसे जलाने के लिये पर्याप्त होती है। इसकी ज्वाला जलते समय फड़फड़ाती (spluttering flame) है और इसमें से भास्वर जारेय का सघन धूम उठता है। जारक में ले जाने से यह चुँधिया देने वाली चमक से जलता है। यह लवणजनों तथा कई एक तत्त्वों के साथ सीधा संयुक्त हो जाता है। इसे पानी में सुरक्षित रखा जाता है।

भास्वर अत्यधिक विषैला होता है। ०·२ से ०·३ धान्य मात्रा में भी यह घातक होता है। आटे और तेल आदि में गूँधकर इससे चूहों को मारने की गोलियाँ बनाई जाती हैं।

भास्वर के अपरावर्तिक रूप दो होते हैं, एक श्वेत अथवा पीला जिसके स्फट तिर्यग्वर्गरूप होते हैं और दूसरा रक्त जिसके स्फट षट्कोण (hexagonal) होते हैं।

रक्त भास्वर—श्वेत भास्वर यदि चिरकाल तक पड़ा रहे तो धीरे धीरे इसमें अत्यधिक परिवर्तन हो जाता है। इसका गहरे रक्त रंग का चोद बन जाता है जिसकी घनता २·१ से २·३ तक होती है। इसे 'रक्त भास्वर' कहते हैं। यह प्रांगार द्विजारेय में नहीं घुलता और न ही शीघ्र जलता है। यह विषैला भी नहीं होता। ताप की वृद्धि से श्वेत भास्वर के रक्त भास्वर में परिणत होने की गति द्रुत हो जाती है। इसलिये श्वेत भास्वर को वायु-रहित लोहे के पात्रों में २५०° श. तक तपा कर रक्त भास्वर बनाया जाता है। साधारण ताप पर रक्त भास्वर का सूखी वायु में जारण नहीं होता किन्तु यदि इसे ३६०° श. तक तपाया जाए तो इसके वाष्प बन जाएँगे जो वायु में जलने लगेंगे। उनको वायु के अभाव में संघनित करने से वे पुनः श्वेत भास्वर में परिणत हो जाएँगे*।

साधारण दियासलाइयों के सिरे श्वेत भास्वर में डुबोए होते हैं। वे रगड़ने से जलने लगती हैं। किन्तु अभय दियासलाइयों (safety matches) के सिरे दहातु नीरीय और अंजन शुल्बेय के मिश्र से लीपे होते हैं। यह मिश्र रक्त भास्वर और चूर्ण काच के लेप से पुते हुए तल पर घिसने से जल उठता है।

भास्वरित उदजन अथवा भास्वी (phosphoretted hydrogen or phsphine) $भ उ_3$— यह संयोग जिसे 'भास्वर जलेय' भी कहते हैं श्वेत भास्वर को दह विक्षार के तीव्र विलयन के साथ अंगार-वाति के वायुमण्डल में तपाने से प्राप्त किया जाता है। समीकार यह है—

$$भ_४ + ३ \text{ क्ष ज उ} + ३ \text{ उ}_२\text{ज} = \text{भ उ}_3 + ३ \text{ क्ष उ}_२ \text{ भ ज}_२$$

(क्षारातु उपभास्वित sodium hypophosphite)।

---
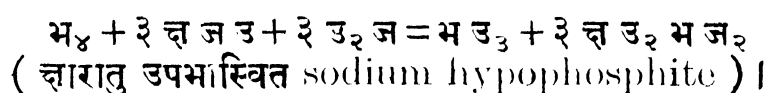
*यह एक उत्सर्ग है कि जो पदार्थ एक से अधिक रूपों में रह सकता है उसका यदि वाति रूप से संघनन अथवा तरल रूप से स्फटन किया जाए तो पहले उसका अधिक अस्थायी रूप बनेगा जो तदनन्तर अधिक स्थायी रूप में परिणत हो जाएगा।

वायु में आते ही इस वाति ($भ उ_3$) को आग लग जाती है क्योंकि इसमें अशुद्धताएँ मिली होती हैं। यह वाति रंगहीन होती है और इसका विबन्धन सरलता से हो जाता है। इसकी गन्ध अरुचिकर होती है। नीच ताप पर यह लवणाभ अम्लों (haloid acids) से संयुक्त हो कर भास्वतातु जम्बेय, $भ उ_4 जं$ (phosphonium iodide) के समान भास्वतातु के संयोग बनाती है। ये संयोग तिक्तातु संयोगों से मिलते जुलते हैं। भास्वतातु संयोगों को दह क्षारकों के साथ तपाने से शुद्ध भास्वी बनाई जा सकती है। एवं—

$$भ उ_4 जं + द जउ = भ उ_3 + द जं + उ_2 ज$$
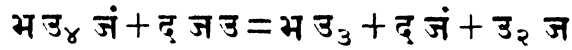
इसका विबन्धन नीरजी से हो जाता है।

भास्व्य अजलेय (phosphorous anhydride) अथवा भास्वर त्रिजारेय, $भ_4 ज_6$— कठिन काच नाल में पीले भास्वर के कुछ टुकड़े रख कर उन्हें जारक के धीमे वाह में जलाओ। भास्वर के जलने से भास्वर त्रिजारेय, $भ_4ज_6$ और भास्विक अजलेय, $भ_2ज_5$ का मिश्र प्राप्त होगा। इस मिश्र को संघनक में से ले जाओ जिस के अन्दर बीच में काचोर्णा (glass wool) का डाट (plug) रखा हो और जिसका सिरा श्यान-मिश्र में रखी हुई ऊर्ध्व-बाहु नाल से जोड़ा हुआ हो। भास्विक अजलेय काचोर्णा में रुक जाएगा और भास्वर त्रिजारेय, आगे चल कर ऊर्ध्व-बाहु नाल में संघनित हो जाएगा। यह श्वेत रंग का स्फटात्मक संयोग होता है जो पानी में घुल कर भास्व्य अम्ल बना देता है।

भास्वर पञ्चजारेय अथवा भास्विक अजलेय, $अ_4ज_{10}$—यह जारेय शुष्क पीले भास्वर को खुली वायु में जलाने से बड़ी सरलता से बन जाता है। संघनित हो कर पञ्चजारेय के क्षोद का ढेर लग जाता है जिसे 'भास्वर-पुष्प' (flowers of phosphorus) कहते हैं। एवं—

$$भ_4 + ५ ज_2 = भ_4 ज_{10}$$
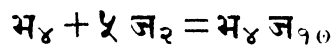
इस जारेय में कुछ अंश नीच जारेयों के भी मिले होते हैं। यदि इस मिश्र को शुष्क जारक के साथ महातृयित अदह (platinized asbestos) पर से ले जाया जाए तो नीच जारेय पञ्चजारेय में परिणत हो जाते हैं।

यह श्वेत रंग का अस्फटात्मक और उत्पत्त क्षोद होता है। अत्यधिक उन्दचूष होने के कारण इसे शोषणकर्ता के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह भूयिक और शुल्बारिक अम्लों में से पानी का अपहरण कर के उनके अजलेयों का उन्मोचन कर देता है।

भास्व्य अम्ल, $उ_3भ ज_3$—यह अम्ल भास्वर त्रिजारेय के पानी में धीरे धीरे घुलने से बन जाता है। एवं—

$$भ_4ज_6 + ६ उ_2ज = ४ उ_3भ ज_3$$
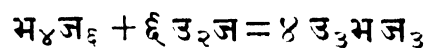
यह श्वेत स्फटात्मक पदार्थ होता है जिसको तपाने से विबन्धन होकर भास्विक अम्ल और भास्वी बन जाते हैं। यह प्रह्रसनकर्ता का काम करता है क्योंकि जब इसका विलयन बनाया जाता है तब यह बड़ी सरलता से भास्विक अम्ल में परिणत हो जाता है। यह संयोग त्रिपैठिक है।

भास्विक अम्ल—जब भास्वर पञ्चजारेय पानी में घुलता है तब सम भास्विक अम्ल (metaphosphoric acid) बन जाता है। एवं—

$$भ_4ज_{10} + २ उ_2ज = ४ उभज_3 \text{ (अथवा } उ_2भ_2ज_6 \text{)}$$
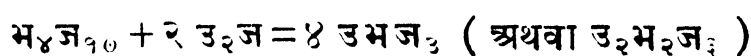
यदि विलयन को उबाला जाए तो उसमें और अधिक पानी संयुक्त हो कर ऊर्ध्वभास्विक अम्ल (ortho-phosphoric acid) बन जाएगा । एवं—

$$उभज_3 + उ_2ज = उ_3भज_4$$
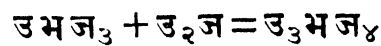
ऊर्ध्व-भास्विक अम्ल रक्त भास्वर और भूयिक अम्ल को इकट्ठे तपाने से भी बन जाता है। उबालने पर मिष्टोद (syrup) के समान तरल प्राप्त होता है जिसके नीचे कुछ समय के पश्चात् रंग-हीन स्फट बैठ जाते हैं। समभास्विक अम्ल एकपैठिक है और ऊर्ध्वभास्विक अम्ल त्रिपैठिक है। इससे तीन क्षारातु लवण बनते हैं जिनमें से क्लीब लवण, $क्ष_2उभज_2$, सब से अधिक स्थायी है। इसके लवणों को 'भास्वीय' कहते हैं।

भास्वर के नीरेय—नीरजी में भास्वर सरलता से जल जाता है। नीरजी की न्यूनाधिक मात्रा के अनुसार इसके दो नीरेय बनते हैं। यदि नीरजी थोड़ी हो तो भास्वर त्रिनीरेय, $भनी_3$, और यदि अधिक हो तो भास्वर पञ्चनीरेय, $भनी_5$, बनता है। त्रिनीरेय तरल होता है और पञ्चनीरेय सान्द्र। कई प्रांगारिक (organic) संयोगों के बनाने में इन नीरेयों का बड़ा महत्त्व है।

भास्वर त्रिजारेय की पानी के साथ प्रतिक्रिया से भास्व्य अम्ल और उदनीरिक अम्ल बन जाते हैं। एवं—

$$भनी_3 + ३\ उ.जउ = उ_3भज_3 + ३\ उनी$$
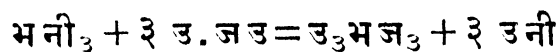
पञ्चजारेय की पानी के साथ प्रतिक्रिया निम्नलिखितरूप से होती है—

$$भनी_5 + ४\ उ.जउ = उ_3भज_4 + ५\ उनी$$
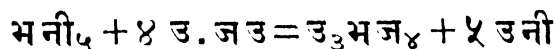
भास्वीयों की परीक्षा

१. क्लीब विलयन की अवस्था में भास्वीयों को चूर्णातु लवण में मिलाने से श्वेत रंग का चूर्णातु भास्वीय निस्सादित हो जाता है।

२. इन्हें तिक्तातु संवर्णीय (ammonium molybdate) और भूयिक अम्ल के विलयन में तपाने से पीले रंग का निस्साद नीचे बैठ जाता है।

३. क्लीब विलयन की अवस्था में इन्हें रजत भूयीय के साथ मिलाने से पीले रंग का रजत भास्वीय नीचे बैठ जाता है।

भूयाति और भास्वर—ये दोनों तत्त्व एक ही कुल के हैं (नेपाली, अंजन और भिदातु भी इसी कुल में हैं)। दोनों ही पञ्चसंयुज (quinquevalent) हैं, किन्तु तिक्ताति और भास्वी में ये त्रि-संयुज हैं। दोनों ही अधातु तत्त्व हैं और जारक तथा नीरजी के साथ एक जैसे संयोग बनाते हैं, यथा—$भू_2ज_5$ और $भ_2ज_5$ ($भ_4ज_{10}$); $भूनी_3$ और $भनी_3$।

दोनों के पञ्चजारेय बड़ी सरलता से पानी के साथ मिल कर अम्ल (भूयिक अम्ल, $उभूज_3$, और समभास्विक अम्ल, $उभज_3$) बना देते हैं।

भूयाति से तिक्तातु वर्ग, $भूउ_4$, बनता है जो धातुओं के समान लवण बनाता है। इसी प्रकार भास्वर से भास्वतातु (phosphonium) वर्ग बनता है जो तिक्तातु के अनुरूप ही लवण बनाता है। तिक्तातु- और भास्वतातु-लवणों को क्षारक के साथ तपाने से वातिय उदेय (gaseous hydrides) प्राप्त होते हैं।

चौंतीसवाँ अध्याय

कुछ सामान्य धातु और उनके संयोग

क्षारातु

क्षारातु, क्ष—यह धातु कोमल होती है। सद्यः कटी हुई धातु का तल चाँदी के समान चमकता है। यह पानी से हलकी होती है। गीली वायु में इसका क्षिप्रता से जारण हो जाता है। वायु अथवा जारक में जलने से इसका अतिजारेय, क्षज$_2$, बन जाता है।

पिघले हुए (fused) क्षारातु उदजारेय का विद्युद्दंशन करने से क्षारातु प्राप्त हो जाता है। एक ध्रुव से जारक निकलती है और दूसरे ध्रुव से उदजन। उदजन वाले ध्रुव के चारों ओर क्षारातु इकट्ठा होता जाता है।

क्षारातु उदजारेय, क्षजउ—यह संयोग, जिसे क्षारातु जलीय अथवा दह क्षार भी कहते हैं, क्षारातु जारेय, क्ष$_2$ज, का जलीयित रूप है।

जब क्षारातु पानी पर क्रिया करता है तब शुद्ध उदजारेय बनता है। शान्त चूर्णक और क्षारातु प्रांगारीय के मन्द विलयन को इकट्ठे उबालने से भी क्षारातु उदजारेय बन जाता है। समीकार यह है—

$$क्ष_2प्रज_3 + चू(जउ)_2 = 2\ क्षजउ + चूप्रज_3$$
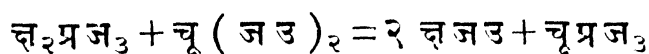
विलयन को पावित कर के उद्वाष्पन द्वारा सुखा लिया जाता है। दह क्षार श्वेत रंग का भिदुर सान्द्र होता है जो स्पर्श में चिकना और स्वाद में जलाने वाला होता है। इसका शीघ्रता से द्रावण हो सकता है और प्रायः साँचों में इसकी यष्टियाँ बना ली जाती हैं। यह क्लेदक्षर (deliquescent) है और पानी में अत्यधिक विलेय है। यह सान्द्र और विलयन दोनों ही अवस्थाओं में यदि गीला हो तो प्रांगार द्विजारेय के समान अम्ल वातियों का शीघ्रता से प्रचूषण कर के लवण बना देते हैं। क्षारातु उदजारेय प्रबल क्षारक है।

क्षारातु नीरेय, क्षनी—क्षारातु नीरेय अथवा सामान्य लवण प्रकृति में शैल लवण के रूप में बहुत पाया जाता है। समुद्र-जल में यह प्रविलीन अवस्था में होता है। यह क्षारातु और नीरजी के सीधे संयोग से बनता है। दह क्षार अथवा क्षारातु प्रांगारीय के विलयन में उदनीरिक अम्ल मिलाने से भी यह बन जाता है।

यह श्वेत रंग का भिदुर सान्द्र होता है। इसके स्फट घनाकार और पारदर्श होते हैं। यह ठण्डे पानी में सरलता से घुल जाता है किन्तु उष्ण जल में उससे किञ्चिन्मात्र ही अधिक घुलता है (देखो चित्र १६)। अतः स्फटन द्वारा इसको शुद्ध करना बहुत कठिन है।

यतः लवण बहुत प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो जाता है इसलिये जिन संयोगों में क्षारातु अथवा नीरजी होते हैं उनको बनाने के लिये इसीका अधिकतर प्रयोग करते हैं। सभ्य मानव की अनेकों

आवश्यक वस्तुओं के बनाने में इसका प्रयोग होता है, यथा स्वफेन (soap), काच उदनीरिक अम्ल, विक्षार, श्वेतन क्षोद आदि ।

लवण के तीव्र विलयन को उदनीरिक अम्ल (वाति) से अनुविद्ध कर देने से शुद्ध क्षारातु नीरेय निस्सादित हो जाता है । तपाने पर इसके स्फट चट् चट् करके फूट जाते हैं (decrepitate) और अन्त में बिना विबन्धन हुए पिघल जाते हैं ।

क्षारातु शुल्बीय, $क्ष_2शु ज_4$—शुल्बारिक अम्ल और क्षारातु नीरेय को ठीक अनुभागों में मिला कर चण्ड ताप पर तपाने से क्षारातु शुल्बीय बन जाता है । साथ ही उदजन नीरेय (अथवा उदनीरिक अम्ल) भी उत्पन्न हो जाता है । एवं—

$$२ \text{ क्षनी} + उ_2शु ज_4 = क्ष_2शु ज_4 + २ \text{ उनी}$$
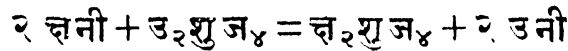
क्षारातु नीरेय की क्रिया भ्राजातु शुल्बीय पर होने से भी क्षारातु शुल्बीय बन जाता है । एवं—

$$भ्र शु ज_4 + २ \text{ क्षनी} = क्ष_2शु ज_4 + भ्रनी_2$$
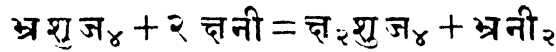
शुल्बारिक अम्ल को दह् विक्षार अथवा क्षारातु प्रांगारीय के विलयन में तब तक डालते जाओ जब तक विलयन क्लीब न हो जाए । विलयन के क्लीब हो जाने पर स्फटन द्वारा क्षारातु शुल्बीय के रंगहीन स्फट बन जाएँगे । स्फटों का निबन्ध $क्ष_2 शु ज_4 . १० उ_2 ज$ होता है और प्रायः 'क्षार-मृत्' (Glauber's salt) के नाम से प्रसिद्ध है ।

अजल क्षारातु शुल्बीय श्वेत रंग का सान्द्र होता है जो पानी में सरलता से घुल जाता है । ३३° श. ताप तक इसकी विलेयता बढ़ती चली जाती है, तदनन्तर १००° श. तक धीरे धीरे घटती जाती है। वायु में इसका उत्फुल्लन हो जाता है और तपाने से इसका अजल लवण बन जाता है ।

प्रयोगशाला में जब क्षारातु नीरेय में शुल्बारिक अम्ल अधिक मात्रा में डाल कर तपाया जाता है तब अम्ल क्षारातु शुल्बीय बन जाता है । एवं—

$$\text{क्षनी} + उ_2 शु ज_4 = क्ष उ शु ज_4 + उ नी$$
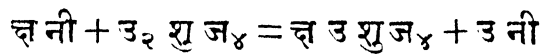
ऋजु लवण के विलयन में शुल्बारिक अम्ल की आवश्यक मात्रा डाल कर उद्वाष्पन द्वारा पानी को उड़ा कर भी यह अम्ल शुल्बीय बनाया जा सकता है । इसका विलयन नीले शैवल को रक्त कर देता है । क्षारातु प्रांगारीय और काच बनाने में क्षारातु शुल्बीय बहुत काम आता है । भैषज्य में भी इसका प्रयोग होता है ।

क्षारातु प्रांगारीय, $क्ष_2 प्र ज_3$—इसे पुरानी 'पिविक्षार विधा' (Leblanc process) द्वारा बनाने से निम्नलिखित प्रतिक्रियाएँ होती हैं—

साधारण लवण और शुल्बारिक अम्ल के मिश्र को तपा कर क्षारातु शुल्बीय (लवण-पिण्ड salt cake) की उत्पत्ति—पत्थर के कोयले द्वारा क्षारातु शुल्बीय का प्रह्रसन होकर क्षारातु शुल्बेय बन जाना । एवं—

$$क्ष_2 शु ज_4 + ४ प्र = क्ष_2 शु + ४ प्र ज$$
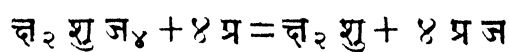
तदनन्तर शुल्बेय को चूर्णप्रस्तर (limestone) के साथ तपाने से क्षारातु प्रांगारीय और चूर्णातु शुल्बेय का बन जाना । एवं—

$$क्ष_2 शु + चू प्र ज_3 = क्ष_2 प्र ज_3 + चू शु$$
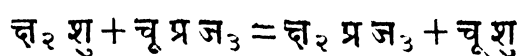
पानी में घोल कर क्षारातु प्रांगारीय को पुञ्ज (जिसे 'काल-भस्म'—black-ash—भी कहते हैं) में से निकाल दिया जाता है। तब यह स्फटन द्वारा धावन विक्षार, $क्ष_2 शु ज_3 . १० उ_2 ज$, के रूप में निकल आता है। इस रंगहीन स्फटात्मक संयोग का स्वाद लवण जैसा होता है। यह पानी में बहुत विलेय है और इसका विलयन रक्त शैवल को नीला कर देता है। शुष्क वायु में इसके स्फटों का उत्फुल्लन हो जाता है और तपाने से वे पिघल जाते हैं। उनमें से पानी उड़ जाने पर शेष अजल प्रांगारीय, $क्ष_2 प्र ज_3$, श्वेत क्षोद के रूप में रह जाता है।

दह विक्षार के विलयन में प्रांगार द्विजारेय ले जाने से भी क्षारातु प्रांगारीय बन जाता है। यदि प्रांगार द्विजारेय को क्षारातु प्रांगारीय के तीव्र विलयन में ले जाया जाए तो द्विप्रांगारीय, $क्ष उ प्र ज_3$, बन जाता है। द्विप्रांगारीय बनाने की अच्छी रीति यह है कि प्रांगार द्विजारेय को क्षारातु प्रांगारीय के स्फटों के क्षोद पर से ले जाया जाए। समीकार यह है—

$$क्ष_2 प्र ज_3 . १० उ_2 ज + प्र ज_2 = २ क्ष उ प्र ज_3 + ६ उ_2 ज$$
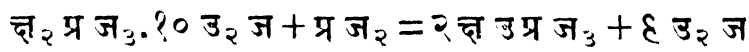
द्विप्रांगारीय श्वेत रंग का सान्द्र होता है जिसके स्फट भी बन सकते हैं। यह सब प्रकार के भर्जन क्षोदों (baking powders) का सारभूत संघटक है। ठण्डे पानी में यह अत्यल्प मात्रा में घुलता है। जब सान्द्र को तपाया जाता है अथवा इसके विलयन को उबाला जाता है, तब ऋजु प्रांगारीय, प्रांगार द्विजारेय और पानी बन जाते हैं (देखो पृष्ठ १११)। यदि किसी संयोग को ज्वाला में ले जाने से ज्वाला का रंग पीला हो जाए तो समझ लेना चाहिये कि उस संयोग में क्षारातु विद्यमान है।

दहातु

दहातु, द—दहातु को बनाने की रीतियाँ क्षारातु के बनाने की रीतियों से सर्वथा मिलती हैं। इसके भी पिघले हुए उदजारेय का विद्युद्दंशन करने से दहातु धातुरूप में प्राप्त हो जाता है। क्षारातु की अपेक्षा दहातु अधिक क्रियाशील है, अन्यथा दोनों के गुण समान हैं।

दहातु उदजारेय, द ज उ—इस उदजारेय को 'दह सर्जि' कहते हैं और इसके बनाने की रीतियाँ क्षारातु उदजारेय बनाने की रीतियों से सर्वथा मिलती हैं। समीकारों में 'क्ष' के स्थान पर 'द' रख देना ही पर्याप्त है। दह सर्जि की अपेक्षा दह विक्षार सस्ता है इसलिये इसका अधिक प्रयोग होता है। ज्वाला-परीक्षा (flame test) से हम दोनों उदजारेयों को पहचान सकते हैं। दहातु के संयोग ज्वाला का रंग नीललोहित कर देते हैं।

लवणजन तत्त्वों की पीठों पर क्रिया—जब दहातु उदजारेय के ठण्डे विलयन में नीरजी ले जाई जाती है, तब निम्नलिखित समीकार के अनुसार दहातु उपनीरित (potassium hypochlorite) और दहातु नीरेय बन जाते हैं—

$$२ द ज उ + नी_2 = द नी ज + द नी + उ_2 ज$$
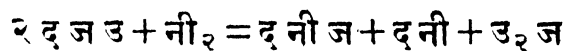
यदि विलयन उष्ण हो तो दहातु नीरीय और दहातु नीरेय बनते हैं। एवं—

$$६ द ज उ + ३ नी_2 = द नी ज_3 + ५ द नी + ३ उ_2 ज$$
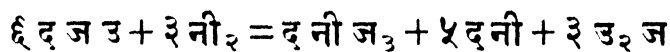
दहातु नीरीय का स्फटन बड़ी शीघ्रता से हो जाता है और पीछे विलयन में अति विलेय नीरेय रह जाता है। पुनः-स्फटन से यह शुद्ध हो जाता है। इसके स्फट रंगहीन नालाकार (tubular)

और काच के समान होते हैं जो ठण्डे पानी में किंचिन्मात्र घुलते हैं किन्तु उष्ण पानी में बहुत अधिक घुल जाते हैं (देखो संपरीक्षा १४, १५, चित्र १८)। तपाने से इसमें से जारक निकलती है और अन्त में दहातु नीरेय, द नी, बन जाता है। यह अच्छा जारणकर्ता है, अतः अग्नि-क्रीडनक (fireworks) और दियासलाइयाँ बनाने के काम आता है। इसे अंगार पर रख कर जलाने से यह उसका उद्दहन कर देता है।

लवणजन तत्त्वों और विलेय पीठों की यह एक परस्पर सामान्य प्रतिक्रिया है।

दहातु लवणीय—इन संयोगों में से दहातु नीरेय सब से अधिक परिचित है क्योंकि यह स्टासफ़ुर्ट निक्षेपों (Stassfurt deposits) में बहुत अधिक पाया जाता है। दन्यश्म (sylvite) नाम का खनिज लगभग शुद्ध दहातु नीरेय ही है। यह लवण केवल दन्यश्म से ही नहीं किन्तु दहात्वश्म (carnallite) से भी प्राप्त होता है। यह दहातु के अन्य सभी लवणों के बनाने के काम आता है और उर्वरक (fertiliser) के रूप में भी इसका प्रयोग होता है।

दहातु दुरेय (potassium bromide), द दु—यह लवण दहातु उदजारेय के उष्ण विलयन पर दुराघ्री की क्रिया से प्राप्त होता है। दुराघ्री के स्थान पर जम्बुकी का प्रयोग करने से उन्हीं रीतियों से दहातु जम्बेय, द जं, बन जाता है। दुरेय और जम्बेय दोनों ही भाचित्रण और भैषज्य में काम आते हैं। दहातु नीरीय अत्युत्तम जारणकर्ता है और अग्निचूर्ण, अग्नि-क्रीडनक और दियासलाइयाँ बनाने के काम आता है।

दहातु भूयीय, द भू $ज_3$—उष्ण देशों में यह लवण मिट्टी (soil) में मिलता है और 'पाक्य' कहलाता है। उपक्षार और दहातु नीरेय को समान अनुभागों में मिला कर बनाए हुए विलयन को तपा कर संकेन्द्रित करने से दहातु भूयीय प्राप्त होता है। ज्यों ज्यों विलयन का उद्वाष्पन होता है त्यों त्यों क्षारातु नीरेय नीचे बैठता जाता है। ठण्डा होने पर स्फटन हो कर दहातु भूयीय और किंचिन्मात्र क्षारातु नीरेय प्राप्त हो जाते हैं। समीकार यह है—

$$\text{क्ष भू ज}_3 + \text{द नी} = \text{क्ष नी} + \text{द भू ज}_3$$
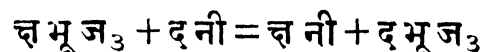
पुनःस्फटन (re-crystallisation) से भूयीय शुद्ध हो जाता है। शुद्ध क्षारातु प्रांगारीय का भूयिक अम्ल से क्लीबन करने से भूयीय शुद्धरूप में प्राप्त होता है। यह रंगहीन स्फटात्मक लवण है जिसका स्वाद कड़ुवा होता है। ताप की वृद्धि से इसकी विलेयता बड़ी क्षिप्रता से बढ़ती जाती है (देखो चित्र १६)। तपाने से यह पिघल जाता है और फिर जारक का उन्मोचन होने पर दहातु भूयित, द भू $ज_2$, बन जाता है। प्रबल जारयिता होने के कारण इसे अग्निचूर्ण बनाने के प्रयोग में लाते हैं।

अन्य संयोग—दहातु शुल्बीय, $द_2$ शु $ज_4$, द्विशुल्बीय, द उ शु $ज_4$, प्रांगारीय, $द_2$ प्र $ज_3$, और द्विप्रांगारीय, द उ प्र $ज_3$, क्षारातु के तत्संवादी लवणों के सदृश होते हैं और उन्हीं रीतियों से बनाए जाते हैं। दहातु नीरेय, द नी, प्रकृति में बहुत मिलता है और मुख्यतः इसीसे दहातु के अन्य संयोग बनाए जाते हैं।

चूर्णातु संयोग

चूर्णातु प्रांगारीय, चू प्र $ज_3$—प्रकृति में चूर्णातु प्रांगारीय अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। सबसे अधिक यह चूर्णक प्रस्तर के रूप में मिलता है जिसके पहाड़ संसार भर में पाए जाते हैं। चूर्णक

प्रस्तर शुद्ध प्रांगारीय नहीं होता। इसमें भ्राजातु प्रांगारीय, मिट्टी, सैकजा, अयो जारेय आदि अनेकों अशुद्धताएँ मिली होती हैं। श्वेत राजाश्म, जो कि भारी, भिदुर और स्फटात्मक सान्द्र है, प्राय: शुद्ध चूर्णातु प्रांगारीय होता है। खटी श्वेत, कोमल, रन्ध्री और अस्फटात्मक सान्द्र है जो सामुद्र अणुप्राणियों (marine animalcule) के अवशेषों (remains) से बनती है।

चूर्णातु प्रांगारीय पानी में नहीं घुलता किन्तु यदि स्वतन्त्र प्रांगार द्विजारेय पानी में मिली हुई हो तो अम्ल लवण बन कर यह घुल जाता है। अस्थायी कठोर जल चूर्णातु प्रांगारीय का इसी प्रकार का विलयन होता है जिसे उबालने से अथवा जिसमें चूर्णक-जल मिलाने से चूर्णातु प्रांगारीय नीचे बैठ जाता है (देखो पृष्ठ ११३-१४)। जब अम्ल की क्रिया चूर्णातु प्रांगारीय पर होती है तब उस अम्ल का चूर्णातु लवण बन जाता है और प्रांगार द्विजारेय उत्पन्न होती है। एवं—

$$\text{चूप्रज}_3 + \text{२ उनी} = \text{चूनी}_2 + \text{उ}_2\text{ज} + \text{प्रज}_2$$

शुद्ध चूर्णातु लवण के विलयन में विलेय प्रांगारीय मिलाने से भी शुद्ध चूर्णातु प्रांगारीय निस्सादित हो जाता है (देखो पृष्ठ ११४)। एवं—

$$\text{चूनी}_2 + \text{दा}_2\text{प्रज}_3 = \text{चूप्रज}_3 + \text{२ दानी}$$

चूर्णातु जारेय (चूर्णक) चूज—चूर्णातु को जारक में जलाने से अथवा चूर्णातु भूयीय वा प्रांगारीय को तपाने से शुद्ध चूर्णातु जारेय प्राप्त होता है। वाणिजिक चूर्णक अथवा जीव चूर्णक, जिसमें थोड़ी बहुत अशुद्धता मिली होती हैं, चूर्णक प्रस्तर (चूर्णातु प्रांगारीय, चूप्रज_3) को तपाने से बनता है। चण्ड ताप पर चूर्णातु प्रांगारीय का विबन्धन हो कर चूर्णातु जारेय और प्रांगार द्विजारेय बन जाते हैं। एवं—

$$\text{चूप्रज}_3 \rightleftharpoons \text{चूज} + \text{प्रज}_2$$

यह प्रतिक्रिया प्रतिवर्तिनी (reversible) होती है। अत: इसे ऐसी परिस्थितियों में बनाया जाता है जिनमें प्रांगार द्विजारेय का निकलते ही अपहरण हो जाए।

साधारण चूर्णक श्वेत रंग का अस्फटात्मक क्षोद होता है जिसे 'जीव चूर्णक' कहते हैं। अति चण्ड ताप पर इस में से बहुत चमकने वाला प्रकाश निकलता है जिसे 'चूर्ण-प्रकाश' कहते हैं (देखो पृष्ठ ६०)। साधारण ताप से यह नहीं पिघलता, केवल विद्युद्-भ्राष्ट्र की उष्णता में ही यह पिघल सकता है। इसमें पानी मिलाने से बहुत ऊष्मा उत्पन्न होती है और चूर्णातु उदजारेय बन जाता है। एवं—

$$\text{चूज} + \text{उ}_2\text{ज} = \text{चू}(\text{जउ})_2$$

चूर्णातु उदजारेय भी श्वेत अस्फटात्मक क्षोद होता है जिसको रक्तोष्ण करने से विबन्धन हो कर जारेय और पानी बन जाते हैं। साधारण ताप पर पानी में इसकी विलेयता ·१३ है। उष्ण पानी में यह इससे भी थोड़ा विलेय है। विलयन को 'चूर्णक-जल' कहते हैं। चूर्णातु जारेय एक प्रकार का क्षारक है अत: चूर्णक-जल रक्त शैवल को नीला कर देता है। अम्ल वातियों का बड़ी सरलता से प्रचूषण कर के यह लवण बना देता है। एवं, चूर्णक-जल में प्रांगार द्विजारेय ले जाने से चूर्णातु प्रांगारीय नीचे बैठ जाता है किन्तु यदि वाति बहुत अधिक डाली जाए तो वह फिर घुल जाता है (देखो पृष्ठ ११३)। चूर्णातु जारेय की पानी के साथ बन्धुता होने के कारण इसे शोषण-कर्ता के रूप में तिक्ताति आदि वातियों को सुखाने के काम में लाया जाता है।

शान्त चूर्णक को श्वेतन क्षोद और दह विक्षार बनाने के प्रयोग में लाया जाता है। यह खेती बाड़ी के काम भी आता है। संमृद (mortar) मुख्यत: इसीका बनता है। वायु में से धीरे धीरे प्रांगार द्विजारेय का प्रचूषण कर के इसका विबन्धन चूर्णातु प्रांगारीय और पानी में हो जाता है। एवं—

$$चू(ज उ)_2 + प्र ज_2 = चू प्र ज_3 + उ_2 ज$$
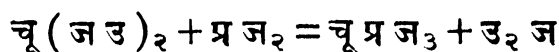
इसी पानी के उद्भव के कारण नई बनी हुई भित्तियाँ कुछ समय तक गीली रहती हैं।

चूर्णक और सैकजा (रेत) के मेल से चूर्णातु सैकतीय भी बन जाता है जो विशेष कर आम्भस वज्र चूर्णों (hydraulic cements) को बनाते हुए बनता है।

चूर्णातु नीरेय, $चू नी_2$—चूर्णातु प्रांगारीय पर उदनीरिक अम्ल की क्रिया से चूर्णातु नीरेय प्राप्त होता है। एवं—

$$चू प्र ज_3 + २ उनी = चू नी_2 + प्र ज_2 + उ_2 ज$$
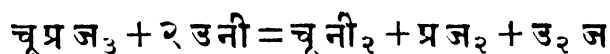
उद्वाष्पन द्वारा चूर्णातु का जलीयित लवण, $चू नी_2.६ उ_2 ज$ (hydrated salt), रंगहीन सूच्याकार स्फटों में प्राप्त हो जाता है। इन स्फटों को पिघला और तपा कर पूर्णतया सुखा लेने से अजल (anhydrous) चूर्णातु नीरेय, $चू नी_2$, प्राप्त हो जाता है जो श्वेत अस्फटात्मक सान्द्र होता है। इसके अजल और जलीयित दोनों ही संयोग क्लेदत्तर होते हैं और पानी में बहुत विलेय होते हैं। अजल लवण उत्तम शोषणकर्ता है, किन्तु यह तिक्ताति को सुखाने के प्रयोग में नहीं लाया जा सकता क्योंकि यह उसके साथ संयुक्त हो जाता है। चूर्णातु नीरेय सुपव में घुल जाता है। पिघले हुए (fused) नीरेय का विद्युदंशन करने से चूर्णातु प्राप्त हो जाता है।

चूर्णातु शुल्बीय, $चू शु ज_4$—यह संयोग प्रकृति में आचूर्ण (gypsum), स्फटाचूर्ण (selenite), भासाचूर्ण (alabaster) आदि कई रूपों में मिलता है। आचूर्ण श्वेत, स्फटात्मक सान्द्र होता है जो पानी में किंचिन्मात्र घुलता है। चूर्णातु नीरेय, चू नी, के विलयन में शुल्बारिक अम्ल डालने से आचूर्ण का निस्साद नीचे बैठ जाता है। स्फटाचूर्ण के बड़े बड़े और चपटे (flat) रंगहीन स्फट होते हैं जो बड़ी सरलता से पट्टों (plates) में विभक्त (split) हो जाते हैं। आचूर्ण और स्फटाचूर्ण दोनोंका निबन्ध $चू शु ज_4.२ उ_2 ज$ है। भासाचूर्ण भी आचूर्ण का ही परम स्फटात्मक रूप है।

साधारण ताप पर चूर्णातु शुल्बीय की विलेयता केवल ·२० है और उष्ण पानी में इससे भी थोड़ी है। इसके विलयन को 'स्थायी कठोर जल' कहते हैं। इसके जलीयित स्फटों (आचूर्ण) को १३०° श. पर कुछ समय तक तपाने से पानी का उद्वाष्पन हो कर दग्धाचूर्ण (plaster of Paris) बन जाता है। २००° श. पर यह अजलेय बन जाता है। पानी में मिला कर इसकी लेई बनाने से यह जम जाता है और सूख कर कठिन हो जाता है।

चूर्णातु लवण के तीव्र विलयन में विलेय शुल्बीय का विलयन डालने से चूर्णातु शुल्बीय के छोटे छोटे स्फट प्राप्त हो जाते हैं।

चूर्णातु संयोगों को उदनीरिक अम्ल में भिगो कर ज्वाला में ले जाने से ज्वाला का रंग नारंग (orange) हो जाता है।

ताम्र, ता—ताम्र रक्त रंग की कुट्ट्य (malleable) और अवनाम्य (pliable) धातु होती है। हथौड़े से कूट कर इसके बहुत पतले स्तार (sheets) बनाए जा सकते हैं और इसके तन्तु भी खेंचे जा सकते हैं। वज्रायस से ताम्र कोमल तर होता है और उच्च ताप पर पिघल जाता है। इसकी सापेक्ष घनता लगभग ८.९ है। यह ऊष्मा और विद्युत् का अत्युत्तम संवाहक है।

प्रांगार द्विजारेय से मिली हुई गीली वायु के लगने से इसका रंग काला पड़ जाता है और पैठिक ताम्र प्रांगारीय बन जाता है। वायु अथवा जारक में तपाने से इसका जारण हो जाता है। मन्द उदनीरिक अथवा शुल्बारिक अम्ल पर इसकी कोई क्रिया नहीं होती, किन्तु मन्द भूयिक अम्ल पर झट हो जाती है। उष्ण संकेन्द्रित उदनीरिक अम्ल के साथ इसकी प्रतिक्रिया मन्थर होती है किन्तु उष्ण संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल अथवा शीत संकेन्द्रित भूयिक अम्ल पर इसकी क्रिया बड़ी सरलता से होती है।

अयस् अथवा कुप्यातु की क्रिया ताम्र लवण के विलयन पर होने से ताम्र प्राप्त हो जाता है। एवं—

$$ता\,शु\,ज_4 + कु = कु\,शु\,ज_4 + ता$$
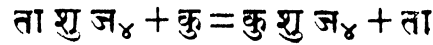
काले जारेय के प्रह्रसन से भी ताम्र प्राप्त हो जाता है। ताम्र लवण को अंगार पर रख कर प्रह्रासक धमनाड ज्वाला द्वारा प्रह्रसित करने से भी ताम्र के छोटे छोटे चमकते हुए बिम्ब प्राप्त हो जाते हैं। प्रकृति में ताम्र स्वतन्त्ररूप में मिलता है। दूसरे धातुओं के साथ मिलकर इससे मिश्रातु (alloys) बनते हैं। ताम्र और कुप्यातु का मिश्रातु पीतल है, और ताम्र और त्रपु का शतघ्नी-धातु (gun-metal)।

ताम्रिक जारेय, ता ज—ताम्रिक जारेय काला, भिदुर और अस्फटात्मक सान्द्र होता है। यह पैठिक जारेय है जो पानी में नहीं घुलता और उच्च ताप पर पिघल जाता है।

ताम्र को वायु अथवा जारक में चण्ड ताप पर तपाने से ताम्र जारेय बन जाता है। ताम्र प्रांगारीय, भूयीय अथवा उद्जारेय को तपाने से यह अधिक सरलता से बन जाता है (देखो पृष्ठ ७४)।

उद्जन और प्रांगार एकजारेय जैसे प्रह्रासकों के साथ तपाने से इसका बड़ी सरलता से ताम्बा बन जाता है। तिक्ताति (वाति) के प्रवाह में तपाने से ताम्बा, पानी और भूयाति बन जाते हैं। प्रांगार और उद्जन के संयोगों के साथ तपाने से ताम्बा, प्रांगार द्विजारेय और पानी बन जाते हैं। क्षारक के विलयन को ताम्रिक लवण के विलयन में मिलाने से ताम्र उद्जारेय, $ता\,(ज\,उ)_2$, का हरे रंग का निस्साद बैठ जाता है। विलयन को तपाने से उद्जारेय का विबन्धन हो कर काला जारेय और पानी बन जाते हैं। तिक्ताति की बहुत अधिक मात्रा में ताम्रिक उद्जारेय घुल जाता है और गहरे नीले रंग का विलयन बना देता है।

ताम्रिक भूयीय, $ता\,(भू\,ज)_2$—ताम्र, ताम्र जारेय अथवा प्रांगारीय में संकेन्द्रित अथवा मन्द भूयिक अम्ल डाल देने से ताम्रिक भूयीय का विलयन बन जाता है। विलयन में से स्फटन द्वारा इसके नीले स्फट बन जाते हैं जो क्रुद्द्रवर होते हैं और पानी में बहुत अधिक विलेय होते हैं। उनका निबन्ध